श्रीमद्भगवद्गीता प्रश्नोत्तरी

प्रश्नमंच प्रतियोगिता एवं लिखित परीक्षा के लिए उपयोगी

श्रीमद्भगवद्गीता प्रश्नोत्तरी

प्रश्नमंच (QUIZ) प्रतियोगिता एवं लिखित परीक्षा के लिए उपयोगी

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान

संस्कृति भवन, लाजपतराय मार्ग (सलारपुर रोड), कुरुक्षेत्र – 136118

प्रकाशक :

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान

संस्कृति भवन, कुरुक्षेत्र–136 118

दूरभाष : 01744–251903, 251904, 251905, 270515

Website : www.samskritisansthan.org
E-mail : sgp@samskritisansthan.org

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : प्रथम संस्करण – युगाब्द 5117, वि॰सं॰ 2072, सन् 2015

द्वितीय संस्करण – युगाब्द 5120, वि॰सं॰ 2075, सन् 2018

मूल्य : ₹ 20.00

ISBN 978-93-85256-13-4

ISBN — 9 789385 256134

मुद्रक : क्रेजी प्रिंटिंग प्रैस,

दयानन्द गली, कुरुक्षेत्र

गीता मनीषी स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज
श्रीकृष्ण कृपा धाम, परिक्रमा मार्ग, श्रीवृन्दावन
दूरभाष : (0565) 2540106

आशीर्वचन

श्रीकृष्ण कृपा

श्रीमद्भगवद्गीता – भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा गाया गया ऐसा पावन प्रेरक गीत, जो हजारों वर्ष बीत जाने पर आज भी अपनी दिव्यता न केवल बनाये हुए है, अपितु समय के साथ-साथ इसकी उपयोगिता, आवश्यकता और प्रासंगिकता अधिकाधिक बढ़ती हुई अनुभव की जा रही है।

शिक्षा जगत् के लिये तो भगवद्गीता वास्तव में एक अद्भुत अनूठी प्रेरणा है। आवश्यकता है गीता के तत्त्व को सरल-सुग्राह्य रूप से बच्चों के स्तर अनुरूप उन तक पहुँचाय जाए। विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरुक्षेत्र अनेक वर्षों से ऐसा सार्थक प्रयास कर रहा है ऐसा देखकर प्रसन्नता होती है। श्रीमद्भगवद्गीता प्रश्नोत्तरी के रूप में यह पुस्तिका इन्हीं प्रयासों में अत्यन्त व्यावहारिक, समीचीन पहल है।

आज के यान्त्रिक भौतिकवादी समय में यह प्रयास बच्चों को जहाँ गीता ज्ञान की उपयोगिता से परिचित करवायेगा, वहीं जीवन-मूल्यों, आदर्शों के प्रति भी जागरूक करता रहेगा – ऐसा पूर्ण विश्वास है। हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ।

दिनांक : 05 अक्तूबर 2015

प्रत्येक वस्तु एवं परिस्थिति में 'श्री कृष्ण कृपा' के दर्शन करो।

प्राक्कथन

श्रीमद्भगवद्गीता यह एक सार्वभौम, सार्वलौकिक, सार्वकालिक तथा चिरंतन धर्म गन्थ है। हजारों वर्षों से यह भारतवासी तथा विश्ववासी लोगोंको जीवन-संग्राम में प्रेरणा दे रहा है। आज भी मनुष्य जीवन में गीता की उपादेयता बनी हुई है। इस दृष्टि से विश्वभर में गीता का व्यापक प्रचार हो रहा है। फिर भी अभी तक गीता घर-घर या व्यक्ति-व्यक्ति तक पहुँची नहीं है।

समाज के शिक्षक, छात्र, अभिभावक तथा सभी वर्गो के लोगों तक गीता की सामान्य जानकारी पहुँचाने के उद्देश्य से यह 'प्रश्नोत्तरी' बनाई गई है। प्रश्नोत्तरी के माध्यम से पाठकों को गीता का प्राथमिक परिचय होकर उनकी गीता-अध्ययन में रुचि निर्माण होगी ऐसी आशा है। प्रश्नोत्तर यह ज्ञान प्रसारण की एक उत्तम विधा है। आजकल प्रश्नमञ्च (Quiz) कार्यक्रम बहुत आकर्षक होते हैं। गीता को लेकर प्रश्नमञ्च तथा गीता-ज्ञान परीक्षा का आयोजन कर गीता के प्रचार-प्रसार में हम बहुत बड़ा योगदान दे सकते है।

विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान गत 35 वर्षों से 'संस्कृति ज्ञान परीक्षा' एवं प्रश्नमञ्च के माध्यम से वर्तमान तथा भावी पीढ़ी को भारतीय संस्कृति का ज्ञान दे रही है। प्रतिवर्ष 18-19 लाख छात्र, शिक्षक व अभिभावक इस योजना में भाग लेते है। संस्कृति ज्ञान-परीक्षा की चतुर्थ से द्वादश श्रेणी तक की 'बोधमाला' पुस्तकों में गीता के सभी अध्यायों से एक सौ श्लोकों का अभ्यास कराया जाता है।

गीता प्रचार-प्रसार की दृष्टि से यह प्रश्नोत्तरी निश्चित रूप से उपयोगी होगी ऐसा हमें विश्वास है। भगवान् वेदव्यास जी ने जो **'गीता सुगीता कर्तव्या'** कहा है उसका अनुसरण करते हुए गीता रूपी अमृत का पान कर के हम जीवन को कृतार्थ करें यही नम्र निवेदन है। इस पुस्तिका को अपने आशीर्वचन देकर गीता मनीषी स्वामी ज्ञानानन्द महाराज ने इसका महत्त्व बढ़ाया है। हम स्वामी जी के ऋणी हैं।

विजय गणेश कुलकर्णी
सह-सचिव, विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान,
कुरुक्षेत्र

विषयानुक्रमणिका

प्रश्न चक्र	विषय	पृष्ठ संख्या
प्रथम चक्र	गीता सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी	7
द्वितीय चक्र	अध्यायों के नाम, क्रम पर प्रश्नोत्तर	12
तृतीय चक्र	श्लोक संख्या पर आधारित विकल्प प्रश्न	14
चतुर्थ चक्र	गीता अध्यायों पर प्रश्नोत्तर (अध्याय एक से चार)	17
पंचम चक्र	गीता अध्यायों पर प्रश्नोत्तर (अध्याय पांच से दस)	20
षष्ठ चक्र	गीता अध्यायों पर प्रश्नोत्तर (अध्याय ग्यारह से अट्ठारह)	24
सप्तम चक्र	श्रीमद्भगवद्गीता महापुरुषों की दृष्टि में	28
अष्टम चक्र	श्रीमद्भगवद्गीता सुवचन प्रश्नोत्तर	33
नवम चक्र	अष्टादशश्लोकी गीता प्रश्नोत्तर	35
दशम चक्र	व्याकरण पर आधारित प्रश्नोत्तर	41
एकादश चक्र		45
दैनन्दिन जीवन में गीता		49

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

हे भारत! जब–जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब–तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।।4:7।।

!! ॐ !!

प्रश्नमंच (QUIZ) प्रतियोगिता के लिए

श्रीमद्भगद्वगीता प्रश्नोत्तरी

प्रथम चक्र (प्रश्न-60)

गीता सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी

प्र०-1 गीता महाभारत के कौन से पर्व में है?

उ०- महाभारत के भीष्म पर्व के अध्याय 25 से 42 तक गीता है।

प्र०-2 गीता हमको किसके माध्यम से मिली?

उ०- गीता हमको धृतराष्ट्र और संजय के माध्यम से मिली है।

प्र०-3 धृतराष्ट्र का अर्थ क्या है?

उ०- जिसने मोहयुक्त होकर बिना अधिकार राष्ट्र को पकड़ के रखा है।

प्र०-4 धृतराष्ट्र अन्धे थे इसका अर्थ क्या है?

उ०- धृतराष्ट्र को चर्म-चक्षु नहीं थे और ज्ञान चक्षु भी नहीं थे।

प्र०-5 गीता में अर्जुन उवाच एवं श्रीभगवानुवाच कितने बार आया है?

उ०- अर्जुन उवाच 20 बार तथा श्री भगवानुवाच 27 बार।

प्र०-6 गीता में भगवान ने कुल कितने श्लोक बोले हैं?

उ०- 574

प्र०-7 सञ्जय ने गीता में कुल कितने और अर्जुन ने कितने श्लोक बोले हैं?

उ०- सञ्जय ने 40 एवं अर्जुन ने 85

प्र०-8 गीता कहाँ से आरम्भ होती है और कहाँ पूर्ण होती है?

उ०- गीता अर्जुन के शराणागति से आरंभ होकर उसके शरणागति में पूर्ण होती है। (शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम् से करिष्ये वचनं तव)

प्र०-9 गीता पढ़ने के बाद अन्य शास्त्र पढ़ने की आवश्यकता नहीं ऐसा व्यास जी ने क्यों कहा?

उ०- कारण गीता स्वयं पद्मनाभ भगवान् श्री विष्णु के मुखारविन्द से निकली हुई है।

प्र०–10 भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता का माहात्म्य गीता के कौन से श्लोकों में बताया है

उ०– अध्याय 18 के 68 से 71 तक श्लोकों में।

प्र०–11 सञ्जय शब्द का अर्थ क्या है?

उ०– सत्य की जय। सम् + जयः।

प्र०–12 'मा शुचः' का अर्थ क्या है?

उ०– शोक मत कर।

प्र०–13 गीता में प्रयुक्त छंद का नाम क्या है?

उ०– अनुष्टुप् छन्द।

प्र०–14 अनुष्टुप् छन्द में एक श्लोक में कितने अक्षर होते है?

उ०– 32 अक्षर।

प्र०–15 गीता का उपेदश कुरुक्षेत्र के कौन से स्थान पर दिया गया।

उ०– ज्योतिसर ग्राम, कुरुक्षेत्र।

प्र०–16 यूरोप के विख्यात दार्शनिक, जो श्रद्धा के कारण गीता को अपने सिरहाने रखकर सोते थे, उनका नाम क्या है?

उ०– इमर्सन

प्र०–17 लोकमान्य तिलक ने जो गीता पर भाष्य लिखा है उसका नाम क्या है?

उ०– श्रीमद्भगवद्गीतारहस्य अर्थात् कर्मयोगशास्त्र।

प्र०–18 संत विनोबा भावे जी की गीता पर कौन सी पुस्तक विख्यात है?

उ०– 'गीता प्रवचन' और मराठी में 'गीताई' (गीता माँ)।

प्र०–19 गीता के द्वैतमतपरक व्याख्याकार का नाम बताओ?

उ०– माधवाचार्य।

प्र०–20 वल्लभाचार्य ने गीता की व्याख्या किस मत के अनुसार की?

उ०– शुद्धाद्वैत मत।

प्र०–21 गीता के काश्मीर–शैव सिद्धान्त परक व्याख्याकार का नाम बताओ?

उ०– आचार्य अभिनव गुप्त।

प्र०–22 आचार्य निम्बार्क की परम्परा के केशव काश्मीरी भट द्वारा लिखित गीता का नाम बताओ?

उ०– 'तत्त्व प्रकाशिका'।

प्र०–23 गीता की सुप्रसिद्ध व्याख्या 'गूढ़ार्थ दीपिका' के लेखक का नाम बताओ?

उ०– आचार्य मधुसूदन सरस्वती।

प्र०–24 महात्मा गाँधी द्वारा लिखि गई गीता टीका का नाम बताओ?

उ०– अनासक्ति योग।

प्र०–25 स्वामी महेशानंद गिरिजी ने की गीता–व्याख्या ग्रन्थ का नाम क्या है?

उ०– श्रीकृष्ण–सन्देश।

प्र०–26 'गीता चिरंतन' गीता भाष्य के लेखक का नाम बताओ?

उ०– स्वामी प्रज्ञादास काठिया (वृन्दावन)।

प्र०–27 स्वामी अड़गडानन्द जी ने लिखि गीता टीका का नाम क्या है?

उ०– यथार्थ गीता।

प्र०–28 संत ज्ञानेश्वर महाराज ने की गीता टीका का नाम क्या है?

उ०– ज्ञानेश्वरी (भावार्थदीपिका)।

प्र०–29 स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी ने की हुई गीता की व्याख्या का नाम क्या है?

उ०– श्रीगीता–रस–रत्नाकर।

प्र०–30 अर्जुन को गुडाकेश क्यों कहा गया?

उ०– अर्जुन नींद को जीतने वाला था।

प्र०–31 अर्जुन का पार्थ नाम क्यों पड़ा?

उ०– अर्जुन पृथा का पुत्र था।

प्र०–32 कृष्ण को पार्थसारथी क्यों कहते है?

उ०– पार्थ (अर्जुन) के रथ का सारथी बनने के कारण।

प्र०–33 कुरुक्षेत्र की भूमि की आयु कितनी है?

उ०– (19,088) उन्नीस हजार अठ्ठासी वर्ष।

प्र०–34 महाभारत युद्ध में कौरवों की सेना कितनी थी?

उ०– ग्यारह अक्षौहिणी।

प्र०–35 पाण्डवों की सेना कितनी थी।

उ०– सात अक्षौहिणी।

प्र०–36 एक अक्षौहिणी सेना का विवरण बतायें? (अलग–अलग चार प्रश्न बनेंगे)

उ०– पैदल–109350, घोड़े–65610, रथ–21870, हाथी–21870,

प्र०–37 एक अक्षौहिणी में कितनी सेना होती है?

उ०– 2,18,700

प्र०–38 महाभारत युद्ध में कुल सेना कितनी थी?

उ०– अठारह अक्षौहिणी – 2,18,700 x 18 = 39,36,600

प्र०–39 महाभारत का युद्ध कितने दिन चला?

उ०– 18 दिन तक।

प्र०–40 गीता में कितने अध्याय और कितने श्लोक है?

उ०– 18 अध्याय और 700 श्लोक है।

प्र०–41 गीता में श्लोकों के कुल कितने चरण (सूत्र) हैं?

उ०– एक श्लोक के चार चरण। कुल 700 x 4 = 2,800 चरण हैं।

प्र०–42 गीता का वक्ता कौन है?

उ०– संजय।

प्र०–43 कुरुक्षेत्र को किस नाम से जाना जाता है?

उ०– धर्मक्षेत्र नाम से।

प्र०–44 भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को 'परंतपः' क्यों कहा?

उ०– अर्जुन शत्रु को ताप देने वाला अर्थात् दमन करने वाला था।

प्र०–45 गीता का सर्वाधिक प्रचार कौन सी संस्था ने किया?

उ०– गीताप्रेस, गोरखपुर।

प्र०–46 'श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप' ग्रन्थ का विश्वभर में प्रचार करने वाली संस्था का नाम क्या है?

उ०– अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृतसंघ (ISCON)

प्र०–47 कौन से विख्यात संत को 'गीता मनीषी' नाम से जाना जाता है?

उ०– स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज (वृन्दावन)

प्र०–48 गीता जयन्ती कब मनाई जाती है।

उ०– मार्गशीर्ष के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि को।

प्र०–49 'गीता सुगीता कर्तव्या' यह किसने कहा?

उ०– श्री वेदव्यासजी ने।

प्र०–50 श्री शंकराचार्य ने मनुष्य के कर्तव्य में क्या कहा?

उ०– 'गेयं गीता नामसहस्रं' मनुष्य को गीता एवं श्रीविष्णुसहस्रनाम का पाठ करना चाहिए।

प्र०–51 गीता में सूतपुत्र किसको कहा गया?

उ०– कर्ण को।

प्र०–52 अर्जुन के रथ पर लगे ध्वजा को कपिध्वज क्यों कहते है?

उ०– कारण उस ध्वज पर वीर हनुमान जी का चित्र अंकित है।

प्र०–53 अर्जुन के रथ को कितने और कौन से रंग के घोड़े थे?

उ०– चार घोड़े और सफेद (श्वेत) रंग के थे।

प्र०–54 बाह्यकरण कौन से और कितने हैं

उ०– पाँच ज्ञानेन्द्रिय एवं पाँच कर्मेन्द्रिय कुल दस।

प्र०–55 अन्तःकरण कितने और कौन से है?

उ०– अन्तःकरण चार हैं– मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार।

प्र०–56 प्रस्थानत्रयी में क्या–क्या है?

उ०– १. उपनिषद्, २. श्रीमद्भगवद्गीता, ३, ब्रह्मसूत्र

प्र०–57 अर्जुन का धनञ्जय नाम क्यों हुआ?

उ०– युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय अर्जुन ने सभी जनपदों को जीतकर धन संग्रह किया था। इसलिए धन को जय करने वाला = धनञ्जय हुआ।

प्र०–58 अर्जुन का गांडीव धनुष किस प्राणी के मेरुदण्ड से बना था?

उ०– गेंडा (गंडार)

प्र०–59 कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र क्यों कहा जाता है?

उ०– कारण इस स्थान पर देवी भद्रकाली और भैरव–स्थाणु विराजित हैं।

प्र०–60 सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः .... यह श्लोक गीता के कौन से अध्याय में है?

उ०– किसी अध्याय में नहीं है, यह 'गीताध्यान' में है।

द्वितीय चक्र (प्रश्न-72)

अध्यायों के नाम, क्रम एवं श्लोक संख्या पर आधारित प्रश्न

अध्याय क्रम	अध्याय का नाम	श्लोक संख्या	अध्याय का प्रथम चरण
प्रथमः अध्यायः	अर्जुनविषादयोगः	47	धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे...
द्वितीयः अध्यायः	साङ्ख्ययोगः	72	तं तथा कृपयाविष्टम्....
तृतीयः अध्यायः	कर्मयोगः	43	ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते....
चतुर्थः अध्यायः	ज्ञानकर्मसन्नयासयोगः	42	इमं विवस्वते योगं
पञ्चमः अध्यायः	कर्मसन्न्यासयोगः	29	सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण...
षष्ठः अध्यायः	आत्मसंयमयोगः	47	अनाश्रितः कर्मफलं...
सप्तमः अध्यायः	ज्ञानविज्ञानयोगः	30	मय्यासक्तमना:पार्थ
अष्टमः अध्यायः	अक्षरब्रह्मयोगः	28	किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं
नवमः अध्यायः	राजविद्याराजगुह्ययोगः	34	इदं तु ते गुह्यतमं
दशमः अध्यायः	विभूतियोगः	42	भूय एव महाबाहो
एकादशः अध्यायः	विश्वरूपदर्शनयोगः	55	मदनुग्रहाय परमं
द्वादशः अध्यायः	भक्तियोगः	20	एवं सततयुक्ता ये
त्रयोदशः अध्यायः	क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगः	34	इदं शरीरं कौन्तेय
चतुर्दशः अध्यायः	गुणत्रयविभागयोगः	27	परं भूयः प्रवक्ष्यामि
पञ्चदशः अध्यायः	पुरुषोत्तमयोगः	20	ऊर्ध्वमूलमधः शाख
षोडषः अध्यायः	दैवासुरसम्पद्विभागयोगः	24	अभयं सत्त्वसंशुद्धिः
सप्तदशः अध्यायः	श्रद्धात्रयविभागयोगः	28	ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य
अष्टादशः अध्यायः	मोक्ष सन्न्यासयोगः	78	सन्न्यासस्य महाबाहो
18 अध्याय		**700**	

अध्यायों की पुष्पिका-

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे.......................योगो नाम...............अध्याय:।

प्र०- इस पुष्पिका में गीता का किस प्रकार से परिचय बताया है?

उ०- 1. ॐ तत्सत् (ब्रह्मका वाचक है।) 2. गीता का नाम- श्रीमद्भगवद्गीता है 3. यह उपनिषद् है। 4. यह ब्रह्मविद्या है। 5. योगशास्त्र है 6. श्रीकृष्ण एवं अर्जुन का संवाद है।

सूचना –

पूर्वपृष्ठ के चार्ट के आधार पर प्रश्नकर्ता 72 प्रश्न निर्माण कर प्रश्न पूछ सकते है। यथा-

प्र०-1 गीता के पहले अध्याय का नाम क्या है?

उ०- अर्जुन विषाद योग। (इस प्रकार 18 प्रश्न होंगे)

प्र०-2 भक्तियोग नामक अध्याय का क्रमांक क्या है?

उ०- द्वादश अध्याय। (इस प्रकार 18 प्रश्न होंगे)

प्र०-3 द्वितीय अध्याय में कितने श्लोक है?

उ०- 72 (इस प्रकार 18 प्रश्न होंगे)

प्र०-4 पहले अध्याय के पहले श्लोक का पहला चरण बताओ?

उ०- धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे .... (इस प्रकार 18 प्रश्न होंगे)

कुरुक्षेत्र-समराङ्गण-गीता
विश्वन्दिता भगवद्गीता।
अमृतमधुरा कर्मदीपिका
नैव क्लिष्टा न च कठिना॥

तृतीय चक्र (प्रश्न–37)

श्लोकसंख्या पर आधारित प्रश्नोत्तर– विकल्प प्रश्न

प्र०–1 गीता के प्रथम अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 20 (ख) 28 (ग) 43 (घ) <u>47</u>

प्र०–2 गीता के द्वितीय अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 78 (ख) <u>72</u> (ग) 34 (घ) 42

प्र०–3 गीता के तृतीय अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 24 (ख) 28 (ग) 20 (घ) <u>43</u>

प्र०–4 गीता के चतुर्थ अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 20 (ख) 27 (ग) <u>42</u> (घ) 47

प्र०–5 गीता के पंचम अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 30 (ख) 34 (ग) <u>29</u> (घ) 24

प्र०–6 गीता के षष्ठ अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 43 (ख) 34 (ग) <u>47</u> (घ) 42

प्र०–7 गीता के सप्तम अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 29 (ख) <u>30</u> (ग) 20 (घ) 27

प्र०–8 गीता के अष्टम अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 20 (ख) <u>28</u> (ग) 24 (घ) 30

प्र०–9 गीता के नवम अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 47 (ख) <u>34</u> (ग) 20 (घ) 42

प्र०–10 गीता के दशम अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 20 (ख) 28 (ग) <u>42</u> (घ) 47

प्र०–11 गीता के एकादश अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) <u>55</u> (ख) 78 (ग) 27 (घ) 28

प्र०–12 गीता के द्वादश अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 27 (ख) 28 (ग) <u>20</u> (घ) 34

प्र०–13 गीता के त्रयोदश अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 27 (ख) 28 (ग) 20 (घ) <u>34</u>

प्र०–14 गीता के चतुर्दश अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 20 (ख) 27 (ग) 28 (घ) 42

प्र०–15 गीता के पञ्चदश अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 42 (ख) 20 (ग) 55 (घ) 34

प्र०–16 गीता के षोडश अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 72 (ख) 24 (ग) 34 (घ) 27

प्र०–17 गीता के सप्तदश अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 34 (ख) 28 (ग) 29 (घ) 30

प्र०–18 गीता के अष्टादश अध्याय में कुल कितने श्लोक हैं?

उ०– (क) 72 (ख) 78 (ग) 28 (घ) 47

प्र०–19. गीता में कौनसी विद्या बताई है?

उ०– (1) राजविद्या (2) योगविद्या
(3) ब्रह्मविद्या (4) मन्त्रविद्या

प्र०–20 गीता कौनसा शास्त्र है?

उ०– (1) समाजशास्त्र (2) नीतिशास्त्र
(3) अर्थशास्त्र (4) योगशास्त्र

प्र०–21 गीता में कौनसा योग नहीं है?

उ०– (1) कर्मयोग (2) विभूतियोग
(3) हठयोग (4) पुरुषोत्तम योग

प्र०–22 कुरुक्षेत्र के रण में कौनसा वाद्य नहीं बजाया गया?

उ०– (1) आनक (2) पणव(Big Drum)
(3) शंख (4) वंशी

प्र०–23 गीता किसका सार है?

उ०– (1) वेदों का (2) भागवत का
(3) रामायण का (4) उपनिषदों का

प्र०–24 अर्जुन को भगवान ने कौनसी गीता बताई?

उ०– (1) पाण्डव गीता (2) उद्धवगीता
(3) भगवद्गीता (4) अवधूतगीता

प्र०–25 धनञ्जय ने कौनसा वाद्य बजाया?

उ०– (1) पाञ्चजन्य (2) पौण्ड्र
(3) महाशंख (4) देवदत्त

प्र०–26 महाभारत काल में क्षेत्र की सीमा कितने कोस की है?

उ०– (1) <u>48 कोस</u> (2) 84 कोस
(3) 24 कोस (4) 45 कोस

प्र०–27 पितामह किसको कहा गया है?

उ०– (1) धृतराष्ट्र (2) द्रोणाचार्य
(3) कृपाचार्य (4) <u>भीष्म</u>

प्र०–28 महाभारत का युद्ध कौनसे युग में हुआ था?

उ०– (1) सत्ययुग (2) त्रेतायुग
(3) <u>द्वापरयुग</u> (4) कलियुग

प्र०–29 गीता महाभारत के कौनसे पर्व में है?

उ०– (1) आदिपर्व (2) सभापर्व
(3) <u>भीष्मपर्व</u> (4) द्रोणपर्व

समान श्लोक-संख्या वाले अध्याय बताओ

प्र०–30 20 श्लोक संख्या वाले दो अध्याय की क्रम संख्या बताओ?

उ०– द्वादश अध्याय (20), पञ्चदश (20),

प्र०–31 47 श्लोक संख्या वाले दो अध्याय की क्रम संख्या बताओ?

उ०– प्रथम एवं षष्ठ अध्याय (47–47 श्लोक)

प्र०–32 42 श्लोक संख्या वाले दो अध्याय की क्रम संख्या बताओ?

उ०– चतुर्थ एवं दशम (42–42 श्लोक)

प्र०–33 28 श्लोक संख्या वाले दो अध्याय की क्रम संख्या बताओ?

उ०– अष्टम एवं सप्तदश (28–28 श्लोक)

प्र०–34 34 श्लोक संख्या वाले दो अध्याय की क्रम संख्या बताओ?

उ०– नवम एवं त्रयोदश (34–34 श्लोक)

प्र०–35 गीता में सबसे बड़ा अध्याय कौनसा है?

उ०– अठरहवाँ अध्याय (78 श्लोक)

प्र०–36 गीता के कौनसे दो अध्याय मिलकर 150 श्लोक हैं?

उ०– द्वितीय (72) एवं अष्टादश (78) अध्याय।

प्र०–37 द्वितीय अध्याय में 'स्थितप्रज्ञ' के कितने श्लोक हैं?

उ०– 18 श्लोक (श्लोक 55 से 72)

चतुर्थ चक्र - (1 से 4 अध्याय)
(प्रश्न-35)

अध्याय-1

प्र०-1 गीता में कौन-कौनसे प्रमुख तीन योगमार्गों का वर्णन किया गया है?

उ०- 1. कर्मयोग 2. ज्ञानयोग 3. भक्तियोग

प्र०-2 हृषिकेश कृष्ण ने किस नामका शंख बजाया?

उ०- पाञ्चजन्य।

प्र०-3 धनंजय (अर्जुन) ने किस नामका शंख बजाया?

उ०- देवदत्त।

प्र०-4 धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा बजाये शंख का नाम बताइये?

उ०- अनन्तविजय।

प्र०-5 अर्जुन ने श्रीकृष्ण को दोनों सेनाओं के बीच में रथ खड़ा करने के लिए क्यों कहा?

उ०- कौरवों की सेना जिसके साथ लड़ना है उनको देखने के लिए।

प्र०-6 कौरवों की सेना देखने का अर्जुन पर क्या परिणाम हुआ?

उ०- अपने ही लोगों को युद्ध में देखकर अर्जुन शोकाकुल हो गया।

प्र०-7 स्वजनों को देखकर अर्जुन ने क्या कहा?

उ०- इस युद्ध में स्वजनों को मारकर मैं कल्याण नहीं देखता।

अध्याय-2

प्र०-8 भगवान् श्रीकृष्ण ने आत्मा के चार विशेष गुण कौनसे बताये हैं।

उ०- 1. आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते 2. अग्नि जला नहीं सकती 3. जल गला नहीं सकता 4. वायु सुखा नहीं सकती।

प्र०-9 गीता में मनुष्य के जीवन के बारे में कौनसी अटल बात कही है?

उ०- जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु निश्चित है और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म निश्चित है। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'

प्र०-10 गीता में किसका वध हो सकता है ऐसा कहा है?

उ०- देह अर्थात् शरीर का हत्या/वध हो सकता है। कारण देह नष्ट होने वाला है।

प्र०-11 किसका वध/हत्या नहीं हो सकती?

उ०– देही की अर्थात् देह में स्थित आत्मा की हत्या (वध) नहीं हो सकती। कारण आत्मा अमर है।

प्र०–12 क्षत्रियों का धर्म क्या है?

उ०– युद्ध करना।

प्र०–13 क्षत्रियों के लिए युद्ध को क्या कहा है?

उ०– स्वर्ग जाने का द्वार कहा है।

प्र०–14 क्षत्रिय ने युद्ध नहीं किया तो क्या हानि है?

उ०– उसका स्वधर्म और कीर्ति नष्ट होकर वह पाप का भागी होगा।

प्र०–15 क्षत्रिय के लिए अकीर्ति (अपकीर्ति) किस प्रकार मानी जाती है?

उ०– अकीर्ति मृत्यु से भी बढ़कर होती है।

प्र०–16 क्षत्रिय को युद्ध करने से कौनसी दो बातें मिलेंगी?

उ०– मृत्यु हुई तो स्वर्ग एवं जीत हुई तो पृथ्वी का राज्य मिलेगा।

प्र०–17 भगवान कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ का वर्णन कितने श्लोकों में किया है?

उ०– 18–अट्ठारह श्लोकों में।

प्र०–18 गीता के अनुसार किसको सुख नहीं मिलता?

उ०– अशांत व्यक्ति को।

प्र०–19 क्या नष्ट होने से सर्वनाश होता है?

उ०– बुद्धि का नाश होने से सर्वनाश होता है।

प्र०–20 भगवान् ने शोक से उद्विग्न अर्जुन को क्या कहा?

उ०– हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिए खड़ा हो जा।

प्र०–21 पण्डित लोग किसका शोक नहीं करते?

उ०– जिनके प्राण चले गये हैं और जिनके प्राण नहीं गये हैं अर्थात् जो मृत हो गये और जो जीवित हैं। उनके लिए पण्डित (ज्ञानी) शोक नहीं करते।

प्र०–22 गीता में स्थितप्रज्ञ किसको कहा है?

उ०– जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर आत्मा से आत्मा में सन्तुष्ट रहता है उसे स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

अध्याय–3

प्र०–22 आत्मा किससे परे है?

उ०– इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि से भी परे हैं।

प्र०–23 कर्म न करने से क्या होगा?

उ०– कर्म न करने से शरीर निर्वाह भी नहीं होगा।

प्र०–24 जो लोग केवल अपने लिए खाना पकाते है उनको गीता में क्या कहा है?

उ०– ऐसे लोगों को पापी कहा है।

प्र०–25 मनुष्य न चाहते हुए भी पाप क्यों करता है?

उ०– रजोगुण से उत्पन्न काम और क्रोध के कारण।

प्र०–26 गीता कौनसे दुर्जय शत्रु को मार डालने को कहती है?

उ०– काम रूपी शत्रु को मारने को कहती है।

अध्याय–4

प्र०–27 भगवान् कब–कब अपने को उत्पन्न करते हैं।

उ०– जब जब धर्म की हानि और अधर्म का उत्थान होता है।

प्र०–28 कौनसे तीन कार्यों के लिए भगवान अवतार लेते हैं?

उ०– सज्जन लोगों की रक्षा, दुष्टों का विनाश और धर्म की स्थापना के लिए जन्म लेते है।

प्र०–29 भगवान् ने चार वर्णों की उत्पत्ति किस आधार पर की है?

उ०– गुण और कर्म।

प्र०–30 गीता के अनुसार चार वर्ण कौन से हैं?

उ०– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

प्र०–31 कौनसी अग्नि सभी कर्मों को भस्मसात् करती है?

उ०– ज्ञानाग्नि।

प्र०–32 गीता ने किस बात को पवित्र माना है?

उ०– ज्ञान को। 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'।

प्र०–33 किसको ज्ञान प्राप्त होता है?

उ०– जो श्रद्धावान्, तत्पर एवं संयत है।

प्र०–34 ज्ञान प्राप्त होने पर किसकी प्राप्ति होती है?

उ०– ज्ञान प्राप्त होने पर शांति का लाभ होता है।

प्र०–35 अज्ञ एवं अश्रद्ध व्यक्ति की क्या गति होती है?

उ०– ऐसे संशयात्मा का विनाश होता है।

पंचम चक्र (अध्याय 5 से 10)
(प्रश्न–24+45)

अध्याय–5

प्र०–1 शरीर के नवद्वार कौन से हैं?

उ०– दो आँखें, दो कान, दो नाकपुट, मुख, गुदा, उपस्थ।

प्र०–2 पण्डित व्यक्ति किस–किस में समान दृष्टि से देखते हैं?

उ०– ज्ञानीजन, ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चंडाल में।

प्र०–3 कर्मयोगी किस लिए कर्म करते हैं?

उ०– अन्तःकरण की शुद्धि के लिए।

प्र०–4 इन्द्रियों के सुख किस प्रकार के हैं?

उ०– जिनका आरंभ है और अन्त है अर्थात् अनित्य है।

प्र०–5 किस व्यक्ति को मुक्त माना जाये?

उ०– जो इच्छा, भय और क्रोध से मुक्त हो गया है।

अध्याय–6

प्र०–6 किस व्यक्ति के लिये योग दुःख नाशक होता है?

उ०– जो यथायोग्य आहार–विहार, कर्मचेष्टा तथा निद्रा एवं जागरण करता है।

प्र०–7 चञ्चल मन को वश में लाने के भगवान् ने कौनसे दो उपाय बताये हैं?

उ०– अभ्यास एवं वैराग्य।

प्र०–8 किसकी दुर्गति नहीं होती?

उ०– जो लोगों के कल्याण का कार्य करता है।

प्र०–9 भगवान् अर्जुन को योगी बनने के लिए क्यों कहते हैं?

उ०– योगी तपस्वी, ज्ञानी, सकाम कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ है इसलिए, 'हे अर्जुन! तू योगी हो' ऐसा कहते हैं।

प्र०–10 भगवान् किस योगी को परम श्रेष्ठ मानते हैं?

उ०– जो श्रद्धावान् है और निरंतर मेरा भजन करता है।

अध्याय-7

प्र०-11 भगवान् ने चार प्रकार के भक्त बताये हैं, वे कौनसे हैं?

उ०- 1. आर्त, 2. जिज्ञासु, 3. अर्थार्थी (कामना पूर्ति के लिए भजने वाले) 4. ज्ञानी।

प्र०-12 भगवान् ने चार प्रकार के भक्तों में किसको श्रेष्ठ माना है?

उ०- ज्ञानी भक्त को।

प्र०-13 भगवान् की 'अष्टधा प्रकृति' क्या है?

उ०- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार इस आठ प्रकार से विभाजित है।

प्र०-14 भगवान् किस प्रकार से सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं?

उ०- जैसे एक सूत्र में मणि गुंथे हुए हैं।

अध्याय-8

प्र०-15 गीता में ॐ को क्या कहा गया है?

उ०- ॐ यह एक अक्षर ब्रह्म है।

प्र०-16 उत्तरायण और दक्षिणायन कितने महीने का होता है?

उ०- छः-छः महीने का।

प्र०-17 गीता के अनुसार कौन पुरुष परमगति को प्राप्त होता है?

उ०- जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप बह्म का उच्चारण करता हुआ शरीर का त्याग करता है।

अध्याय-9

प्र०-18 भक्तिभाव से कौनसी चार चीजें भगवान् को देने से भगवान् उसको ग्रहण करते हैं?

उ०- (1) पत्र (बेलपत्र या तुलसी), (2) पुष्प (फूल), (3) फल (कोई भी) और (4) तोयं (जल)-सूर्य को, शिवजी को चढ़ाते हैं।

प्र०-19 भगवान् की कौनसी प्रतिज्ञा है?

उ०- न मे भक्तः प्रणश्यति। मेरे भक्त का नाश नहीं होता।

प्र०-20 इस अनित्य, विनाशशील और दुःखदायक लोक में आकर भगवान् क्या करने को कहते हैं?

उ०- मेरा भजन करो। 'भजस्व माम्'।

प्र०–21 भगवान् किसका योगक्षेम वहन करते हैं?

उ०– जो अनन्य प्रेमी भक्त है।

प्र०–22 भगवान् अर्जुन को भजन करने के लिए क्यों कहते हैं?

उ०– कारण मनुष्य का जीवन सुखरहित और क्षणभंगुर है।

प्र०–23 गीता में किसको कृपण कहा है?

उ०– जो फल के उद्देश्य से कर्म करता है।

प्र०–24 'योगक्षेम' का अर्थ क्या है?

उ०– अप्राप्त की प्राप्ति का नाम है योग (जोड़ना) और प्राप्ति के संरक्षण का नाम है क्षेम।

अध्याय–10

प्र०–24 रिक्त स्थान पूर्ण करो –

1. मैं प्राणियों में स्थित .... हूँ। (आत्मा)
2. मैं सम्पूर्ण भूतों का .... हूँ। (आदि, मध्य, अन्त)
3. मैं आदित्यों में .... हूँ। (विष्णु)
4. मैं नक्षत्रों में .... हूँ। (शशि–चन्द्रमा)
5. वेदों में मैं .... हूँ। (सामवेद)
6. देवों में मैं .... हूँ। (इन्द्र / वासव)
7. इन्द्रियों में मैं .... हूँ। (मन)
8. प्राणियों में मैं .... हूँ। (चेतना)
9. रुद्रों में मैं .... हूँ। (शंकर)
10. पर्वतों में मैं .... हूँ। (मेरु)
11. पुरोहितों में मैं .... हूँ। (बृहस्पति)
12. रसों में मैं .... हूँ। (सागर)
13. महर्षियों में मैं .... हूँ। (भृगुमहर्षि)
14. वृक्षों में मैं .... हूँ। (अश्वत्थः)
15. देवर्षियों में मैं .... हूँ। (नारद)
16. सिद्धपुरुषों में मैं .... हूँ। (कपिलमुनि)
17. हाथियों में मैं .... हूँ। (ऐरावत)
18. नरों में मैं .... हूँ। (राजा)
19. आयुधों में मैं .... हूँ। (वज्र)

20. सर्पो में मैं .... हूँ। (वासुकि)
21. नागों में मैं .... हूँ। (अनन्तनाग)
22. दैत्यों में मैं .... हूँ। (प्रह्लाद)
23. मृगों में (पशुओं में) मैं .... हूँ। (मृगेन्द्र / सिंह)
24. पक्षियों में मैं .... हूँ (वैनतेय / गरुड़)
25. आयुध (शस्त्र) धारियों में मैं .... हूँ। (राम)
26. मछलियों में मैं .... हूँ। (मकर)
27. नदियों में मैं .... हूँ। (जाह्नवी / गंगा)
28. विद्याओं में मैं .... हूँ। (अध्यात्म विद्या)
29. अक्षरों में मैं .... हूँ। (अकार)
30. समासों में मैं .... हूँ। (द्वन्द्व)
31. मैं प्राणहरण करने वाला .... हूँ (मृत्यु)
32. नारियों में मैं .... हूँ। कीर्ति, श्री (शोभा), वाक् (वाणी), स्मृति, मेधा, धृति (धारणाशक्ति) और (क्षमा)
33. छंदों में मैं .... हूँ। (गायत्री)
34. महीनों में मैं .... हूँ। (मार्गशीर्ष)
35. ऋतुओं में मैं .... हूँ। (कुसुमाकर/बसन्त)
36. यादवों में मैं .... हूँ। (वासुदेव / कृष्ण)
37. पाण्डवों में मैं .... हूँ। (धनञ्जय)
38. मुनियों में मैं .... हूँ। (व्यास)
39. कवियों में मैं .... हूँ। (शुक्राचार्य)
40. गोपनीय में मैं .... हूँ। (मौन)
41. सर्ववेदों में मैं .... हूँ। (प्रणव)
42. आकाश में मैं .... हूँ। (शब्द / ध्वनि)
43. नरों में मैं .... हूँ। (पौरुष)
44. मैं ज्योतियों में किरणों वाला .... हूँ। (सूर्य)

प्र०–45. विभूति योग के अन्त में भगवान् ने क्या कहा?

उ०– मैं इस सम्पूर्ण जगत् को एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूँ।

षष्ठ चक्र (अध्याय 11 से 18)

(प्रश्न-40)

अध्याय-11

प्र०-1 विश्व रूप दर्शन करने के लिए भगवान् ने अर्जुन को क्या दिया?

उ०- भगवान ने अर्जुन को दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु का दान दिया।

प्र०-2 विश्वरूप दर्शन के समय अर्जुन ने किस रूप में परमेश्वर को देखा?

उ०- परब्रह्म परमात्मा, जगत् के परम आश्रय, अनादि धर्म के रक्षक और अविनाशी सनातन पुरुष के रूप में देखा।

प्र०-3 विश्वरूप दर्शन में भगवान् का कौनसा रूप था?

उ०- लोकों का नाश करने वाला महाकाल का रूप था।

प्र०-4 भगवान् ने अर्जुन को यश प्राप्त कर क्या बनने के लिए कहा?

उ०- सब शूरवीर पहले से ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं, तू केवल निमित्तमात्र बन जा।

प्र०-5 अर्जुन को सव्यसाची क्यों कहा?

उ०- अर्जुन दोनों हाथों से बाण चलाने में निपुण था।

अध्याय-12

प्र०-6 कौनसे भक्त का भगवान् मृत्युरूप संसार से शीघ्र उद्धार करते हैं?

उ०- भगवान् में चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्त का।

प्र०-7 क्या करने से परम शांति मिलती है?

उ०- कर्मों के फल का त्याग करने से।

प्र०-8 अनिकेतः का अर्थ क्या है?

उ०- किसी एक स्थान में आसक्ति रहित होना।

प्र०-9 भगवान् को कौनसे भक्त अति प्रिय हैं?

उ०- जो श्रद्धायुक्त, ईश्वर परायण होकर धर्ममय अमृत का सेवन करते हैं।

अध्याय-13

प्र०-10 क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ किसको कहते हैं?

उ०- शरीर को क्षेत्र और शरीर को जानने वाले ज्ञानी को क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

प्र०-11 पाँच इन्द्रियों के विषय कौन से हैं?

उ०– शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध।

प्र०–12 ज्ञान के पाँच उदाहरण बताओ?

उ०– अमानित्व, अदम्भित्व, अहिंसा, शौच, स्थैर्य।

प्र०–13 अज्ञान के पाँच उदाहरण बताओ?

उ०– मानित्व, दम्भित्व, हिंसा, अशौच, अस्थैर्य।

प्र०–14 गीता में परब्रह्मपरमात्मा का स्वरूप कैसा बतलाया है?

उ०– परमात्मा सब ओर हाथ–पैर वाला, सब ओर नेत्र, सिर ओर मुखवाला तथा सब ओर कान वाला है। वह सबको व्याप्त करके स्थित है।

अध्याय–14

प्र०–14 गीता के अनुसार तीन गुण कौन से हैं?

उ०– सत्व, रज, तम।

प्र०–15 कौनसे गुण का क्या फल है?

उ०– सात्विक गुण का फल सुख, ज्ञान और वैराग्य है। राजसिक गुण का फल दु:ख है और तामसिक गुण का फल अज्ञान कहा है।

प्र०–16 गुणातीत (तीन गुणों से अतीत) किसको कहा है?

उ०– जो मान और अपमान में, मित्र और शत्रु में सम है एवं कर्तापन से रहित है।

अध्याय–15

प्र०–17 ईश्वर मनुष्य के शरीर में किस रूप में रहकर अन्न को पचाता है?

उ०– वैश्वानर अग्नि के रूप में रहकर।

प्र०–18 अन्न के चार प्रकार कौन से हैं?

उ०– 1. भक्ष्य – चबाकर खाया जाता है, 2. भोज्य – पिया जाता है,
3. लेह्य – जो चाटा जाता है, 4. चोष्य – जो चूसा जाता है।

प्र०–19 इस संसार में कितने प्रकार के पुरुष हैं?

उ०– नाशवान् और अविनाशी। शरीर नाशवान् और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है।

प्र०–20 भगवान् लोक में और वेद में किस नाम से प्रसिद्ध हैं?

उ०– पुरुषोत्तम।

प्र०–21 भगवान् ने किस प्रकार के शास्त्र को कहा?

उ०– अति गोपनीय शास्त्र (गुहयात् गुह्यतरम्) को कहा गया।

अध्याय–16

प्र०–21 इस लोक में मनुष्य समुदाय कितने प्रकार का हैं?

उ०– दो प्रकार – दैवी प्रकृति वाले और आसुरी प्रकृति वाले।

प्र०–22 दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न पुरुष के पाँच लक्षण बताओ?

उ०– अभय, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग।

प्र०–23 आसुरी प्रकृति वाले लोगों के छः लक्षण बताओ?

उ०– दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान।

प्र०–24 आत्मा का नाश करने वाले तीन प्रकार के नरक के द्वार कौन से हैं?

उ०– काम, क्रोध तथा लोभ।

प्र०–25 गीता कर्तव्य–अकर्तव्य के निर्धारण में किसको प्रमाण मानती है

उ०– शास्त्र को (अर्थात् गीता में निर्धारित शास्त्र को।)

अध्याय–17

प्र०–26 श्रद्धा कितने प्रकार की होती है?

उ०– सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी।

प्र०–27 ब्रह्म का नाम कैसे जाना जाता है?

उ०– ॐ, तत्, सत् इस तीन प्रकार से जाना जाता है।

प्र०–28 हवन, दान, तप के लिए क्या आवश्यक है?

उ०– श्रद्धा।

अध्याय–18

प्र०–29 यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः– यह श्लोक किसने कहा?

उ०– सञ्जय ने।

प्र०–30 श्रीकृष्ण–अर्जुन का संवाद संजय ने किस की कृपा से सुना था?

उ०– श्रीवेदव्यास की कृपा से।

प्र०–31 गीता के अन्त में सञ्जय ने श्रीकृष्ण को और अर्जुन को किस नाम से संबोधित किया?

उ०– योगेश्वर कृष्ण एवं धनुर्धरपार्थ (अर्जुन)।

प्र०–32 गीता किस मनुष्य को त्यागी मानती है?

उ०– जो कर्मफल का त्यागी है वही त्यागी है।

प्र०–33 कर्मों की सिद्धि के लिए कौन सी पाँच बातें बताई गई हैं?

उ०– अधिष्ठान, कर्ता, भिन्न-भिन्न करण, अलग-अलग प्रचेष्टा एवं पाँचवा दैव।

प्र०–34 सात्त्विक कार्यकर्ता किसको कहा है?

उ०– जो कर्मफल की आसक्ति रहित हो, अहंकार के वचन न बोलता हो, धैर्य एवं उत्साहयुक्त तथा कार्य के सिद्धि या असिद्धि में हर्ष-शोक न करने वाला हो।

प्र०–35 सात्त्विक सुख किसको माना है?

उ०– जो आरम्भ में विष के समान हो किंतु परिणाम में अमृत के तुल्य हो वह सात्त्विक सुख है।

प्र०–36 किसको तामस सुख कहा है?

उ०– जो निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न होता है।

प्र०–37 अर्जुन को गोपनीय ज्ञान देकर भगवान् ने अंत में क्या कहा?

उ०– तू भलीभाँति विचार कर जैसे चाहता है वैसा कर।
(यथेच्छसि तथा कुरु।)

प्र०–38 अर्जुन ने गीता के अन्त में भगवान् से क्या कहा?

उ०– हे अच्युत! मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। (करिष्ये वचनं तव।)

प्र०–39 ईश्वर का वास कहाँ है?

उ०– मनुष्य के हृदय में।

प्र०–40 जहाँ योगेश्वर कृष्ण एवं धनुर्धर पार्थ होते हैं वहाँ किसका वास होता है?

उ०– श्री, विजय, विभूति और अचल नीति का।

सप्तम चक्र (प्रश्न 40+40)
गीता विषयक महापुरुषों के वचन

1. प्रश्नः- महापुरुष का वचन सुनने पर उनका नाम बताओ? (40 प्रश्न बनते हैं।)

2. प्रश्नः- महापुरुष का नाम बताने पर उनका वचन सुनाओ। (40 प्रश्न बनते हैं।)

1. गीता शास्त्र का अर्थ जानने पर सभी पुरुषार्थों की सिद्धि प्राप्त होती है।
   – जगद्गुरु आद्यशंकराचार्य
2. गीता उपनिषदों के उपवन से चयनित आध्यात्मिक सत्य के सुन्दर पुष्पों का एक अनुपम गुच्छ है।
   – स्वामी विवेकानन्द
3. गीता कहती है कि संसार से भागने की आवश्यकता नहीं। बाधा संसार में नहीं हमारे भीतर हैं।
   – डॉ. एनि बेसन्ट्
4. गीता यह भारत की प्राणवायु है। गीता के कारण भारत जीवित रहेगा।
   – भगिनी निवेदिता
5. जीवन में और जगत् में ऐसी कोई समस्या नहीं, जिसका समाधान गीता में नहीं है।
   – इमर्सन
6. गीता का उपदेश मनुष्य को उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाने के लिए अद्वितीय माध्यम हैं।
   – वारेन् हेस्टिंग
7. प्रातःकाल उठकर मैं मेरा हृदय, मन एवं विवेक को गीता रूपी पवित्र गंगाजल से स्नान कराती हूँ।
   – हेनरी थोरो
8. मेरे जीवन का ऐसा कोई दिन गया नहीं, जिस दिन मैंने गीता के किसी श्लोक का मनन किया नहीं।
   – लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

9. मातृदुग्ध से मेरे शरीर की जितनी पुष्टि हुई है, उससे अधिक मेरी हृदय एवं बुद्धि गीतारूपी दुग्ध से परिपुष्ट हुई है।

– संत विनोबा भावे

10. गीता में साधक के लिए उपयोगी साधन–सामग्री है। गीता का मूल लक्ष्य मनुष्य का कल्याण करना है।

– स्वामी रामसुखदास

11. गीता यह मानवता का सर्वोत्तम आध्यात्मिक ग्रन्थ है।

– अल बिरुनी

12. गीता मानव मात्र के लिए शाश्वत प्रेरणा का स्रोत है।

– डा.ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

13. मेरी अंतरिक्ष यात्रा के समय मेरे साथ में रखी गीता प्रतिक्षण मेरा उत्साह बढ़ाती थी। इसलिए मैं 175 दिन तक लगातार अंतरिक्ष में रहने का विश्व रिकार्ड बनाने में सक्षम हुई।

– सुनीता विल्यमस्

14. गीता मात्र व्यक्ति या राष्ट्र विशेष के लिए नहीं, वह समग्र विश्व के संकट मोचन हेतु अपरिहार्य ग्रन्थ है।

– सुकर्णो (इण्डोनेशिया के पूर्व राष्ट्रपति)

15. गीता सत्य का पथनिर्देशन करने वाली, सत्य की पहचान कराने वाली, भेदाभेद दूर कराने वाली, आनन्द दायिनी और विलक्षण कृति है।

– दाराशिकोह

16. सब से सुन्दर, सम्भवतः एकमात्र आध्यात्मिक संगीत जो किसी भाषा में उपलब्ध हो, वह है गीता। दुनिया का सबसे गूढ़ और सर्वोच्च ज्ञान इसमें निहित हैं।

– ओयेलहेम

17. गीता का सर्वदा श्रवण, कीर्तन, मनन एवं ध्यान करना चाहिए, क्योंकि वह स्वयं पद्मनाभ भगवान् श्री विष्णु के मुखारविंद से निकली है। तो अन्य शास्त्रों में जाने की क्या आवश्यकता है?

– महर्षि वेदव्यास

18. मैं सर्वदा गीता के आश्रय में रहता हूँ, गीता मेरा श्रेष्ठ मंदिर है। गीता की सहायता से मैं तीनों लोक का पालन करता हूँ।

– भगवान् श्रीकृष्ण

19. गीता अक्षय मणियों की खान है। यदि युगों तक इस खान से मणि निकलते रहेंगे तो भावी कर्णधार इसमें से नये–नये अमूल्य मणि–माणिक्य पाकर प्रसन्न एवं चकित होते रहेंगे।

– श्री अरविन्द

20. श्रीकृष्ण भगवान् की वाणी–गीता कोई सामान्य कविता नहीं वह तो अनहद नाद (सिद्धयोगी के हृदय में सुनाई देने वाला दिव्यनाद) है। यह कोई कवि की कल्पित कविता नहीं, यह तो आपके अन्तर में बसे हुए अज्ञान को नाश करने वाली महौषधि है।

– जम्भेश्वर महाराज

21. मेरा विश्वास है कि दुनिया में प्रचलित भाषा में भगवान् श्रीकृष्ण की उपदेशावली श्रीमद्भगवद्गीता के समान छोटे आकार में विपुल ज्ञान से परिपूर्ण द्वितीय कोई ग्रन्थ नहीं हैं।

– पं. मदनमोहन मालवीय

22. गीता जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को हृदयंगम करने में सहायता करती है। इसमें धर्म की मूल धारणाओं पर बल दिया गया है, जो केवल प्राचीन या आधुनिक ही नहीं, शाश्वत है।

– सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

23. गीता का उपदेश, बिना भेदभाव सबके लिए प्रयोजनीय है। इस ग्रन्थ पर अहिन्दुओं का उतना ही अधिकार है, जितना कोई भी भारतीय या हिन्दू कहने वाले का है।

– डा. मौहम्मद हाफिज सैयद

24. भारत के संविधान की मूल पाण्डुलिपि (ग्रन्थ) में नीतिनिर्देशक तत्त्व के चतुर्थ अध्याय के आरम्भ में, अर्जुन को गीता उपदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण का चित्र है।

– (1950 में भारत का संविधान स्वीकृत किया गया था।)

25. गीता में स्नान करने वाला संसार का उद्धार कर सकता हैं।

– गीता दैनन्दिनी

26. गीता में भगवान् का श्वास है, हृदय है और भगवान् की वाङ्मयी मूर्ति है।

– गीता दैनन्दिनी

27. गीता सर्वशास्त्रमयी है। वह श्रुति, स्मृति सबका सार है।

– गीता दैनन्दिनी

28. जो गीता अर्जुन को भी दुबारा सुनने को नहीं मिली, वह हमें प्रतिदिन पढ़ने–सुनने को मिल रही है–यह भगवान् की कितनी विलक्षण कृपा है।

– गीता दैनन्दिनी

29. समुद्र में से कोई राई नहीं निकाल सकता। परन्तु सन्तों ने संसार भर के ग्रन्थों में से 'गीता' निकालकर हमें दे दी, यह उनकी कितनी विलक्षण कृपा है!

– गीता दैनन्दिनी

30. "Bhagawad Gita is the menifest quintessence of all the teachings of the vedic scriptures."

- Adi Shankaracharya

31. जिस मनुष्य ने 'गीता का थोड़ा सा भी अध्ययन किया है, वह संसार–बन्धन से मुक्त होकर आत्यन्तिक आनन्द का अधिकारी हो जाता है।

32. भगवद्गीता विश्व की सबसे सुन्दर एवं महान् ज्ञान की दार्शनिक कृति है।

– वान हम्बोल्ड

(जर्मन विद्वान)

33. प्राचीन युग की सर्वोत्तम वस्तुओं में 'गीता' से श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं है। गीता में ऐसा उत्तम और सर्वव्यापी ज्ञान है कि उसकी रचना के असंख्य वर्ष हो गये फिर भी ऐसा दूसरा एक भी ग्रन्थ नहीं लिखा गया है।

– मनीषी थोरो

(अमेरिकी दार्शनिक)

34. ‘गीता’ दुनिया की बेहतरीन इल्मी तोहफा है। इस एक किताब में दुनिया के सारे फिरकों का निचोड़ पेश कर दिया गया है।

– अलबेरुनी

(अरब के मनीषी)

35. ‘गीता’ वह गुलदस्ता है जिसमें वेदों और उपनिषदों के सभी आध्यात्मिक ज्ञान–पुष्प सजे हुए हैं।

– (स्वामी विवेकानन्द)

36. "Gita is the most beautiful, perhaps the only philosophical song existing in any known language."

Wilhem Von Humboldt.

37. यदि अन्य सभी धर्म ग्रंथ जलकर भस्म हो जायें तो भी इस (गीता) अमर गुटके के सात सौ श्लोक यह बताने के लिए काफी हैं कि हिन्दू धर्म क्या है और उसे जीवन में कैसे उतारा जा सकता है।

– महात्मा गांधी

38. मैं तो चाहता हूँ, ‘गीता’ केवल राष्ट्रीय शालाओं में ही नहीं बल्कि प्रत्येक शिक्षण संस्था में पढ़ाई जाय। एक हिन्दू बालक या बालिका के लिए ‘गीता’ को न जानना शर्म की बात होनी चाहिये। यह सच है कि ‘गीता’ विश्वधर्म की एक पुस्तक है।

– महात्मा गांधी

39. गीता–ज्ञान प्रसारण के समय विश्व में कोई भी मजहब या सम्प्रदाय (रिलिजन) नहीं था। वर्तमान में प्रचलित सभी मजहब–सम्प्रदाय ‘गीता’ के हजारों वर्ष बाद प्रचलन में आये। अतः गीता मजहब, सम्प्रदाय व भेदभाव से मुक्त ज्ञान–ग्रन्थ है।

– स्वामी श्री अड़गडानन्द जी महाराज

40. ‘गीता’ एक सार्वकालिक (सभी समयों में उपयुक्त), सार्वलौकिक (सारे संसार में व्याप्त) और सार्वजनीन (सबके लिए उपयुक्त) मानवशास्त्र है। परमात्मा को धारण कराती है इसलिए धर्मशास्त्र है।

– स्वामी श्री अड़गडानन्द जी महाराज

अष्टम चक्र (प्रश्न 45)

गीता सुवचन प्रश्नोत्तरी

प्र०–1 सुवचन बताने पर अर्थ बताओ? (15 प्रश्न)

प्र०–2 अर्थ बताने पर सुवचन बताओ? (15 प्रश्न)

1. **त्रैगुण्यविषया वेदाः। (२.४५)**
   अर्थ– वेद–त्रिगुणों के कार्यरूप संसार को प्रकाशित करने वाले हैं।
2. **समत्वं योग उच्यते। (२.४८)**
   अर्थ– सिद्धि और असिद्धि में समता को ही योग कहते हैं।
3. **कृपणाः फलहेतवः। (२.४९)**
   अर्थ– फल के निमित्त कर्म करने वाले कृपण अर्थात् दीन होते हैं।
4. **बुद्धिनाशात्प्रणश्यति। (२.६३)**
   अर्थ– बुद्धि का नाश होने से संपूर्णतया विनाश होता है।
5. **अशान्तस्य कुतः सुखम्। (२.६६)**
   अर्थ– अशान्त पुरुष को सुख कहाँ से मिलेगा?
6. **न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। (३.५)**
   अर्थ– कोई भी कदापि क्षणभर भी कर्म के बिना रह नहीं सकता।
7. **गहना कर्मणो गतिः। (३.१७)**
   अर्थ–कर्म का यथार्थ स्वरूप गहन (समझने में कठिन) होता है।
8. **स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। (३.३५)**
   अर्थ– स्वधर्म का पालन करते हुए मरना श्रेयस्कर है। परधर्म का पालन भयावह होता है।
9. **न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। (४.३८)**
   अर्थ– इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र, अर्थात्– शुद्धिकारक कुछ भी नहीं।
10. **श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्। (४.३९)**
    अर्थ– श्रद्धावान को ज्ञान का लाभ होता है।
11. **यो यच्छ्रद्धः स एव सः। (१७.३)**
    अर्थ– जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वही उसका स्वरूप है।
12. **स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। (१७.४५)**

अर्थ– अपने स्वाभाविक कर्म में निरत रहने वाला पुरुष संसिद्धि को प्राप्त करता है।

13. **न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति। (६.४०)**

अर्थ– आत्मकल्याण की साधना करने वाला कोई भी दुर्गति को नहीं जाता।

14. **दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। (७.१४)**

अर्थ–परमात्मा की त्रिगुणमयी माया का अतिक्रमण करना असंभव है।

15. **सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः। (१८.४८)**

अर्थ– जिस प्रकार अग्नि धूम से आच्छादित होता है उसी प्रकार सभी कर्म–दोष से आच्छादित होते हैं।

सुवचनानि

प्र०– पहला शब्द बताने पर पूरा वचन बताओ?

उदाहरण– स्वल्प......

उ०– स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (2.40)

१. **स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (२.४०)**

२. **धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। (४.८)**

३. **मुक्तसङ्ग्‌गः समाचार। (३.९)**

४. **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (२.४७)**

५. **योगस्थः कुरुकर्माणि। (२.४८)**

६. **तां तितिक्षस्वभारत। (२.१४)**

७. **योगः कर्मसु कौशलम्। (२.५०)**

८. **संशयात्मा विनश्यति। (४.४०)**

९. **पण्डिताः समदर्शिनः। (४.१८)**

१०. **उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। (६.५)**

११. **मामनुस्मर युध्यच। (८.७)**

१२. **योगक्षेमं वहाम्यहम्। (७.२२)**

१३. **न मे भक्तः प्रणश्यति। (७.३१)**

१४. **मन्मना भव। (७.३४)**

१५. **निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्। (११.३५)**

नवम चक्र (प्रश्न 64)

अष्टादशश्लोकी गीता

अर्जुन उवाच

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्त्वा स्वजनमाहवे ॥१॥

हे केशव! मैं लक्षणों को भी विपरीत ही देख रहा हूँ, तथा युद्ध में स्वजन-समुदाय को मार कर कल्याण भी नहीं देखता। (1.31)

श्रीभगवानुवाच

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥२॥

हे धनञ्जय! तू आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर। समत्वभाव ही योग नाम से कहा जाता है। (2.48)

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥३॥

जो मूढ़बुद्धि पुरुष समस्त इन्द्रियों को हठपूर्वक (ऊपर से) रोककर उन इन्द्रियों के भोगों को मन से चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् पाखण्डी कहा जाता है। (3.6)

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥४॥

जितेन्द्रिय (साधन परायण) हुआ श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान को प्राप्त करता है। तथा ज्ञान को प्राप्त कर वह बिना विलम्ब के तत्क्षण ही परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है। (4.39)

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥५॥

जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई है, ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो गया है, वह सदा मुक्त ही है। (5.28)

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥६॥

यथायोग्य आहार-विहार, यथायोग्य चेष्टा और यथायोग्य शयन करने तथा जागने वाले को ही यह दुःखनाशक योग सिद्ध होता है। (6.17)

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥७॥

मेरी यह अलौकिक अर्थात् अद्भुत त्रिगुणमयी माया बड़ी दुस्तर है, इसलिए जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस माया को लाँघ जाते हैं। (7.14)

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥८॥

जिस मार्ग में ज्योतिर्मय अग्नि, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायण के छह महीने, इन सबके अभिमानी देवता हैं, उस मार्ग में मर कर गए ब्रह्मवेत्ता योगीजन उन देवताओं द्वारा क्रम से ले जाए जाकर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। (8.24)

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥९॥

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मुझ को निरन्तर भजता है, तो वह भी साधु ही मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है, अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है। (9.30)

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१०॥

जो मुझे अजन्मा (जन्मरहित) और अनादि तथा लोकों का महान् ईश्वर रूप से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान् पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (10.3)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्ग.वर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥११॥

हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिए यज्ञ, दान और तप आदि सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को करने वाला है, मेरे परायण है, तथा मेरा भक्त है, अर्थात् मेरे नाम, गुण, प्रभाव, और रहस्य के श्रवण, कीर्तन, मनन, ध्यान का प्रेमभाव से अभ्यास करने वाला है, आसक्ति रहित है और सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति वैरभाव से रहित है, ऐसा वह भक्ति वाला पुरुष मुझ को ही प्राप्त होता है। (11.55)

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यसाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

मर्म न जानकर किए हुए अभ्यास से परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है और परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के रूप का ध्यान श्रेष्ठ है। ध्यान से भी सब कर्मों के फल का मेरे लिए त्याग श्रेष्ठ है, क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है। (12.12)

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥१३॥

हे अर्जुन! तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा मुझ को ही जान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का अर्थात् विकार सहित प्रकृति का और पुरुष का जो तत्त्व से जानना है, वही ज्ञान है, ऐसा मेरा मत है। (13.2)

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१४॥

जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरूप योग द्वारा मुझे निरन्तर भजता है, वह इन तीनों गुणों को लाँघ कर ब्रह्म से एकत्व के योग्य होता है। (14.26)

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥१५॥

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है तथा आसक्तिरूप दोष जिन्होंने जीत लिया है और जिनकी नित्य स्थिति परमात्मा के स्वरूप में है तथा जिनकी कामना भली प्रकार से नष्ट हो गयी है, ऐसे वे सुख-दुःख

नामक द्वन्द्वों से विमुक्त हुए ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं। (15.5)

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥१६॥

जो पुरुष शास्त्रविधि को त्यागकर मनमाना आचरण करता है, वह न तो सिद्ध को, न परम गति को और न सुख को ही प्राप्त होता है। (16.23)

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥१७॥

मन की प्रसन्नता, शान्त भाव, भगवत् चिन्तन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और अन्तःकरण के भावों की भली भाँति पवित्रता–ऐसे ये मन–सम्बन्धी तप कहे जाते हैं। (17.16)

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥१८॥

संपूर्ण धर्मों को अर्थात् संपूर्ण कर्तव्यकर्मों को मुझमें त्याग कर तू केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मा की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक मत कर। (18.66)

गीता माहात्म्य

गीतासारमिंद पुण्यं यः पठेत् सुसमाहितः ।
विष्णुलोकमवाप्नोति भयशोकविनाशनम् ॥

जो पुरुष इस पवित्र गीतासार का एकाग्र चित्त से पाठ करता है, वह पुरुष भय शोक–जन्म–मरण से रहित विष्णुलोक को प्राप्त होता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अष्टादशश्लोकीगीता॥

....

अष्टादशश्लोकी गीता - प्रश्नोत्तरी

प्र०–1 अष्टादश–श्लोकी गीता का प्रचार सर्वप्रथम किसने किया?

उ०– महामण्डलेश्वर पूज्य स्वामी महेशानन्दगिरि जी ने। (आबूपर्वत)

प्र०–2 अष्टादश श्लोकी गीता की विशेषता क्या है?

उ०– यह अत्यंत संक्षेप में गीता का सार है।

प्र०–3 अष्टादश–श्लोकी गीता में कितने अध्याय से कितने श्लोक हैं?

उ०– अट्ठारह अध्यायों से एक–एक श्लोक लिया है। कुल 18 श्लोक हैं।

प्र०–4 अष्टादश श्लोकी गीता से कोई भी श्लोक का प्रथम शब्द बताने पर पूरा श्लोक बताओ?

(कण्ठस्थीकरण पर आधारित प्रश्न)

	अध्याय		**अध्याय**
1.	निमित्तानिच –	10.	यो मामज –
2.	योगस्थः कुरु –	11.	मत्कर्मकृन् –
3.	कर्मेन्द्रियाणि –	12.	श्रेयोहि –
4.	श्रद्धावाँल्लभते –	13.	क्षेत्रज्ञं चापि –
5.	यतेन्द्रिय –	14.	मां च यो –
6.	युक्ताहार –	15.	निर्मानमोहा –
7.	दैवी ह्येषा –	16.	यः शास्त्रविधि –
8.	अग्निर्ज्योति –	17.	मनः प्रसादः –
9.	अपि चेत् –	18.	सर्वधर्मान् –

प्र०–5 विद्या भारती में 'अष्टादशश्लोकी गीता' का प्रयोग किसने आरम्भ किया?

उ०– स्व० लज्जाराम तोमर ने।

प्र०–6 अष्टादशश्लोकी गीता की प्रस्तावना किसने लिखी है?

उ०– पूज्य महेशानन्द गिरिजी ने।

प्र०–7 श्लोक बताने पर अध्याय एवं श्लोक क्रमांक बताओ?

यथा – मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

उ०– अध्याय–17, श्लोक क्रमांक –16
इस प्रकार से 18 प्रश्न–उत्तर बना सकते हैं।

प्र०–8 श्लोक का अनुवाद बताने पर श्लोक बताओ?
यथा – जो मुझे अजन्मा (जन्मरहित), और अनादि तथा लोकों का महान् ईश्वर रूप से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान् पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाता है। अ. 10–3

उ०– **यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।**
असम्मूढः से मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।। १०–३

इस प्रकार से 18 प्रश्न–उत्तर बना सकते हैं।

प्र०–9 अष्टादश–श्लोकी का माहात्म्य कौन से श्लोक में बताया है?

उ०– गीतासारमिदं पुण्यं यः पठेत् सुसमाहितः। विष्णुलोकमवाप्नोति भयशोकविनाशनम्।।

प्र०–10 अष्टादशश्लोकीगीता का नित्य पाठ करने वाले व्यक्ति को क्या फल प्राप्त होता है?

उ०– विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।

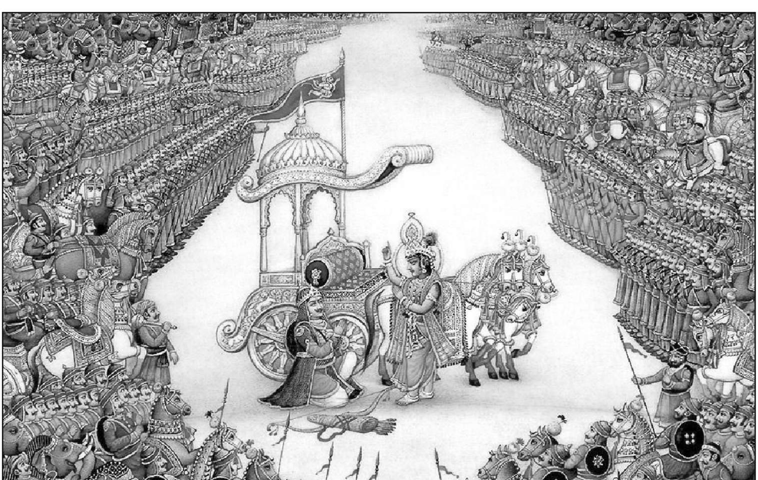

दशम चक्र (प्रश्न-83)

व्याकरण पर आधारित प्रश्नोत्तर

(1) सन्धि-विच्छेद करो और सन्धि का नाम बताओ?

1. तथैव	–	तथा + एव,	वृद्धि सन्धिः
2. नैति	–	न + एति,	वृद्धि सन्धिः
3. चेति	–	च + इति	गुण सन्धिः
4. स एव	–	सः + एव	विसर्ग सन्धिः (लोपः)
5. बुद्धिरस्य	–	बुद्धिः + अस्य,	विसर्ग सन्धिः (रेफः)
6. कर्मण्यकर्म	–	कर्मणि + अकर्म,	यण् सन्धिः
7. नाभिनन्दति	–	न + अभिनन्दति	सवर्णदीर्घ सन्धिः
8. चायम्	–	च + अयम्	सवर्णदीर्घ सन्धिः
9. नास्ति	–	न + अस्ति	सवर्णदीर्घ सन्धिः
10. यन्मनः	–	यत् + मनः	अनुनासिक सन्धिः

<u>सन्धि करो-</u>

1. न + एनाम्	–	नैनाम्
2. तत् + एकम्	–	तदेकम्
3. हि + अकर्मणः	–	ह्यकर्मणः
4. शरीरयात्रा + अपि	–	शरीरयात्रापि
5. पुरा + उवाच	–	पुरोवाच
6. आत्मतृप्तः + च	–	आत्मतृप्तश्च
7. तस्मात् + असक्तः	–	तस्मादसक्तः
8. यत् + यत् + आचरति	–	यद्यदाचरति
9. पार्थ + अस्ति	–	पार्थास्ति
10. सृजामि + अहम्	–	सृजाम्यहम्

<u>समासः</u>

प्र०–1 सविज्ञानम् – समास बताओ?

उ०– विज्ञानेन सहितम् – बहुव्रीहिः समासः

प्र०–2 मणिगणाः

उ०– मणीनां गणा: – षष्ठीतत्पुरुष: समास:

प्र०–3 सर्वभूतेषु

उ०– सर्वाणि भूतानि, तेषु – कर्मधारय समास:

प्र०–4 शशिसूर्ययो:

उ०– शशी च सूर्य: च, तयो: – द्वन्द्व समास:

प्र०–5 नराधमा:

उ०– नरेषु अधमा: – सप्तमीतत्पुरुष: समास:

प्र०–6 द्विजोत्तम:

उ०– द्विजेषु उत्तम: – सप्तमी तत्पुरुष:।

प्र०–7 अन्यदेवता:

उ०– अन्या: देवता: – कर्मधारय समास:

प्र०–8 अव्यक्तम्

उ०– न व्यक्त:, तम् – नञ्तत्पुरुष: समास:

प्र०–9 दृढव्रता:

उ०– दृढं व्रतं येषां ते – बहुव्रीहि: समास:

प्र०–10 अभ्यासयोगयुक्तेन

उ०– अभ्यास: एव योग: अभ्यासयोग: – कर्मधारय: समास:

वचन बताओ

प्र०–1 अश्वत्थ:, नारद:, यम:, सागर:, पवन:, राम:, दुर्योधन:, विराट:, द्रुपद:, सौभद्र:।

उ०– एकवचन।

प्र०–2 द्वाविमौ पुरुषौ लोके। लाभालाभौ जयाजयौ।

उ०– द्विवचन।

प्र०–3 द्विवचन बताओ?

उ०– **इन्द्रियस्येन्द्रियस्थार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।**
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।। ३–३४

प्र०–4 **इनके वचन बताओ।**

	साङ्ख्ययोगौ	पृथग्बाला:	प्रवदन्ति	न पण्डिता:।
उ०–	द्विवचन	बहुवचन	बहुवचन	बहुवचन

प्र॰–5 सर्वभूतहिते रताः।

उ॰– बहुवचन।

प्र॰–6 बहुवचन के 4 उदाहरण बताओ?

उ॰– समवेताः, पाण्डवाः, मामकाः, वेदवादरताः, वादिनः, कृपणाः, मनुष्याः, मानवाः, देवताः, मोहिताः।

विभक्ति बताओ

प्र॰–1 दुर्योधनः, शैब्यः, सौभद्रः, द्रुपदः, विराटः, अश्वत्थामा, ऋषिकेशः, धनञ्जयः, कृपः।

उ॰– प्रथमा विभक्तिः।

प्र॰–2 आचार्यम्, शङ्खम्, पाञ्चजन्यम्, ऋषीकेशम्, धीरम्।

उ॰– द्वितीया विभक्तिः

प्र॰–3 गुडाकेशेन, जीवितेन, राज्येन, लोभेन, दूरेण।

उ॰– तृतीया विभक्तिः।

प्र॰–4 नरकाय, युद्धाय, योगाय।

उ॰– चतुर्थी विभक्तिः।

प्र॰–5 तस्मात्, मरणात्, रणात्, भयात्, बुद्धियोगात्, क्रोधात्, सङ्गात्, कामात्, सम्मोहात्, बुद्धिनाशात्।

उ॰– पंचमी विभक्तिः।

प्र॰–6 सैन्यस्य, अस्माकम्, धर्मस्य, ते, अस्य, श्रोत्तव्यस्य, पुरुषस्य।

उ॰– षष्ठी विभक्तिः।

प्र॰–7 फलेषु, बुद्धौ, कर्मसु, दुःखेषु, सुखेषु, अन्तकाले।

उ॰– सप्तमी

प्र॰–8 सञ्जय, पृथिवीपते, अच्युत, भारत, पार्थ, गोविन्द, जनार्दन, कृष्ण, माधव, अर्जुन।

उ॰– सम्बोधन – हे सञ्जय।

सम्बोधन पर प्रश्न

प्र॰–1 अर्जुन ने श्रीकृष्ण को कितने विविध नामों से सम्बोधित किया है, सम्बोधन का अर्थ बताओ?

उ॰–
1. अच्युत (1 बार) सब परिस्थितियों में न डिगने वाले।
2. हृषिकेश (5 बार) इन्द्रियों के स्वामी।

3.	केशव	(6 बार)	केशी नामक असुर को मारने वाले।
4.	कृष्ण	(9 बार)	आकर्षण करने वाला।
5.	गोविन्द	(2 बार)	गौंवो को तथा इन्द्रियों को आनन्द देने वाले।
6.	मधुसूदन	(5 बार)	मधु नामक असुर का वध करने वाले।
7.	जनार्दन	(5 बार)	जीवों के पालक।
8.	माधव	(1 बार)	लक्ष्मीपति कृष्ण।
9.	पुरुषोत्तम	(5 बार)	पुरुषों में श्रेष्ठ।
10.	महेश्वर	(2 बार)	महान ईश्वर।
11.	परमेश्वर	(2 बार)	परम ईश्वर।
12.	हरि	(1 बार)	दु:ख हरण करने वाले।
13.	विष्णु	(2 बार)	जो सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके रखे हैं।
14.	प्रभो	(1 बार)	सृष्टि कर्ता।
15.	योगेश्वर	(2 बार)	योगियों के ईश्वर।
16.	विश्वमूर्ति	(1 बार)	विश्व स्वरूप।
17.	देवेश	(1 बार)	देवों का ईश्वर।
18.	जगन्निवास	(2 बार)	जगत् का आश्रय।
19.	यादव	(1 बार)	यदुवंशी।
20.	सखा	(1 बार)	मित्र।
21.	विश्वेश्वर	(1 बार)	विश्व का ईश्वर।
22.	देववर	(1 बार)	देवों में श्रेष्ठ।
23.	अरिसूदन	(2 बार)	शत्रु को नष्ट करने वाला।

(2) भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कितने नामों से सम्बोधित किया?

1.	गुडाकेश	(2 बार)	गुडा=नींद। नींद को जीतने वाला।
2.	अर्जुन	(18 बार)	ऋजु, सरल।
3.	पार्थ	(22 बार)	पृथा के पुत्र।
4.	परन्तप	(6 बार)	शत्रुओं का दमन करने वाला।
5.	भारत	(18 बार)	भरतवंशी।
6.	महाबाहो	(7 बार)	जिसकी बाहुएँ विशाल थी।
7.	कौन्तेय	(8 बार)	कुन्ती पुत्र।

8.	कुरुनन्दन	(3 बार)	कुरुवंश का पुत्र।
9.	धनञ्जय	(8 बार)	धन को जय किया है जिसने।
10.	अनघ	(2 बार)	निष्पाप (जिसमें कोई पाप नहीं)
11.	भरतर्षभ	(6 बार)	भारतवंशी
12.	पाण्डव	(4 बार)	पाण्डुपुत्र।
13.	किरीटी	(1 बार)	किरीट धारण करने वाला।
14.	पुरुषर्षभ	(1 बार)	पुरुषों में श्रेष्ठ।
15.	धनुर्धर	(1 बार)	धनुष्य चलाने में निपुण।
16.	सव्यसाची	(1 बार)	दोनों हाथों से धनुष्य चलाने वाला।

प्र॰ अर्जुन के दस नाम युक्त श्लोक बताओ?

उ॰– अर्जुन:फाल्गुनोजिष्णु किरीटीश्वेतवाहन:।
बिभत्सुर्विजय:कृष्णो सव्यसाची धनंजय:।।

१. अर्जुन: २. फाल्गुन: ३. जिष्णु, ४. किरीटी ५. श्वेतवाहन:
६. बिभत्सु: ७. विजय: ८. कृष्ण: ९. सव्यसाची
१०. धनञ्जय:।

श्लोक बोलने पर अन्वय बताओ –

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन:।। ६/५।।

- **अन्वय :–** आत्मानम् आत्मना उद्धरेत्। आत्मानं न अवसादायेत्। आत्मा एव हि आत्मन: बन्धु:। आत्मा एव आत्मन:रिपु:।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रित:।
प्राणापानसमायुक्त: पचाम्यन्नं चतुर्विधं।।१५/१४।।

- **अन्वय :–** अहं वैश्वानर: भूत्वा प्राणिनां देहम् आश्रित: प्राणापानसमायुक्त: चतुर्विधम् अन्नं पचामि।

– एकादश चक्र

– दैनन्दिन जीवन में गीता

कोरोना काल के कारण उपरोक्त दोनों अध्यायों से सत्र 2020–21 में कोई भी प्रश्न नहीं पूछा जाएगा। अतः इन्हें हटा दिया गया है।

प्रकाशक -
विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान
संस्कृति भवन, सलारपुर रोड, कुरुक्षेत्र - 136118 (हरियाणा)
दूरभाष/फैक्स : 01744-251903, 251904, 251905, 270515
वैबसाइट www.samskritisansthan.org ई-मेल sgp@samskritisansthan.org
ISBN 978-93-85256-13-4
9 789385 256134
₹ 20.00

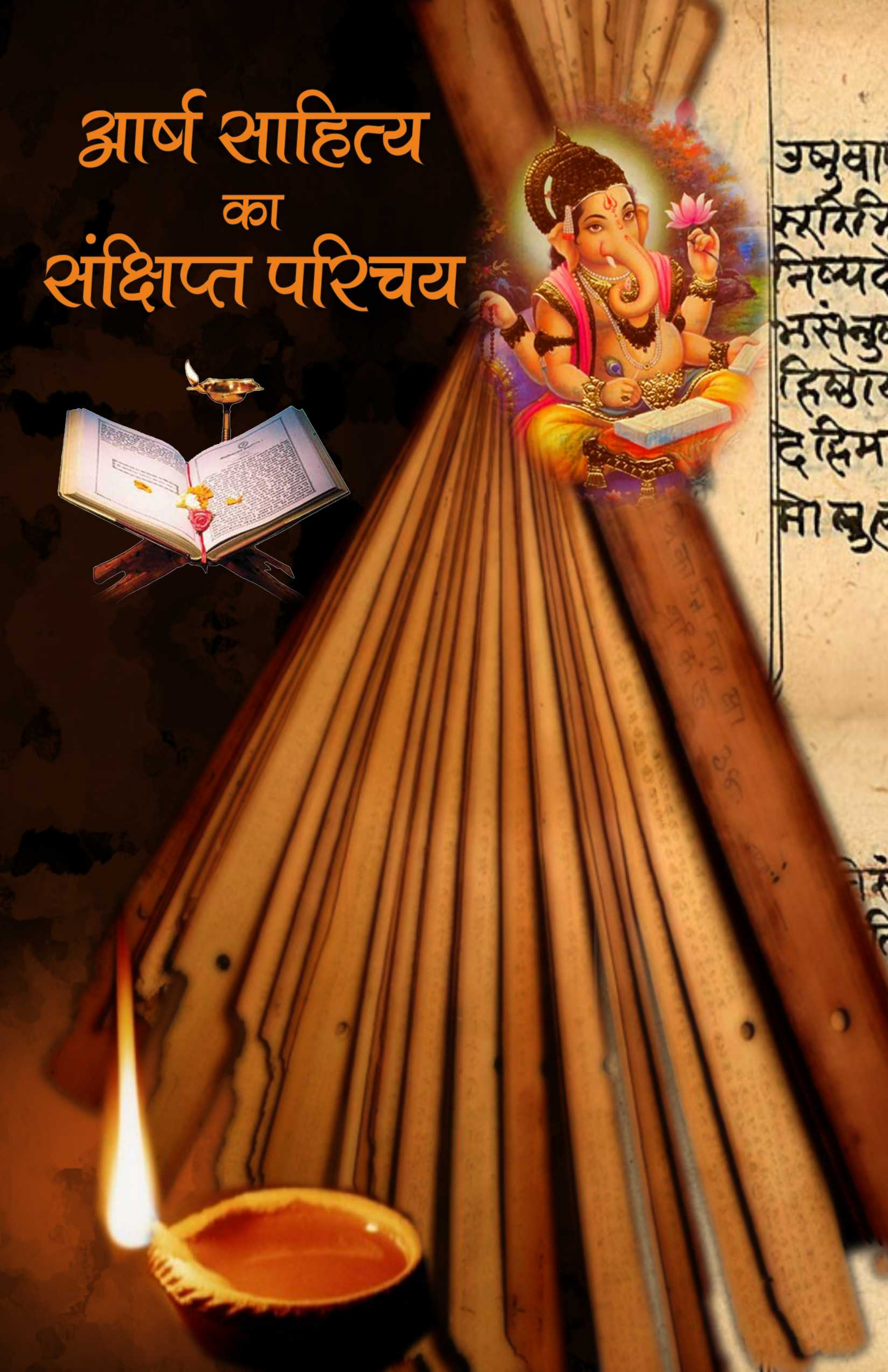
आर्ष साहित्य
का
संक्षिप्त परिचय

आर्ष साहित्य का संक्षिप्त परिचय

प्रधान सम्पादक
श्री ब्रजमोहन रामदेव
सम्पादक मण्डल
श्री मेघराज पालीवाल
श्री रसाल पुरोहित
श्री केसर सिंह राठौड़
सहयोग
श्री हरीराम सुथार

प्रकाशक
विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान
संस्कृति भवन, कुरुक्षेत्र- 136118 (हरियाणा)
दूरभाष/फैक्स : 01744-291903, 290515
Website : www.samskritisansthan.org
E-mail : sgp@samskritisansthan.org

प्रकाशक :

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान
संस्कृति भवन, कुरुक्षेत्र-136 118
दूरभाष/फैक्स : 01744-291903, 290515
Website : www.samskritisansthan.org
E-mail : sgp@samskritisansthan.org

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : युगाब्द 5117 (सन् 2016 ई०)

मूल्य : ₹

ISBN— ISBN 978-93-85256-17-2

मुद्रक : क्रेजी ऑफसेट प्रिंटर्ज, कुरुक्षेत्र

प्रकाशकीय

भारत की संस्कृति आरण्यक संस्कृति कही गई है। अरण्य अर्थात् वन में स्थित अपने आश्रमों में रहते हुए अध्ययन-मनन तथा विश्व कल्याण का चिंतन करने में रत हमारे ऋषियों ने न केवल विद्यार्थियों को मात्र अक्षर ज्ञान ही नहीं कराया बल्कि मानव जीवन के लिए एक ऐसी जीवनदृष्टि के सूत्र दिए जिन पर चल कर मनुष्य अपने जीवन को उन्नत बना कर स्वयं को अपने रचनाकार के समकक्ष बना सकता है।

कई शताब्दियों की विदेशी दासता और राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त भी अपनी उज्ज्वल ज्ञान परम्परा के प्रति जानकारी, रुचि तथा प्रेरणा के अभाव के परिणामस्वरूप पाश्चात्य जगत को सभी बातों में अपने से श्रेष्ठ मानने और उसके विपरीत स्वयं को अपने देश-समाज, रीति-रिवाज, परम्पराओं, मानबिन्दुओं-श्रद्धाकेन्द्रों, ऋषि-मनीषियों तथा शौर्यवान पूर्वजों तथा जीव-जगत जीवन के प्रति हमारी दृष्टि को हेय मानने को हमने प्रगतिशीलता की निशानी मान लिया। जो कुछ थोड़े से संस्कारवान व्यक्ति अपने जीवन में शास्त्र की महत्ता को स्वीकार करते भी हैं,अनेक बार वेद-उपनिषद-गीता-महाभारत के उदाहरण भी देते हैं या अपनी बात की प्रभावोत्पादकता स्थापित करने के प्रयास में कम से कम नामोल्लेख करते हैं, उनको भी वास्तविकता प्राय: यह होती है कि 'उपनिषद में ऐसा लिखा है' कहने पर यदि उनसे पूछा जाये कि 'किस उपनिषद में', तो उनके पास उत्तर नहीं होता। संस्कृत का अभ्यास न होना जहां इसका एक कारण है, वहीं वैदिक साहित्य के ज्ञानकाण्ड के प्रति अज्ञानता के कारण उसे केवल कर्मकाण्ड ही मान लिया जाना, वह केवल संन्यास का मोक्ष प्राप्ति की विधि सिखाते हैं, ऐसी धारणा भी वैदिक साहित्य के अध्ययन के प्रति दुर्लक्ष्य होने का कारण बन गए हैं। ऐसी परिस्थिति को देखते हुए मेरे मन में ऐसा विचार बार-बार आता था कि कम से कम वे विद्वज्जन तो आर्ष साहित्य के विषय में कुछ मूलभूत जानकारी रखें, जो उसके प्रति आदर तथा गौरव का भाव रखते हैं। एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता अनुभव हो रही थी जिसमें आर्ष तथा ऋषियों द्वारा रचित इस दिव्य साहित्य के समस्त अंगों की संक्षिप्त जानकारी एक स्थान पर संदर्भ रूप में प्राप्त हो सके। संयोग से जब आदर्श शिक्षण संस्थान, जैसलमेर ने अपनी वार्षिक पत्रिका के विशेषांक के रूप में ऐसा गागर में सागर प्रकाशित किया तो उसे देखने के उपरान्त 'खोज पूरी

हुई' का भाव मन में आया। बस, उसी विशेषांक का सम्पादित रूप पुस्तकाकार 'आर्ष साहित्य का संक्षिप्त परिचय' के रूप में आपके हाथों में है।

आदरणीय श्री बृजमोहन जी रामदेव तथा आदर्श शिक्षण संस्थान, जैसलमेर के समस्त बन्धुओं (स्थानाभाव के कारण जिनका नामोल्लेख यहां संभव नहीं), जिन्होने इस अत्यन्त श्रमसाध्य कार्य को अत्यन्त एकाग्रता और प्रामाणिकता के साथ सम्पादित किया और उससे भी अधिक उदारता के साथ उसे पुस्तकाकार प्रकाशन का दायित्व विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान को सौंपा, उनके प्रति आभार व्यक्त करने में मेरी लेखनी साथ छोड़ रही है - 'धन्यवाद' शब्द क्या इस महत्वपूर्ण की तुलना में अत्यन्त हल्का नहीं होगा? पुस्तक वेद-उपनिषद-ब्राह्मणग्रंथ-स्मृतियां-मीमांसाएं-प्रस्थानत्रयी आदि अथाह साहित्य को सूत्र रूप में संकलित करना ही संभव था। किन्तु, इन सूत्रों को पढ़कर - बीज को देखकर वट वृक्ष और बूंद को देखकर सागर का मात्र अनुमान लगाने के बजाए सुधी पाठकवृन्द में से कुछ की भी रुचि वटवृक्ष की परिक्रमा करने या सागर की लहरों का अवगाहन कर रत्नों से अंजुरी भरने के लिए जाग्रत हो गई तो सभी का श्रम साफल्य हो सकेगा।

ऋषि पंचमी, सं॰ 2073 वि॰

अवनीश भटनागर
सचिव
विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान,
कुरुक्षेत्र

सम्पादकीय

f'k{kk dh e|[; /kkjk ls nwj gksrh gekjh oSfnd&f'k{kk iz.kkyh

मुगलों व अंग्रेजों के शासनकाल में भारतीय शिक्षा प्रणाली (वैदिक–शिक्षा प्रणाली) हाशिये में डाल दी गई। 732000 गुरुकुल थे देश भर में जो संस्कृत माध्यम से वैदिक शिक्षा देते थे, जड़ से खत्म कर दिये गये। आचार्यों को मौत के घाट उतारा गया और बड़े–बड़े पुस्तकालयों को आग के हवाले किया गया। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली हम पर थोप दी गई। परिणाम यह हुआ कि इस देश की धरती पर जो चिरंतन चिन्तन विकसित हुआ था, उसे जान–बूझकर हमारी शिक्षा प्रणाली से बाहर कर दिया गया। भारत के आजाद होने पर भी हम इस स्थिति को क्यों नहीं बदल पाये, एक विचारणीय प्रश्न है।

इस देश की समस्त चिन्तनधारा का उद्‌गम वेद हैं, जिस प्रकार समस्त यूरोप की चिन्तनधारा का उद्‌गम प्लेटो व अरस्तू हैं। वस्तुतः भारतीय साहित्य का कोई भी अंग ऐसा नहीं, जिसका सम्बन्ध वेद से न हो। अतः वैदिक शिक्षा में सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का समावेश है। वेद की दृष्टि समग्र है। इसमें धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चारों पुरुषार्थों को समान महत्व दिया गया है। धर्म प्रथम स्थान पर है तथा मोक्ष अन्तिम लक्ष्य है। धर्म के आधार पर अर्थोपार्जन करना तथा आवश्यकताओं व कामनाओं को भी धर्मानुकूल बनाना, यह मानव के कल्याण का मार्ग है। ऐसा करते हुए व्यक्ति यदि अपने जीवन को समायोजित करता है तो अन्तिम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। मानव मात्र का कल्याण करने वाली वैदिक शिक्षा प्रणाली आज भारतीय शिक्षा की मुख्य धारा से अलग क्यों है? क्या संस्कृत के ज्ञान के बिना वैदिक शिक्षा के दीपक को प्रज्ज्वलित कर सकते हैं? मैकाले–पुत्रों की सोची समझी चाल का यह दुष्परिणाम है कि संस्कृत आज अपेक्षित है।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर शेल्डन पोलॉक कहते हैं– 'यदि भारतीय शिक्षा प्रणाली मौजूदा स्वरूप में ही चलती रही तो प्राचीन दौर के महान् ग्रन्थों को पढ़ने व समझने वाले नागरिकों की संख्या बहुत ही जल्द शून्य हो जायेगी।' यह विडम्बना है कि प्राचीन ग्रन्थों एवं आर्ष साहित्य को जन्म देने वाली संस्कृत भाषा आज अपनी जन्मभूमि में ही दम तोड़ रही है।

सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात पर विचार करने की है कि वैदिक जीवन दर्शन को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में किस प्रकार स्थान दिया जाये? ऐसा पाठ्यक्रम कैसे लागू किया जाये जिसमें इस देश के चिन्तन के मूल तत्वों का ज्ञान दिया जा सके, ताकि हमारे विद्यार्थी भारतीय सभ्यता व संस्कृति की विशेषताओं से परिचित हो सकें। भारतीय दर्शन पश्चिमी दर्शन की तरह बुद्धि–विलास नहीं है, अपितु जीवन से जुड़ा है। अतः इसका अध्ययन विद्यार्थी के जीवन में एक सन्तुलन पैदा करेगा, जिसकी आज बहुत आवश्यकता है। संस्कृत विषय का ज्ञान वैदिक शिक्षा का प्रवेश द्वार है। अतः हमारे पाठ्यक्रमों में अंग्रेजी के स्थान पर या साथ–साथ संस्कृत को जब तक अनिवार्य विषय नहीं बनाया जाता, तब तक हमारा यह स्वप्न पूरा नहीं हो सकेगा।

&c' tekgu jkeno

प्रधान सम्पादक

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृ.सं.
1.	**आर्ष साहित्य का संक्षिप्त विवेचन**	श्री रसाल पुरोहित	8
2.	**उपनिषद्**	श्री ब्रजमोहन रामदेव	88
3.	**हमारे ऋषि व ऋषिकायें**	श्री मेघराज पालीवाल	130
4.	**आर्ष साहित्य में दानवीर**	श्री ब्रजमोहन रामदेव	161
5.	**उपनिषदों की कथायें**	श्री ब्रजमोहन रामदेव	176
6.	**आर्ष साहित्य में जीवन दर्शन**	श्री केसरसिंह राठौड़	194
7.	**आर्ष-साहित्य में विज्ञान**	डॉ. दामोदर खत्री	216
8.	**विविध लेख**		
	(1) भारतीय जीवन में आर्ष साहित्य और शिक्षा	श्री दीनदयाल ओझा	234
	(2) वैदिक साहित्य परिचय	श्री मेघराज पालीवाल	237
	(3) श्रीमदभगवद्गीता माहात्म्य एवं बहिरंग परिचय	श्री सगराम काला	242
	(4) गीता में वर्णित मनुष्य की जातियाँ	श्री केसरसिंह राठौड़	244
	(5) सहकारिता दर्शन -भारतीय ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में	श्री हरिराम खत्री	246
	(6) वैदिक जीवन में आश्रम व्यवस्था	श्री नरपतसिंह	248
	(7) पारिवारिक आदर्श	श्रीमती शशिबाला शर्मा	250
	(8) जीवेम शरदः शतम् (सौ वर्ष तक जीने के सूत्र)	श्री भगवानाराम सैन	253
	(9) सुसंगठित होने के लिये प्रार्थना	श्री राजेश व्यास	255
	(10) आर्थिक समृद्धि के लिये प्रार्थना	श्री अमृत भूतड़ा	257
	(11) आचार्य की गरिमा	श्री उदयसिंह	260
	(12) प्राचीन भारत में युद्ध एवं सैन्य विज्ञान	डॉ. लक्ष्मीनारायण नागौरी	261
	(13) बालक के लालन-पालन के लिए शास्त्र विधान	श्रीमती रजनी गोपा	268
	(14) अष्टावक्र गीता	श्री सत्यनारायण गौतम	270
9.	**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**		272

आर्ष-साहित्य का संक्षिप्त विवेचन

1. **आर्ष-साहित्य का परिचय** - प्रस्तावना।
2. **आगम-शास्त्र**
3. **निगम-शास्त्र**

(अ) वेद - (1) संहिता (2) ब्राह्मण (3) आरण्यक (4) उपनिषद्
(5) श्रौतसूत्र (6) गृह्यसूत्र (7) धर्मसूत्र (8) शुल्वसूत्र
(9) प्रातिशाख्य (10) अनुक्रमणी।

(आ) वेदाङ्ग -(1) शिक्षा (2) कल्प (3) व्याकरण
(4) निरुक्त (5) छन्द (6) ज्योतिष।

(इ) वेद के उपाङ्ग **(1) दर्शन**- (क) वैशेषिक (ख) सांख्य (ग) योग
(घ) न्याय (ङ) मीमांसा (च) वेदान्त।

(2) स्मृति - मनुस्मृति, पराशर स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि।

(3) पुराण-इतिहास -(क) पुराण (ख) रामायण (ग) महाभारत।

(4) उपवेद- (क) अर्थवेद (अर्थशास्त्र) (ख) धनुर्वेद
(ग) गान्धर्ववेद (घ) आयुर्वेद।

(4) निबन्ध-ग्रन्थ

(5) उपसंहार

vk"k lkfgR; dk lkr & on

वेद ब्रह्म विद्या के ग्रन्थ भाग ही नहीं बल्कि स्वयं ब्रह्म हैं, शब्द ब्रह्म हैं। ब्रह्मानुभूति के बिना वेद का ज्ञान संभव ही नहीं है अर्थात् जिसे आर्ष–दृष्टि प्राप्त है वे ही वेद के सत्य का दर्शन कर सकते हैं। वेद की मूल चार संहिताओं – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के साथ ब्राह्मण भाग भी संलग्न रहते हैं जो इन संहिताओं (मंत्रों) की व्याख्या करते हैं। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्– ब्राह्मण के ही तीन विभाग हैं जो प्रत्येक संहिता के लिये अलग–अलग हैं। वेद धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चार प्रकार के पुरुषार्थों का प्रतिपादन करते हैं, जिनकी व्याख्या वेदांगों में स्पष्ट होती है। वेदांग छः हैं– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। इसके साथ चार वेदों के चार उपवेद भी है यथा– आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थवेद। सर्वसाधारण के लिये वेद के अर्थ और उसके भावों को सरल व बोधगम्य करने की दृष्टि से ऋषियों द्वारा

इतिहास व पुराणों की रचना की गई है। वेदों का विस्तार इतिहास–पुराणों द्वारा किया गया है। अतः इतिहास पुराण को पांचवाँ वेद माना गया है– ^bfrgkl% iqjk.k% iape% osnkuka osn%* (छान्दोग्य.)। इतिहास के अन्तर्गत रामायण और महाभारत ग्रन्थ तथा पुराणों में भगवान् वेदव्यास द्वारा रचित अठारह पुराण आते हैं।

वेद में जो विषय हैं, वे मानव मात्र का मार्गदर्शन करते हैं। मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त कब क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये, साथ ही प्रातःकाल जागरण से लेकर रात्रि शयन पर्यन्त सम्पूर्ण क्रिया कलाप वेदों के प्रमुख विषय हैं। मनुष्य जाति के प्राचीनतम इतिहास, सामाजिक नियम, राष्ट्रधर्म, सदाचार, कला, विज्ञान, साहित्य, दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिये एकमात्र साधन वेद ही हैं।

जीवन की समग्र दृष्टि देने वाले आर्ष–साहित्य के प्रमुख स्रोत वेद ही हैं। इस भाग में वैदिक ज्ञान से सम्बन्धित संक्षिप्त आलेख प्रस्तुत हैं।

शैशव दशा में देश प्रायः जिस समय सब व्याप्त थे,
निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढ़ता को प्राप्त थे ।
संसार को पहले हमीं ने ज्ञान–शिक्षा दान की,
आचार की, व्यापार की, व्यवहार की, विज्ञान की ।

समझा प्रथम किसने जगत् में गूढ़ सृष्टि महत्त्व को ?
जाना कहो किसने प्रथम जीवन–मरण के तत्त्व को ?
आभास ईश्वर–जीव का कैवल्य तक किसने दिया ?
सुन लो प्रतिध्वनि हो रही, यह कार्य आर्यों ने किया ।

फैला यहीं से ज्ञान का, आलोक सब संसार में,
जागी वहीं थी, जाग रही जो ज्योति अब संसार में,
इञ्जील और कुरान आदि थे न तब संसार में,
हमको मिला था दिव्य वैदिक बोध जब संसार में ।

–मैथिलीशरण गुप्त

।। ॐ ।।

1. आर्ष-साहित्य का संक्षिप्त परिचय

(1) प्रस्तावना :-

साङ्गोपाङ्गवेद का तात्पर्य है- अङ्ग और उपाङ्ग सहित वेद।

(क) वेद :- मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्। (आपस्तम्ब श्रौतसूत्र 24/1/31)- के अनुसार मंत्र/मंत्र - संहिताएँ/वेदमंत्रों की संहिताएँ (जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के नाम से प्रसिद्ध हैं) और ब्राह्मण/ब्राह्मण-ग्रंथ दोनों ही वेद हैं। इस सन्दर्भ में यह भी विचारणीय है कि शुक्लयजुर्वेद की संहिताओं में केवल मंत्रों का संकलन है जबकि कृष्णयजुर्वेद की संहिताओं में मंत्र और ब्राह्मण दोनों को स्थान दिया गया है अर्थात् मंत्र भी वेद हैं और ब्राह्मण भी वेद हैं।

इस सन्दर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य है कि कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा का मैत्रायणी ब्राह्मण और कठ शाखा का काठक ब्राह्मण क्रमशः मैत्रायणी-संहिता और कठ-संहिता के अंश हैं। ऐसा ही आरण्यक-ग्रंथों के सन्दर्भ में भी है। जैसे तैत्तिरीय ब्राह्मण का शेष अंश तैत्तिरीय आरण्यक है और शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम 14 वाँ काण्ड आरण्यक भी है और उपनिषद् भी, जो बृहदारण्यक-उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार ईशोपनिषद (ईश-उपनिषद्) शुक्लयजुर्वेद का 40वाँ अध्याय है। केनोपनिषद् सामवेद की जैमिनीय शाखा के तलवकार ब्राह्मण का 9वाँ अध्याय है। इसी प्रकार ऐतरेयोपनिषद् के सन्दर्भ में आदि शंकराचार्य ने ऋग्वेद की शाकल शाखा के ऐतरेय आरण्यक में दूसरे आरण्यक के चौथे, पाँचवें और छठे अध्याय को ही ऐतरेयोपनिषद् माना है जबकि वेदभाष्यकार सायण ने ऐतरेय आरण्यक, जिसमें 5 आरण्यक हैं, उनमें से दूसरे और तीसरे आरण्यक को ऐतरेयोपनिषद् माना है। ऐसे ही कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के, तैत्तिरीय आरण्यक के 7वें, 8वें और 9वें अध्याय को तैत्तिरीयोपनिषद् कहा जाता है। इसी प्रकार सामवेद की तलवकार शाखा के छान्दोग्य-ब्राह्मण के तीसरे से दसवें तक 8 अध्यायों का नाम छान्दोग्य उपनिषद् है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कहीं संहिताओं (मंत्र-संहिताओं) का अंश ब्राह्मण-ग्रंथों में है, तो कहीं ब्राह्मण-ग्रंथों का अंश आरण्यकों में है। इसी प्रकार किसी उपनिषद् में संहिता का अंश है, तो किसी में ब्राह्मण-ग्रंथ का तो किसी में आरण्यक का। अर्थात् वेद (वेदों का ज्ञान) चार भागों में विभक्त है- **संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्।**

वेद

संहिता | ब्राह्मण | आरण्यक | उपनिषद्

उपनिषद् चूँकि वेद का अन्तिम भाग है, इसलिये वेदान्त नाम से प्रसिद्ध है।

(ख) वेद के अङ्ग (वेदाङ्ग) :- वेद के अङ्ग (वेदाङ्ग) 6 हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष।

वेद के अङ्ग (वेदाङ्ग)

शिक्षा | कल्प | व्याकरण | निरुक्त | छन्द | ज्योतिष।

(ग) वेद के उपाङ्ग (वेद के उप-अङ्ग) - श्री वामन शिवराव आप्टे के प्रसिद्ध संस्कृत-हिन्दी कोश में 'उपाङ्ग' शब्द के संदर्भ में लिखा गया है- ''वेदाङ्गों के परिशिष्ट स्वरूप लिखा गया ग्रंथ-समूह (ये चार हैं- पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि)।'' इससे स्पष्ट है कि न्याय और मीमांसा आदि दर्शन जो वेद के उपाङ्ग के रूप में प्रसिद्ध हैं, इनके अतिरिक्त पुराण और धर्म-शास्त्र (मनुस्मृति आदि स्मृति-ग्रंथ) भी वेद के उपाङ्ग हैं। यहाँ यह ध्यान देना आवश्यक है कि श्री आप्टे 4 ग्रंथ-समूहों को उपाङ्ग बताते हैं, लेकिन वे ''पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि'' के रूप में जब चारों का उल्लेख करते हैं तो न्याय और मीमांसा, इन दोनों के दर्शन की श्रेणी में आ जाने से इनकी संख्या 3 रह जाती है।इस समस्या का समाधान 'पुराणेतिहास-उपवेद-दर्शन-धर्मशास्त्राणि' के रूप में किया जा सकता है। यहाँ श्री आप्टे के उक्त कथन में न्याय और मीमांसा के स्थान पर दर्शन /दर्शन-ग्रंथों के आ जाने से तो किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती और पुराणों तथा इतिहास (इतिहास-ग्रंथ) का जोड़ा तो प्रसिद्ध है ही, साथ में उपवेद के आ जाने से श्री आप्टे के उस कथन का समन्वय इस प्रकार हो जाता है -''पुराणेतिहास-दर्शन- उपवेद-धर्मशास्त्राणि''।

वेद के उपाङ्ग

दर्शन | स्मृति (धर्मशास्त्र) | पुराण-इतिहास | उपवेद

अर्थवेद (अर्थशास्त्र), धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और आयुर्वेद- ये चारों **उपवेद** के रूप में प्रसिद्ध हैं।

अर्थवेद (अर्थशास्त्र) की ऋग्वेद के उपवेद के रूप में मान्यता है लेकिन महर्षि शौनक ने अपने चरण व्यूह में अर्थशास्त्र को अथर्ववेद का उपवेद

स्वीकार किया है। धनुर्वेद यजुर्वेद का और गान्धर्ववेद सामवेद का उपवेद है। अथर्वपरिशिष्ट (चरणव्यूह 49)- में 'ब्रह्मवेदस्य- आयुर्वेद- उपवेदः' इस प्रकार कहकर आयुर्वेद की गणना अथर्ववेद के उपवेद के रूप में है। आचार्य सुश्रुत लिखते हैं कि आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग है- आयुर्वेदं नाम-उपाङ्गं- अथर्ववेदस्य। (सुश्रुत. 1/16)

इस प्रकार आयुर्वेद को एक स्थान पर अथर्ववेद का उपवेद तो दूसरे स्थान पर अथर्ववेद का उपाङ्ग कहा गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपवेद उपाङ्ग ही हैं।

शुक्रनीति में आगम (तन्त्र) शास्त्र को अथर्ववेद का उपवेद कहा गया है-

ऋग्यजुः साम चाथर्व वेदाः आयुर्धनुः क्रमात्।
गान्धर्वश्चैव तन्त्राणि उपवेदाः प्रकीर्तिता।।

(शुक्रनीति, मिश्र प्रकरण, 17)

-अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद - ये चार वेद हैं और क्रम से आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद एवं तन्त्र- ये चार उपवेद हैं।

अन्यत्र स्थापत्य-वेद (स्थापत्य-शास्त्र/शिल्प-शास्त्र) को अथर्ववेद का उपवेद कहा गया है -

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः।
स्थापत्यम्-अपरम्-उपवेदः चतुर्विधः।।

जैसे हाथ-पैर-आँख-नाक-कान आदि अङ्ग और उपाङ्ग-विहीन व्यक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती, वैसे ही अङ्ग और उपाङ्ग-विहीन वेद की भी कल्पना नहीं की जा सकती। जैसे 'मनुष्य' शब्द का उच्चारण सुनते ही हाथ-पैर आदि अङ्ग-उपाङ्ग सहित उसका चित्र आँखों के सामने आ जाता है, वैसे ही 'वेद' शब्द का उच्चारण सुनते ही अङ्ग-उपाङ्ग-सहित वेद का स्वरूप आँखों के सामने आ जाना चाहिये।

निष्कर्ष -

1. **वेद** :- संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्।
2. **वेद के अङ्ग (वेदाङ्ग)** :- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष।
3. **वेद के उप-अङ्ग (उपाङ्ग)** :- दर्शन, स्मृति, पुराण-इतिहास एवं उपवेद।

साङ्गोपाङ्ग वेद (अङ्ग-उपाङ्ग सहित वेद)

वेद	**वेदाङ्ग (वेद के अङ्ग)**	**वेद के उपाङ्ग**
संहिता	शिक्षा	दर्शन
ब्राह्मण	कल्प	स्मृति
आरण्यक	व्याकरण	पुराण-इतिहास
उपनिषद्	निरुक्त	उपवेद
	छन्द	
	ज्योतिष	

अङ्ग एवं उपाङ्ग सहित वेद में ही सम्पूर्ण आर्ष-साहित्य संग्रहीत तथा विवेचित है। इसीलिये प्राचीनकाल से ही भारत में अङ्ग एवं उपाङ्ग सहित वेद पढ़ने की (अर्थात् केवल वेद ही पढ़ने की नहीं) परम्परा रही है। साङ्गोपाङ्गवेद (अङ्ग-उपाङ्ग सहित वेद) के अन्तर्गत उपवेद नामक उपाङ्ग में से ''**आगम**'' (आगम-शास्त्र/तन्त्र-शास्त्र) को पृथक करने के बाद शेष बचा वेद और वेदों से जुड़ा वेदमूलक सम्पूर्ण साहित्य ही ''**निगम**'' नाम से प्रसिद्ध है। इन्हीं आगम और निगम का, अथवा कहें कि साङ्गोपाङ्ग वेद का ही इस आलेख में संक्षिप्त रूप से विवेचन किया जा रहा है।

(2) आगम (आगम-शास्त्र)

यस्माज्जातं जगत्सर्वं यस्मिन्नेव विलीयते।
येनेदं धार्यते चैव तस्मै ज्ञानात्मने नमः।।

सम्पूर्ण आर्ष-साहित्य **निगम** और **आगम** नाम से दो भागों में विभक्त है। वेदों से लेकर निबन्ध -ग्रन्थों तक की परम्परा को 'निगम' कहा जाता है। इसी के समान जो दूसरी अनादि परम्परा है, उसे 'आगम' कहा जाता है। इन्हीं आगम और निगम ग्रन्थों में जगत्-जननी जगदम्बा का यश गाया गया है, इसीलिये हम सब माँ दुर्गा की आरती में ये पंक्तियाँ बोलते हैं -

ब्रह्माणी रुद्राणी, तुम कमला रानी।
आगम-निगम बखानी, तुम शिव पटरानी।। (जय अम्बे गौरी ....)

आगम-शास्त्र (तन्त्र शास्त्र)

आगम के दो भाग हैं - दक्षिण-आगम और वाम-आगम। वेदों में ही दक्षिण-आगम का मूल है और पुराणों में उसका विस्तार हुआ है। इसीलिये सनातन परम्परा में निगम और आगम (दक्षिण-आगम) दोनों को प्रमाण माना जाता है।

आगम शास्त्र का विषय है – उपासना। कुलार्णवतन्त्र नामक आगम ग्रन्थ में **तन्त्र शास्त्र** को इस प्रकार परिभाषित किया गया है –

मुदं कुर्वंति देवानां मनांसितारयन्ति च।
तस्मात् तन्त्र इति ख्यातो दर्शितिव्यः कुलेश्वरि।। (अध्याय 77)

अर्थात् पूजा (उपासना) से देवताओं को प्रसन्न करने वाले तथा साधकों को संसार–सागर से पार करने वाले शास्त्र को 'तन्त्र–शास्त्र' कहते हैं। इसी प्रकार अपने इष्टदेवता की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये ज्ञान सहित उपासना का वर्णन जिस शास्त्र में किया गया है, उस शास्त्र को 'आगम' कहते हैं

आगतं शिव वक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजा श्रुतौ।
एतस्मादागमः प्रोक्तः विद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभिः।।

अर्थात् तत्त्वदर्शी विद्वानों ने भगवान् शिव द्वारा कहे गये और पार्वती द्वारा सुने गये विषय को 'आगम' बताया है। (वैष्णव–आगम में लक्ष्मी तथा विष्णु का, सौर एवं वैखानस आदि आगम ग्रन्थों में क्रमशः सूर्य एवं ब्रह्म का वक्ता–श्रोता रूप में निर्देश है। इसलिये यहाँ शक्ति एवं शक्तिमान के संवाद के रूप में ही 'आगम' शब्द की व्युत्पत्ति को समझा जाना चाहिये।) विष्णु, शिव और शक्ति की उपासना से सम्बन्ध रखने वाले क्रमशः तीन प्रधान आगम है – वैष्णव–आगम, शैव–आगम और शाक्त–आगम।

वैष्णव–आगम

पाञ्चरात्र–आगम (उपलब्ध 13) **वैखानस–आगम**

1. अहिर्बुध्न्य संहिता
2. ईश्वर संहिता
3. कपिञ्जल संहिता
4. जयाख्य संहिता
5. पराशर संहिता
6. पाद्म तन्त्र
7. बृहद्ब्रह्म संहिता
8. भरद्वाज संहिता
9. लक्ष्मी तन्त्र
10. विष्णु तिलक
11. श्रीप्रश्न संहिता
12. विष्णु संहिता
13. सात्वत संहिता

शैव–आगम

(28 मुख्य लेकिन उपतन्त्रों को मिलाकर 208 जिनमें से 64 मुख्य, परन्तु उपलब्ध नहीं)

शिवाचार्य के प्रामाणिक ग्रन्थ	वीरशैवमत का प्रामाणिक ग्रंथ	प्रत्यभिज्ञामार्ग में 92 आगम ग्रंथ	इस मत के अन्य प्रधानग्रन्थ
1. पाशुपत सूत्र	सिद्धान्त शिखामणि	प्रमाण माने जाते हैं,	1. स्पन्दसर्वस्व
2. नरेश्वर परीक्षा		उनमें से मुख्य तीन हैं,	2. शिवदृष्टि
3. तत्त्व संग्रह		जोशिवसूत्र पर आधारित हैं	3. परात्रिंशिका
4. तत्त्व त्रय		1. सिद्धान्त तन्त्र	4. त्रिवृत्ति
5. भोगकारिका		2. नामक तन्त्र	5. ईश्वरप्रत्य–भिज्ञाकारिका
6. मोक्षकारिका		3. मालिनी तन्त्र	6. सिद्धित्रयी
7. परमोक्षनिराशकारिका			7. शिवस्तोत्रावली
8. श्रुतिसूक्तिमाला			8. तन्त्रालोक
9. चतुर्वेद–तात्पर्यसंग्रह			
10. तत्त्वप्रकाशिका			
11. सूतसंहिता			
12. नादकारिका			
13. रत्नत्रय			

शाक्त–आगम

(64 ग्रन्थ मुख्य लेकिन सभी उपलब्ध नहीं)

तन्त्र के प्रतिपादक ग्रन्थ जिनकी भाष्य–टीकाएँ भी हैं –	अन्य मुख्य उपलब्ध ग्रन्थ
1. कौलोपनिषद	1. कुलार्णव
2. अरुणोपनिषद्	2. कुलचूड़ामणि
3. अद्वैतभावोपनिषद्	3. तन्त्रराज
4. कालिकोपनिषद्	4. शक्तिसंगमतंत्र
5. भावनोपनिषद्	5. कालीविलास
6. बह्वचोपनिषद्	6. ज्ञानार्णव
7. त्रिपुरोपनिषद्	7. नामकेश्वर
8. तारोपनिषद्	8. महानिर्वाण

9. रुद्रयामल
10. त्रिपुरारहस्य
11. दक्षिणामूर्तिसंहिता
12. प्रपञ्चसार (तान्त्रिक रहस्यों का संग्रह)
13. शारदातिलक (तान्त्रिक रहस्यों का संग्रह)
14. मन्त्रमहार्णव (तन्त्र का विश्वकोश)

टिप्पणी – उपर्युक्त सभी ग्रंथों के अतिरिक्त –

1. मिश्रमार्ग के 8 ग्रन्थ हैं– चन्द्रक, ज्योत्स्नावती, कलानिधि, कुलार्णव, कुलेश्वरी, भुवनेश्वरी, बार्हस्पत्य और दुर्वासस।

2. समयाचार में ''शुभ–आगम–पञ्चक'' नाम से निम्नलिखित 5 संहिताएँ प्रमाण मानी जाती हैं –

(1) वाशिष्ठ संहिता (2) सनक संहिता (3) शुक संहिता (4) सनन्दन संहिता (5) सनत्कुमार संहिता।

3. श्रीविद्या की दो संतान परम्पराओं में से लोपामुद्रा नामक संतान परम्परा लुप्त हो गई है।

4. तीनों आगमों के अनेक ग्रन्थों में से बहुत से ग्रंथों पर भाष्य, टीका, कारिका तथा सार संक्षिप्त ग्रंथ भी हैं।

वैष्णव–आगम :– वैष्णव आगम में पाञ्चरात्र–आगम और वैखानस–आगम इन दोनों के ग्रन्थ मिलते हैं। पाञ्चरात्र संहिताओं में से केवल विष्णु–संहिता, ईश्वर–संहिता, पराशर–संहिता, भरद्वाज–संहिता, विष्णु तिलक और लक्ष्मी तंत्र आदि 13 संहिताएँ ही उपलब्ध हैं।

शैव–आगम :– शिव के मुख से 28 तन्त्र प्रकट हुए। उपतन्त्रों को मिलाकर ये 208 हो जाते हैं, जिनमें से 64 मुख्य हैं, परन्तु वे भी सब उपलब्ध नहीं हैं।

शाक्त–आगम :– सृष्टि के प्रारम्भ से ही पृथ्वी पर सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकार के मनुष्य रहे हैं। इसलिये उनके लिये उपासना की दृष्टि से सात्विक, राजसिक और तामसिक ग्रन्थों का निर्माण हुआ। सात्विक ग्रन्थों को **तंत्र या आगम** कहा जाता है, राजसिक ग्रन्थों को **यामल** कहा जाता है तथा तामसिक ग्रन्थों को **डामर** कहा जाता है।

शाक्त आगम में भी 64 ग्रन्थ मुख्य माने जाते हैं, लेकिन उनमें से कुछ ही उपलब्ध हैं। त्रिपुरोपनिषद्, तारोपनिषद् आदि अनेक ग्रन्थों की भाष्य टीकाएँ भी

हैं। कुलार्णव, तन्त्रराज, रुद्रयामल आदि शाक्त ग्रन्थों के अन्य मुख्य ग्रंथ हैं। प्रपञ्चसार और शारदातिलक में तान्त्रिक रहस्यों का अच्छा संग्रह है। 'मन्त्रमहार्णव' नामक ग्रन्थ तो तंत्र का विश्वकोष ही है। अनेक आगम-ग्रन्थों में भी बहुतों पर भाष्य, टीका, कारिका तथा सार-संक्षिप्त ग्रन्थ हैं।

वाम आगम (वाम मार्ग/कौलमत) :- असुरों की उपासना की परम्परा का मुख्य शास्त्र वाम-आगम है।

अथर्ववेद :- अथर्ववेद में मंत्र एवं तन्त्र विद्याओं का अधिक संख्या में वर्णन मिलता है।

दुर्गासप्तशती :- 700 श्लोकों वाली दुर्गासप्तशती मार्कण्डेय पुराण का ही एक अंश है। देवी की उपासना का साधन होने के साथ-साथ यह तंत्र साधना की सरल कुंजी है। इसी में 'या देवी सर्वभूतेषु' आदि उत्तम बोध युक्त वचनों से देवी की स्तुति की गई है। इसमें मुक्ति के लिये ज्ञान का मार्ग दिखाने वाली तीन महाशक्तियों के स्वरूपों की विशद् विवेचना की गई है।

सौन्दर्यलहरी :- आदि जगद्गुरु शंकराचार्य ने उपासना से सम्बन्ध रखने वाले अपने अद्वितीय ग्रन्थ ''सौन्दर्यलहरी'' में योग एवं तन्त्र के गूढ़ रहस्यों की ओर संकेत किया है।

तन्त्र के मूल आधार हैं- 'मन्त्र'। मन्त्र के उच्चारण से वातावरण में स्थित वायु के कणों में जो स्पन्दन होता है, उससे हम सब अवगत हैं। सृष्टि की उत्पति में स्पन्दन की भूमिका को वर्तमान वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में भी MRI और पथरी के इलाज में स्पन्दन के महत्व से हम सब अवगत हैं। प्राचीन ऋषियों ने भी स्पन्दनों से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान और विज्ञान को प्राप्त कर तन्त्रशास्त्र (आगम-शास्त्र) की आधारशिला रखी और अपने त्याग और समर्पण से पीढ़ी-दर-पीढ़ी तंत्रशास्त्र को पुष्पित और पल्लवित किया। आर्ष-साहित्य से सम्बन्ध रखने वाले सारे आगम ग्रन्थों की ओर विद्वानों का ध्यान शीघ्र आकृष्ट हो और उससे सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण हो- इसी मङ्गलकामना के साथ आइये अब आगे हम निगम ग्रन्थों के सम्बन्ध में अवगत हों।

इस आलेख की प्रस्तावना में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि उपवेद उपाङ्ग (वेद के उप- अङ्ग) ही हैं और शुक्रनीति में तन्त्र/तन्त्रशास्त्र/आगम शास्त्र की गणना उपवेदों में की गई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आगम (आगम-शास्त्र/तन्त्रशास्त्र) वेद के उपाङ्ग ही हैं। परम्-अवधूत और अवधूतश्रेष्ठ कहकर तन्त्रशास्त्र जिनका परम आदर करता है उन महर्षि दत्तात्रेय ने धर्म एवं

समाज का पुनः संस्थापन किया था। इस सन्दर्भ में ब्रह्मपुराण एवं विष्णुधर्मोत्तर पुराण में विस्तृत वर्णन है। भक्त प्रह्लाद को, महासती मदालसा के पुत्र अलर्क एवं भगवान् परशुराम को भी योग एवं ज्ञान महर्षि दत्तात्रेय की कृपा से प्राप्त हुआ था।

निर्गुण–निराकार–ब्रह्म के उपासक आदि जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्य ने भी आगम–रहस्यों (तान्त्रिक–रहस्यों) पर प्रकाश डाला है। गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज, काशी के महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथजी कविराज आगम–शास्त्र (तन्त्र–शास्त्र) के प्रख्यात विद्वान थे। सर जॉन वुडरफ भी आगम–शास्त्र तथा शक्ति–तत्त्व के विद्वान के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं।

तन्त्र–शास्त्र का उद्देश्य मन्त्रों द्वारा देवताओं (प्राकृतिक प्राण देवताओं) की उपासना के माध्यम से जन–जन की कठिनाइयों तथा दुःखों को दूर करना है। इस प्रकार इस शास्त्र का उद्देश्य लोक–कल्याण ही है। यदि मन्त्रों द्वारा देवी–देवताओं की उपासना करने वाला उपासक चाहे तो मन्त्र–शक्ति द्वारा अपने साधना–पथ पर आगे बढ़ता हुआ मोक्ष का भागी बन सकता है। इसलिये हमें तन्त्र–शास्त्र के सम्बन्ध में यह विचार नहीं रखना चाहिये कि यह झाड़–फूँक और टोने–टोटकों से सम्बन्ध रखने वाला शास्त्र है, और हेय है।

3. निगम (निगम–शास्त्र)

वेदों से लेकर निबन्ध ग्रन्थों तक की परम्परा को **निगम** कहा जाता है।

(क) वेद :- (1) संहिता :- वेद और वेदों पर आधारित सम्पूर्ण वैदिक साहित्य भारतीय संस्कृति के ही नहीं बल्कि मानव सभ्यता के प्राण हैं। वैदिक साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है कि वह किसी विशेष जाति, सम्प्रदाय या मत के अनुयायियों के लिये नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के लिये है। वेदों के सम्बन्ध में एक बात बड़ी आश्चर्यजनक है कि पिछले हजारों वर्षो में इस पृथ्वी पर बहुत कुछ बदल गया। लेकिन चारों वेद अर्थात् चारों मंत्र–संहिताएँ आज भी वैसी की वैसी ही हैं, जैसी हजारों वर्ष पहले थी। उनमें एक भी मंत्र के घटने और बढ़ने की बात तो छोड़ी जाए, उनके एक मंत्र के अन्दर न तो एक भी अक्षर घटा है और न बढ़ा है। अर्थात् हजारों वर्ष बाद भी चारों वेद पूर्णतः सुरक्षित तथा अपरिवर्तित हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी पिछली 100 से अधिक पीढ़ियाँ वेदों की सुरक्षा को लेकर कितनी सजग और समर्पित थीं और इसके लिये उन्होंने कितना प्रयास किया होगा।

वेदमंत्रों के संकलन को संहिता या मन्त्र संहिता कहा जाता है। महर्षि कृष्णद्वैपायन ने वेद का विस्तार करते हुए चार वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) अर्थात् चार संहिताओं का निर्माण किया, इसीलिये वे वेदव्यास कहलाये :

(**वेदान् विव्यास यस्मात् स वेदव्यास इति स्मृतः।** महाभारत 1/63/88)

महर्षि वेदव्यास ने अपने शिष्य पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनी को सामवेद तथा सुमन्तु को अथर्ववेद का ज्ञान दिया। उन चारों ने अपने शिष्यों को और उन्होंने अपने-अपने शिष्यों को वेदों का अध्ययन करवाया (श्रीमद्भागवत पुराण 1/4/19-23)।

अलग-अलग ऋषियों ने अपने -अपने शिष्यों को अलग-अलग तरीकों से वेदों को पढ़ाया। किसी ऋषि ने एक छंद के समस्त मंत्र एक साथ पढ़ाये, किसी ऋषि ने एक देवता के समस्त मंत्र एक साथ पढ़ाये, किसी ऋषि ने मंत्रों को उनके उपयोग के अनुसार पढ़ाया और किसी ऋषि ने मंत्रों को उनके विषय के अनुसार पढ़ाया। इस प्रकार एक ही वेद को अलग-अलग तरीके से पढ़ाने से एक ही वेद की अनेक शाखायें हो गईं।

महर्षि पतञ्जलि अपने महाभाष्य में ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000 और अथर्ववेद की 9 शाखाओं को मिलाकर चारों वेदों की कुल 1131 शाखाओं का उल्लेख करते हैं।

प्रत्येक शाखा के संहिता से लेकर अनुक्रमणिका तक 10 ग्रन्थ भले ही हों, परन्तु प्रधान रूप से प्रत्येक शाखा की सम्पूर्ण वेद राशि 4 भागों में ही विभक्त है -

(1) संहिता (2) ब्राह्मण (3) आरण्यक (4) उपनिषद्।

ब्रह्मचर्य आश्रम से लेकर संन्यास तक प्रत्येक आश्रम में अपनी शाखा की सम्पूर्ण वेद राशि (संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्) का अध्ययन करते ही रहना चाहिये। लेकिन ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रधान रूप से संहिताओं का अध्ययन करना चाहिये। गृहस्थाश्रम में प्रधान रूप से ब्राह्मण ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये। वानप्रस्थ आश्रम में प्रधान रूप से आरण्यकों का अध्ययन करना चाहिये और संन्यास आश्रम में प्रधान रूप से उपनिषद् का अध्ययन करना चाहिये। वेद की प्रत्येक शाखा के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, शुल्वसूत्र, प्रातिशाख्य और अनुक्रमणी नामक कुल दस ग्रंथ होते हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने चारों वेदों की जो कुल 1131 शाखायें बताई है, उनमें से आज केवल कुछ ही उपलब्ध हैं; और जो उपलब्ध हैं उनमें से किसी की संहिता उपलब्ध नहीं है तो किसी का ब्राह्मण उपलब्ध नहीं है, किसी का आरण्यक उपलब्ध नहीं है, तो किसी का उपनिषद्, तो किसी का श्रौतसूत्र, तो किसी का गृह्यसूत्र उपलब्ध नहीं है, किसी का धर्मसूत्र उपलब्ध नहीं है, तो किसी का शुल्वसूत्र, किसी का प्रातिशाख्य उपलब्ध नहीं है, तो किसी का अनुक्रमणी नामक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

अनेक आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में चारों वेदों से सम्बन्ध रखने वाली चार मंत्र संहिताएँ ही वेद हैं। लेकिन सनातन परम्परा और उसका सम्मान करने वाले विद्वानों की दृष्टि में सम्पूर्ण वेद राशि चार भागों में विभक्त हैं – (1) संहिता (2) ब्राह्मण (3) आरण्यक (4) उपनिषद् – अर्थात् केवल संहिता ही वेद नहीं हैं बल्कि प्रत्येक संहिता के साथ सम्बन्ध रखने वाले ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् भी वेद हैं।

चारों वेद तथा उनकी उपलब्ध शाखाएँ :-

क्र. वेद	**उपलब्ध शाखाएँ**
1. ऋग्वेद	(1) शाकल (शुद्ध रूप में प्राप्त) (2) शाङ्खायन
2. यजुर्वेद	
(अ) शुक्लयजुर्वेद	(1) काण्व (2) माध्यन्दिनी
(ब) कृष्णयजुर्वेद	(1) तैत्तिरीय (2) मैत्रायणी (3) कठ (4) कापिष्ठल (5) श्वेताश्वतर
3. सामवेद	(1) कौथुमी (2) जैमिनीय (3) राणायनीया (इसका कुछ ही अंश प्राप्त है)।
4. अथर्ववेद	(1) पैप्पलादी (2) शौनकीया

यजुर्वेद के दो प्रकार के पाठ हैं। एक को शुक्लयजुर्वेद तथा दूसरे को कृष्णयजुर्वेद कहते हैं। शुक्लयजुर्वेद की 15 तथा कृष्णयजुर्वेद की 86 शाखायें थीं।

(अ) ऋग्वेद – विश्व के समस्त विद्वान ऋग्वेद को विश्व का सबसे प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। चारों वेदों में सबसे अधिक मंत्र भी ऋग्वेद में ही है, इसलिये चारों वेदों में ऋग्वेद ही सबसे बड़ा है। ऋग्वेद के मंत्रों को ऋचा कहते हैं। ऋग्वेद के मंत्र पद्यात्मक, अर्थात् छन्दों में बद्ध हैं। उनमें अक्षरों की संख्या निर्धारित है।

ऋग्वेद के मंत्रों को दो क्रमों में विभक्त किया गया है –

1. अष्टक क्रम और 2. मण्डल क्रम।

1. **अष्टक क्रम** – इस क्रम के अनुसार सम्पूर्ण ऋक्संहिता 8 अष्टकों में विभक्त है। प्रत्येक अष्टक में 8 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में कुछ वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में कुछ ऋचाएँ हैं। ये ऋचाएँ प्रायः 5–5 हैं, परन्तु 1 ऋचा से लेकर 9 ऋचाओं के वर्ग भी मिलते हैं। सम्पूर्ण ऋक्संहिता में 2006 वर्ग हैं।

2. **मण्डल क्रम** –इस क्रम के अनुसार सम्पूर्ण ऋक्संहिता 10 मण्डलों में विभक्त है। प्रत्येक मण्डल में अनेक अनुवाक्, प्रत्येक अनुवाक् में अनेक सूक्त और प्रत्येक सूक्त में एकाधिक ऋचाएँ हैं।

ऋग्वेद के सभी 10 मण्डलों में 85 अनुवाक् और 1017 सूक्त हैं। 11 और सूक्त हैं जो बालखिल्य के नाम से जाने जाते हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में कुल 1028 सूक्त हो जाते हैं।

वेद मंत्रों में किसी भी प्रकार की मिलावट न हो इसके लिये ऋषियों ने वेदमंत्रों को तो क्या उनके शब्दों और अक्षरों तक को गिन रखा था। ऋग्वेद की वर्तमान में उपलब्ध शाकल संहिता में ऋचाओं की संख्या 10552 है, ऋचाओं के पदों (शब्दों) की संख्या 153826 तथा ऋचाओं के अक्षरों की संख्या 432000 है। कात्यायन आदि ऋषियों ने अनुक्रमणी नामक ग्रंथों में इसका विवेचन प्रस्तुत किया है।

ऋग्वेद की शाखायें :– महीदास–ऐतरेयकृत चरणव्यूह नामक ग्रन्थ के अनुसार ऋग्वेद की 21 में से 5 ही शाखायें प्रमुख हैं – शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन, माण्डूकायन।

1. **शाकल शाखा** – ऋग्वेद की वर्तमान प्रचलित संहिता शाकल शाखा की ही संहिता मानी जाती है। इसके ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् उपलब्ध हैं।
2. **शाङ्खायन (कौषीतकि) शाखा** – वर्तमान में इसकी संहिता तो उपलब्ध नहीं है, परन्तु इसके ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् उपलब्ध हैं।
3. **वाष्कल शाखा** – वर्तमान में इसके संहिता आदि कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं है।
4. **आश्वलायन शाखा**– वर्तमान में इसकी भी संहिता, ब्राह्मण ग्रंथ और उपनिषद् उपलब्ध नहीं है। लेकिन इसके श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं। 17वीं शताब्दी तक इसके अन्य ग्रंथ अवश्य उपलब्ध थे तभी कवीन्द्राचार्य (17वीं शताब्दी) ने अपनी सूची में उनका उल्लेख किया था।

5. **माण्डूकायन शाखा** – वर्तमान में इसके भी संहिता आदि कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

ऋग्वेद की विषयवस्तु :– ऋग्वेद स्तुति प्रधान है। इसलिये ऋग्वेद मुख्यरुप से अग्नि, इन्द्र, सूर्य, पूषा, सोम और रुद्र आदि अनेक देवताओं की स्तुतियों से भरा पड़ा है। स्तुतियों के अतिरिक्त ऋग्वेद के सूक्त उच्च कोटि के साहित्य, दार्शनिक चिन्तन, यज्ञ सम्बन्धी विवरण, आध्यात्मिक प्रबोधन और सृष्टि की उत्पति से सम्बन्ध रखने वाले विज्ञान के भण्डार हैं।

महत्वपूर्ण सूक्त :–ऋग्वेद के दशम् मण्डल के अनेक सूक्त जैसे–पुरुष सूक्त (10/90), नासदीय सूक्त (10/129) एवं हिरण्यगर्भ सूक्त (10/145) आदि अपनी दार्शनिक गंभीरता के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

सत् एक ही है, ज्ञानी लोग उसका अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं। यह कथन ऋग्वेद के दीर्घतमस् ऋषि का है। ऋषि कहते हैं –

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

(ऋग्वेद 1/164/46)

अर्थात् एक सत् तत्त्व है, उसी का ज्ञानी लोग अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं। उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं और वह दिव्य, सुपर्ण और गरुत्मान् है।

जीवात्मा और परमात्मा दोनों मित्र हैं, इनमें से एक (जीवात्मा) तो अच्छे–बुरे कर्म करता हुआ उनके फल प्राप्त करता रहता है लेकिन दूसरा (परमात्मा) केवल उसे साक्षी भाव से देखता रहता है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए ऋषि सूक्त में कहते हैं –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्वनन्नन्यो अभिचाकशीति।।

(ऋग्वेद 1/164/20)

अर्थात् हमेशा साथ रहने वाले तथा अत्यन्त मित्र दो उत्तम पंख वाले पक्षी एक ही वृक्ष का आलिंगन किये हुए हैं। उनमें एक पेड़ के मीठे–मीठे फलों को खाता है और दूसरा न खाता हुआ केवल साक्षी भाव से प्रकाशित होता है।

सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं –"कौन मनुष्य जानता है और कौन कहेगा कि यह सृष्टि कहाँ से और किस कारण से उत्पन्न हुई ? क्योंकि विद्वान भी इस सृष्टि के उत्पन्न होने के बाद ही उत्पन्न हुए हैं,

इसलिये यह सृष्टि जिससे उत्पन्न हुई है, उसे कौन जानता है? इस सृष्टि को उत्पन्न करने वाला इसका अध्यक्ष परब्रह्म इस सृष्टि का धारक है और इस सृष्टि को पूर्णतया जानता है''(ऋग्वेद 10/129/6)
हिरण्यगर्भसूक्त में सृष्टि की उत्पति का कारण प्रजापति को बताया गया है, जिसका प्रतीकात्मक नाम है 'क' जो सुख तथा आनन्द का दाता है, उसी परमात्मा को हवि देने के सन्दर्भ में ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं – **कस्मै देवाय हविषा विधेम्।** (ऋग्वेद 10/12/01) अर्थात् उस सुख स्वरूप देव की हम हवि के द्वारा उपासना करते हैं।

ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों (संवाद सूक्तों) में से 3 सूक्त तो बहुत महत्वपूर्ण हैं –

1. पुरुरवा – उर्वशी आख्यान :– साहित्य–सौन्दर्य की दृष्टि से उत्तम है।
2. यम – यमी आख्यान :– साहित्य–सौन्दर्य की दृष्टि से यह आख्यान भी उत्तम है।
3. सरमा – पणि आख्यान – नाटकीय ओजस्विता और काव्यात्मक दृष्टि से यह आख्यान बहुत ही सुन्दर और सरस है।

अक्षसूक्त में जुए में अपना सब कुछ हार चुका जुआरी किस प्रकार से पछतावा करता है, उसका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है और अंत में वह जीवन को नये सिरे से प्रारम्भ करने का दृढ संकल्प करता हुआ कहता है – **अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व।** (ऋग्वेद 10/34/13)
अर्थात् पासों से मत खेलो, कृषि का ही आश्रय लो।

जो मनुष्य दान न देकर अपने धन को केवल अपने ही स्वार्थ के लिये व्यय करता है, वह पाप को ही खाता है। इस सन्दर्भ में ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं –

मोघमन्नं विंदते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादि।।

(ऋग्वेद 10/117/6)

अर्थात् मैं सत्य कहता हूं कि उस कृपण अदाता की सम्पत्ति, अन्न अर्थात् भोग साधन व्यर्थ ही हैं, जो न देवों को हवि अर्पण करता है और न अपने समान पोष्य मित्र को देता है, केवल स्वयं खाता है, वह केवल पाप ही प्राप्त करता है।

सूर्यसूक्त (विवाह सूक्त) में सूर्य अपनी पुत्री को सोम को देते समय उसे गृहस्थ धर्म की शिक्षा देते हुए उस नववधू को अपने ससुराल के प्रत्येक सदस्य के हृदय पर राज करने का आशीर्वाद देते हुए कहते हैं –

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।। (ऋग्वेद 10/85/46)

अर्थात् हे वधू! तुम अपने ससुर, सास, ननद और देवरों की सम्राज्ञी (अर्थात् उनके हृदय पर राज करने वाली रानी) बनो। यह तभी सम्भव होगा जब वह अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का निर्वहन सुन्दरता से करेगी। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से पिता अपनी पुत्री को आशीर्वाद के साथ -साथ गृहस्थ धर्म की श्रेष्ठ शिक्षा भी प्रदान कर रहा है। यह है वैदिक ऋषियों के कथनों की गहराई जिसमें वे कह क्या रहे हैं और उनके कहने का गूढ़ अर्थ क्या है, जब तक इस प्रकार की दृष्टि और चिन्तन में गहराई नहीं होगी तब तक बड़े-बड़े विद्वान भी वेद मंत्रों के अर्थों का अनर्थ करते रहेंगे और मंत्रों में छिपे हुए गूढ़ार्थों को समझ नहीं पायेंगे। आज भी भारतीय विवाह विधियों में ऐसे ही अनेक श्रेष्ठ मंत्रों का प्रयोग होता है।

ऋग्वेद का अंतिम सूक्त, जिसे संज्ञान सूक्त या सौमनस्य सूक्त भी कहते हैं, सामाजिक सद्भाव को प्रेरित करने वाला है तथा जो आपस में मिलजुल कर रहने के श्रेष्ठ मानव-धर्म को सिखाता है। इसमें ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं -

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजनाना उपासते।। (ऋग्वेद 10/191/2)

अर्थात् हे श्रेष्ठ वीर मनुष्यों ! तुम सब संगठित होकर, एक साथ मिलकर प्रगति करो, उन्नति की ओर बढ़ो। राग-द्वेष तथा वैर-भाव आदि से रहित होकर प्रेमपूर्वक परस्पर संवाद करो। तुम सबके मन पवित्र एवं उत्तम संस्कारों से युक्त हों और पूर्वकाल के ज्ञानी लोग जैसे अपने-अपने कर्त्तव्य का विभाग करते आये हैं, ठीक उसी प्रकार तुम लोग भी अपने-अपने कर्त्तव्यों का विभाग उत्तम रीति से करो। इस प्रकार व्यवहार करने से तुम्हें अपेक्षित उन्नति अवश्य प्राप्त होगी।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
(ऋग्वेद 10/191/3)

अर्थात् तुम सभी के उद्देश्य, विचार, चिन्तन और भावना एक हों। तुम्हारी आयोजित सभा एक जैसी हो और सभा में जाने का सबको एक समान अधिकार हो। तुम सबका मन एक ही विचार से युक्त हो अर्थात् समान विचार वाला हो। सबका चित्त एक समान हो, तुम एक साथ संगठित बने रहने वाले बनो और उपभोग हेतु अन्नादि प्राप्ति का भी समान अधिकार प्राप्त करने वाले हो।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। (ऋग्वेद 10/191/4)

अर्थात् तुम सबका ध्येय (लक्ष्य) एक समान हो। तुम सबके विचार हृदय की धड़कन की तरह एक समान हों। तुम सबका मन एक समान मनन-चिन्तन करने वाला हो, जिससे तुम सभी का बल, पराक्रम तथा सामर्थ्य प्रबल हो जाये, दुर्निवार बन जाये।

उपर्युक्त मंत्रों में सभी मनुष्यों को एक साथ संगठित होकर, मिलजुल कर रहने के लिये कहा गया है, क्योंकि एकता में ही बल होता है। जिस राष्ट्र में एकता का बल होगा, वही राष्ट्र उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है- यह निश्चित है।

(ख) यजुर्वेद - यजुर्वेद के मंत्रों को 'यजुः' (यजुष्) कहते हैं। ऋग्वेद एवं सामवेद के मंत्र पद्यात्मक है अर्थात् वे छन्दों में हैं अतः उनमें अक्षरों की संख्या निर्धारित हैं। यजुर्वेद के मंत्र गद्यात्मक हैं अर्थात् वे छन्दों में नहीं है, और उनमें अक्षरों की संख्या निर्धारित नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि यजुर्वेद के सारे मंत्र गद्यात्मक ही हैं। यजुर्वेद में अनेक मंत्र पद्यात्मक भी हैं। ऋग्वेद के लगभग 663 मंत्र यथावत् यजुर्वेद में हैं। यजुर्वेद की पाठ करने की परम्परा के अनुसार उन्हें गद्यात्मक शैली में ही बोला जाता है। जिस प्रकार जिसमें ऋक् (ऋचा) है वह ऋग्वेद है अर्थात् ऋग्वेद ऋचाओं का वेद है, उसी प्रकार जिसमें यजुः है वह यजुर्वेद है अर्थात् यजुर्वेद यजुषों का वेद है। ऋग्वेद स्तुतिप्रधान है, यजुर्वेद यज्ञप्रधान है। यज्ञ (यजन) के कारण ही यह यजुर्वेद कहलाया है, ऐसा शास्त्र का निश्चय है -

यजनात् स यजुर्वेद इति शास्त्रविनिश्चयः। (ब्रह्माण्ड पुराण 2/34/22)

यजुर्वेद के अध्ययन की परम्परा में दो सम्प्रदाय हैं -

(1) **ब्रह्म सम्प्रदाय अथवा कृष्णयजुर्वेद** - इसमें वेद के अन्तर्गत मंत्र और ब्राह्मण भाग दोनों को एक साथ स्थान दिया जाता है।

(2) **आदित्य सम्प्रदाय अथवा शुक्लयजुर्वेद**- इसमें वेद के अन्तर्गत केवल मंत्रों का ही संकलन माना जाता है।

शुक्लयजुर्वेद को वाजसनेयि-संहिता भी कहा जाता है। 'वाज' अन्न को कहते हैं और 'सनि' दान को। इस प्रकार अन्नदान करने के स्वभाव वाले महर्षि की सन्तान होने के कारण याज्ञवल्क्य को वाजसनेय कहा जाता है और इनके द्वारा आख्यात होने के कारण ही शुक्लयजुर्वेद को वाजसनेयि संहिता कहा जाता है। महर्षि वेदव्यास ने वैशम्पायन को कृष्णयजुर्वेद का अध्ययन करवाया। वैशम्पायन ने याज्ञवल्क्य आदि शिष्यों को अध्ययन कराया।

यजुर्वेद की शाखाएँ – महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में यजुर्वेद की 101 शाखाएँ बताई हैं। जिनमें से 15 शुक्लयजुर्वेद की और 86 कृष्णयजुर्वेद की हैं। आचार्य सायण ने चरणव्यूहादि ग्रन्थों के कण्वभाष्य पर भूमिका में शुक्लयजुर्वेद की 15 शाखाओं के नाम भी दिये हैं।

कृष्णयजुर्वेद की उपलब्ध शाखाएँ –

1. तैत्तिरीय शाखा – यह शाखा परिपूर्ण कही जा सकती है, क्योंकि इसके संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र आदि सभी ग्रंथ उपलब्ध हैं।

2. मैत्रायणी शाखा – इसके संहिता, ब्राह्मण तथा उपनिषद् उपलब्ध हैं।

3. कठ शाखा – महर्षि पतञ्जलि ने इस शाखा की संहिता (काठक संहिता) के गाँव–गाँव में प्रचलित होने का उल्लेख अपने महाभाष्य में किया है– ग्रामे–ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते। (महाभाष्य 4/3/101)वर्तमान में इसके संहिता, ब्राह्मण,उपनिषद् और सूत्र ग्रंथ आदि उपलब्ध हैं।

4. कापिष्ठल शाखा – इसकी संहिता ही उपलब्ध है और वह भी अपूर्ण है।

5. श्वेताश्वतर शाखा – इसका मात्र उपनिषद् ही उपलब्ध है, जो श्वेताश्वतर उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है।

शुक्लयजुर्वेद की उपलब्ध शाखाएँ –

1. माध्यन्दिनी शाखा – इसके संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् उपलब्ध हैं।
2. काण्व शाखा – इसका संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद्, श्रौत और गृह्य आदि सूत्र ग्रंथों सहित लगभग सारा साहित्य उपलब्ध है।

शुक्लयजुर्वेद की विषयवस्तु – इसमें 40 अध्याय हैं जो 328 अनुवाकों में बँटे हैं, जिनमें 2086 मंत्र हैं। प्रथम तीन अध्यायों में दर्श (अमावस्या), पौर्णमास (पूर्णिमा/पूर्णमासी), अग्निहोत्र (प्रातः और सायंकाल के हवन) तथा चातुर्मास्य आदि से सम्बन्धित मंत्रों का संग्रह है, चौथे से दसवें अध्याय में सोमयाग, वाजपेय तथा राजसूय नामक यज्ञों के मंत्रों का संग्रह है। 11वें से 18वें अध्याय में यज्ञवेदिका के निर्माण का विस्तार से वर्णन है। इन्हीं में 16वें अध्याय में शतरुद्रीय होम का प्रसंग है। 19वें से 21वें अध्याय में सौत्रामणि नामक यज्ञ का विधान है। 22 वें से 25वें अध्याय में अश्वमेध यज्ञ के मंत्रों का निर्देश है। 26वें से 29वें अध्याय में विभिन्न यज्ञों के पूरक मंत्रों का संग्रह है। 30वें अध्याय में पुरुषमेध के मंत्र है।31 वें अध्याय में ऋग्वेद के पुरुषसूक्त जैसा सूक्त है, जिसमें 6 मंत्र अधिक है। 32वें

और 33 वें अध्याय में सर्वमेध का वर्णन है। 34 वें अध्याय के आरम्भ में ''शिवसंकल्पसूक्त'' है। 35 वें अध्याय में पितृमेध से सम्बन्धित मंत्रों का संकलन है। 36 वें से 38 वें अध्याय में प्रवर्ग्ययाग वर्णित है। शुक्लयजुर्वेद का अंतिम 40 वाँ अध्याय ही **ईशावास्योपनिषद्** है।

कृष्णयजुर्वेद की विषयवस्तु :- कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इस संहिता में 7 काण्ड हैं, जो 44 प्रपाठकों में विभाजित हैं। ये प्रपाठक भी 631 अनुवाकों में बंटे हैं। शुक्लयजुर्वेद के समान कृष्णयजुर्वेद में भी विभिन्न यज्ञों का वर्णन है। अंतर केवल इतना ही है कि इसमें मंत्र के साथ उसकी व्याख्या, उसके प्रयोग का निर्देश मिश्रित कर दिया गया है, इसलिये यह कृष्णयजुर्वेद कहलाता है।

निरन्तर 100 वर्ष तक कर्म करते हुए जीवन जीएँ, यह भाव व्यक्त करते हुए यजुर्वेद में ऋषि कहते हैं – **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।** (शुक्लयजुर्वेद 40/2)

तीनों लोकों (द्यू-लोक/स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष लोक और पृथ्वी लोक) सहित सर्वत्र शान्ति की कामना करते हुए आज भी '**द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ꣳ शान्ति** .....' बोलते हुए जब हम शान्ति पाठ कर रहे होते हैं, तब हम शुक्लयजुर्वेद के 36 वें अध्याय का 17 वां मंत्र ही तो बोल रहे होते हैं।

(ग) सामवेद - साच अमश्चेतितत्साम्नः सामत्वम्।

(बृहदारण्यकोपनिषद् 1/3/22)

'सा' का अर्थ 'ऋक्/ऋचा' और 'अम' का अर्थ है गान। इस प्रकार जिस वेद में ऋचा (मंत्र) का गान किया जाता है, अर्थात् जिस वेद के मंत्र को गाया जाता है, वह वेद सामवेद कहलाता है। इस प्रकार गान रूप में ऋचाएं (ऋग्वेद के मंत्र) साम कहलाई हैं। सामवेद में 27 अध्यायों में 1875 मंत्र हैं, जिसमें से 75 मंत्रों को छोड़कर बाकी सभी ऋग्वेद की शाकल शाखा में मिलते हैं।

महर्षि वेदव्यास ने महर्षि जैमिनी को सामवेद की शिक्षा दी। इस अध्ययन परम्परा में जैमिनी से उनके पुत्र सुमन्तु, सुमन्तु से उनके पुत्र सुन्वान, सुन्वान से उनके पुत्र सुकर्मा दीक्षित हुए। सुकर्मा के दो शिष्य थे – हिरण्यनाभ कौशल और पौञ्यञ्जि (आवन्त्य)। हिरण्यनाभ का शिष्य राजा सन्नतिमान का पुत्र कृत था, जिसने सामसंहिता का 24 प्रकार से अपने शिष्यों द्वारा प्रवर्त्तन किया। इसका वर्णन मत्स्यपुराण (49/75-76), हरिवंश पुराण (20/41-44), विष्णु पुराण (4/19-50), वायुपुराण (41/44), ब्रह्माण्डपुराण (35/49-50) तथा

श्रीमद्भागवतपुराण (12/6/80) में समान शब्दों में किया गया है। वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण में कृत के 24 शिष्यों के नाम भी दिये गये हैं। कृत के अनुयायी होने के कारण उनके ये 24 शिष्य कार्त नाम से प्रसिद्ध हुए। (मत्स्य पुराण 49/76) इनके लौगाक्षि, मांगलि, कुल्य, कुसीद तथा कुक्षि नामक 5 शिष्यों के नाम श्रीमद्भागवतपुराण (12/6/79) में दिये गये हैं जिन्होंने 100-100 साम संहिताओं का अध्ययन प्रचलित कराया। ब्राह्मण ग्रन्थों तथा पुराणों के अध्ययन से पता चलता है कि साममंत्रों, उनके पदों तथा सामगानों की संख्या आज के उपलब्ध अंशों से बहुत अधिक थी। शतपथ ब्राह्मण में साममंत्रों के पदों की गणना 1,44,000 बतलाई गई है। पूरे सामों की संख्या 8000 तथा गान की संख्या 14820 बतायी गई है।

सामवेद की शाखाएँ :- महर्षि पतञ्जलि ने सामवेद की 1000 शाखाओं का उल्लेख किया है। मीमांसा के भाष्यकार शबरस्वामी ने कहा है -'सामवेदे सन्ति सहस्रं गीत्युपाया:' अर्थात् सामवेद के गायन के हजारों उपाय हैं। एक ही मंत्र को अलग-अलग गायक अलग-अलग तरह से गाता है। इसलिये अनेक गायन-पद्धतियाँ प्रचलित हो गई हैं। प्रपञ्चहृदय, दिव्यावदान, चरणव्यूह तथा जैमिनी गृह्यसूत्र से सामवेद की 13 शाखाओं का पता चलता है। सामतर्पण के अवसर पर इन आचार्यों के नाम तर्पण का विधान मिलता है। इन 13 में से 3 आचार्यों की शाखायें मिलती है- (1) कौथुमीय शाखा (2) राणायनीय (3) जैमिनीय।

(1) कौथुम शाखा - इस शाखा की संहिता में प्रपाठक, अर्धप्रपाठक और दशतियां हैं। इसमें 2722 गान हैं।

(2) राणायनीय शाखा - इस शाखा की संहिता में अध्याय, खण्ड और मंत्र हैं। इसकी मंत्र संख्या कौथुम के समान है।

(3) जैमिनीय शाखा - इस शाखा की संहिता में मंत्र संख्या 1687 है। इसमें 3681 गान हैं।

सामवेद का एक अंश सेतुसाम नाम से प्रसिद्ध है। उसमें एक स्थान पर ऋषि के वचन कुछ इस प्रकार हैं -

चार दुस्तर खाइयों को पार करो। दान से लोभ को (जीतो), अक्रोध से क्रोध को (जीतो), श्रद्धा से अश्रद्धा को (जीतो), सत्य से झूठ को (जीतो)। यही एक मार्ग है। यही अमृत तत्त्व है। स्वर्ग को प्राप्त करो। ज्योति को प्राप्त करो।

इस सेतुसाम से यह स्पष्ट है कि सामवेद के अन्य गान अपने अन्दर कितने उदात्त और पावन संदेशों को समेटे हुए होंगे।

(घ) अथर्ववेद - यज्ञ के लिये जिन 4 विद्वानों (ऋत्विजों) की आवश्यकता होती है, उनमें **ऋग्वेद का ऋत्विज 'होता', यजुर्वेद का ऋत्विज 'अध्वर्यु', सामवेद का ऋत्विज 'उद्गाता' तथा अथर्ववेद का ऋत्विज 'ब्रह्मा' कहलाता है।** सम्पूर्ण यज्ञ ब्रह्मा की देखरेख में सम्पन्न होता है इसलिये ब्रह्मा चारों ऋत्विजों में प्रधान होता है। ब्रह्मा का कार्य है - यज्ञ में समय- समय पर नियमानुसार निर्देश देना, यज्ञ में ऋत्विजों एवं यजमान के द्वारा कोई भूल हो जाये या कमी रह जाये तो उसका सुधार या प्रायश्चित करना। अथर्व का अर्थ है - त्रुटियों को हटाकर ठीक करना या त्रुटिरहित बनाना। इसलिये अथर्ववेद में यज्ञ सम्बन्धी एवं व्यक्ति सम्बन्धी सुधार या कमी की पूर्ति करने वाले मंत्र संकलित किये गये हैं। अथर्ववेद में तो यहाँ तक लिखा है कि अथर्ववेद का ज्ञाता शान्तिकर्म का पारगामी पुरोहित जिस राष्ट्र में रहता है, वह राष्ट्र उपद्रवों से हीन होकर वृद्धि को प्राप्त करता है।

अथर्ववेद की शाखाएँ :-महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में अथर्ववेद की 9 शाखाओं का उल्लेख किया है। वेदों की शाखाओं का प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ चरणव्यूह में अथर्वसंहिता के 9 भेद स्वीकार किये गये हैं। उनके नाम भी दिये गये हैं। जो नाम भेद से ये हैं - पिप्पलाद, तौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श तथा चारणवैद्य। वर्तमान में पिप्पलाद और शौनक शाखाओं की संहिताएँ ही उपलब्ध होती हैं। अथर्ववेद की अन्तिम शाखा चारणवैद्य आयुर्वेद से अधिक सम्बद्ध है, परन्तु यह उपलब्ध नहीं है।

1. **पिप्पलाद संहिता** - इसमें 20 काण्ड हैं। इस संहिता की एकमात्र प्रति कश्मीर में उपलब्ध हुई, जो कश्मीर नरेश ने प्रसिद्ध जर्मन विद्वान डॉ. रॉथ को 1885 ई. में उपहार स्वरूप प्रदान कर दी थी।

2. **शौनक संहिता** - इसमें भी 20 काण्ड हैं जिसमें 5977 मन्त्र हैं। वृहत्सर्वानुक्रमणी के अनुसार इसमें 759 सूक्त हैं।

माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः। अर्थात् यह पृथिवी (भूमि) मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ, यह अथर्ववेद के भूमि सूक्त (पृथिवी सूक्त) में ऋषि का कथन है।

अथर्ववेद की विषयवस्तु बहुआयामी है। इसमें आरोग्य, रक्षा, शासन व्यवस्था, सामाजिक- सौहार्द, पारिवारिक-प्रेम आदि विभिन्न आयामों के सन्दर्भ में ऋषियों द्वारा गम्भीर एवं व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान किया गया है।

(2) ब्राह्मण (ब्राह्मण-ग्रन्थ)

वेदों के मंत्रों की व्याख्या हेतु लिखे गये ग्रंथ ब्राह्मण कहलाते हैं। ब्राह्मण–ग्रंथों में वैदिक मंत्रों के यज्ञ में उपयोग का ज्ञान कराया गया है। ब्राह्मण ग्रंथों में अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय आदि विभिन्न यज्ञों को कैसे करना चाहिये, अर्थात् उनके अनुष्ठान की विधि क्या है आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। ब्राह्मण–ग्रंथों में यज्ञों के विधि– विधानों का वर्णन है अर्थात् वैदिक कर्मकाण्ड का वर्णन है। चारों वेदों की प्रत्येक शाखा के अपने–अपने ब्राह्मण ग्रंथ थे। लेकिन वर्तमान में वेदों की अनेक शाखाओं के अनुपलब्ध होने के कारण ब्राह्मण–ग्रंथ भी बहुत ही कम संख्या में उपलब्ध हैं।

चारों वेदों की विभिन्न शाखाओं की संहिताओं से सम्बन्ध रखने वाले उपलब्ध ब्राह्मण-ग्रन्थ -

क्र.	वेद	शाखा	संहिता	ब्राह्मण
1.	ऋग्वेद	1. शाकल शाखा	1. शाकल संहिता	1. ऐतरेय ब्राह्मण
		2. शाङ्खायन (कौषीतकी) शाखा	2. X	2. शाङ्खायन (कौषीतकी) ब्राह्मण
2.	यजुर्वेद			
	(क) कृष्णयजुर्वेद	1. तैत्तिरीय शाखा	1. तैत्तिरीय संहिता	1. तैत्तिरीय ब्राह्मण
		2. मैत्रायणी शाखा	2. मैत्रायणी संहिता	2. मैत्रायणी ब्राह्मण
		3. कठ शाखा	3. काठक संहिता	3. काठक ब्राह्मण
	(ख) शुक्लयजुर्वेद	1. काण्व शाखा	1. काण्व संहिता	1. शतपथ ब्राह्मण (17 काण्ड वाला)
		2. माध्यन्दिनी शाखा	2. माध्यन्दिनी संहिता	2. शतपथ ब्राह्मण (14 काण्ड वाला)
3.	सामवेद	1. कौथुमी शाखा	1. कौथुमी संहिता	1. ताण्ड्य ब्राह्मण 2. षड्विंश ब्राह्मण 3. सामविधान ब्राह्मण 4. आर्षेय ब्राह्मण 5. देवताध्याय ब्राह्मण 6. मंत्र ब्राह्मण 7. संहितोपनिषद् ब्राह्मण 8. वंश ब्राह्मण
		2. जैमिनी शाखा	1. जैमिनी संहिता	1. जैमिनीय ब्राह्मण 2. जैमिनीय उपनिषद् (तलवकार ब्राह्मण)
4.	अथर्ववेद	1. शौनकीय शाखा	1. शौनक संहिता	1. गोपथ ब्राह्मण

ऋग्वेद की शाङ्खायन शाखा का शाङ्खायन (कौषीतकी) ब्राह्मण, ऋग्वेद की शाकल शाखा के ऐतरेय ब्राह्मण के प्रथम पाँच अध्यायों का ही परिवर्द्धित-रूप है।

कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणी और कठ शाखा के मैत्रायणी और काठक नामक ब्राह्मण क्रमशः मैत्रायणी और कठ संहिता के अंश है, परन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण तैत्तिरीय संहिता का अंश नहीं है, बल्कि एक पृथक् ग्रंथ है।

शुक्लयजुर्वेद की काण्व शाखा वाले शतपथ ब्राह्मण में 17 काण्ड है, जबकि शुक्लयजुर्वेद की ही माध्यन्दिनी शाखा वाले शतपथ ब्राह्मण में 14 काण्ड हैं। शतपथ ब्राह्मण में 100 अध्याय होने के कारण इसका नाम शतपथ पड़ा है।

सामवेद की कौथुमी शाखा का ब्राह्मण भाग 8 भागों में विभक्त माना गया है -1. प्रौढ़ ब्राह्मण (महाब्राह्मण) 2. षड्विंश ब्राह्मण 3. सामविधान 4. आर्षेय ब्राह्मण 5. दैवत् ब्राह्मण 6. उपनिषद् ब्राह्मण (मंत्र ब्राह्मण) 7. संहितोपनिषद् ब्राह्मण 8. वंश ब्राह्मण।

अनेक विद्वानों के अनुसार सामविधान ब्राह्मण, आर्षेयब्राह्मण, दैवत ब्राह्मण, संहितोपनिषद् ब्राह्मण और वंश ब्राह्मण इन पांच ब्राह्मण ग्रंथों की समष्टि एक 'अनुब्राह्मण' है, और गौण है। इसलिये सामवेद की कौथुमी संहिता का मुख्य ब्राह्मण एक ही मानना उचित है। इस मुख्य ब्राह्मण में 40 अध्याय हैं। इनमें से 1 से 24 अध्याय तक की समष्टि स्वतन्त्र रूप से 'ताण्ड्य महाब्राह्मण' के नाम से प्रसिद्ध है। 25वाँ अध्याय पञ्चविंश ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध है। 26 से 30 वें अध्याय तक के 5 अध्यायों की समष्टि षड्विंश ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध है। 31 से 38 वें अध्याय तक 8 अध्यायों की समष्टि छान्दोग्य-उपनिषद् नाम से प्रसिद्ध है। 39 वें और 40 वें, इन दोनों अध्यायों की समष्टि उपनिषद् ब्राह्मण (मंत्र ब्राह्मण) नाम से प्रसिद्ध है।

सामवेद की जैमिनीय शाखा का दूसरा नाम तलवकार शाखा भी है। इस तलवकार शाखा के जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में केनोपनिषद् है, इसलिये केनोपनिषद् को तलवकारोपनिषद् भी कहते हैं।

अथर्ववेद का एक ही ब्राह्मण उपलब्ध है, जो गोपथ ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध है।

(3) आरण्यक

अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते। (तैत्तिरीय आरण्यक, भाष्य श्लोक 6)

गृहस्थाश्रम के पश्चात् वन की ओर प्रस्थान करने वाले और फिर वन (अरण्य) में ही निवास करने वाले वानप्रस्थी संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद् आदि

का अध्ययन तो करते ही थे, परन्तु प्रधान रूप से आरण्यक ग्रन्थों का ही अध्ययन करते थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ की प्राय: कर्मकाण्डपरक व्याख्या की गई है, परन्तु आरण्यक ग्रंथों में यज्ञ की आध्यात्मिक व्याख्या की गई है। चारों वेदों की प्रत्येक शाखा के अपने-अपने आरण्यक ग्रंथ थे लेकिन वर्तमान में वेदों की अनेक शाखाओं के अनुपलब्ध होने के कारण आरण्यक ग्रंथ भी बहुत कम संख्या में उपलब्ध हैं।

चारों वेदों की विभिन्न शाखाओं की संहिताओं से सम्बन्ध रखने वाले उपलब्ध आरण्यक ग्रन्थ

क्र.	वेद	शाखा	संहिता	आरण्यक
1.	ऋग्वेद	(1) शाकल शाखा	(1) शाकल संहिता	(1) ऐतरेय आरण्यक
		(2) कौषीतकी शाखा	(2) x	(2) कौषीतकी आरण्यक
2.	यजुर्वेद			
	(क) कृष्णयजुर्वेद	(1) तैत्तिरीय शाखा	(1) तैत्तिरीय संहिता	(1) तैत्तिरीय आरण्यक
	(ख) शुक्लयजुर्वेद	(1) माध्यन्दिनी शाखा	(1) माध्यन्दिनी संहिता	(1) बृहदारण्यक
3.	सामवेद	(1) जैमिनी शाखा	(1) जैमिनीय संहिता	(1) छान्दोग्य आरण्यक
4.	अथर्ववेद	(1) पिप्पलाद शाखा	(1) पिप्पलाद संहिता	(1) x
		(2) शौनकीया शाखा	(2) शौनक संहिता	(2) x

आरण्यकों का कुछ भाग ब्राह्मण ग्रंथों के अन्तर्गत और कुछ भाग स्वतंत्र माना जाता है। जैसे तैत्तिरीय ब्राह्मण का शेष अंश तैत्तिरीय आरण्यक है और शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के शतपथ ब्राह्मण का अंतिम चौदहवां काण्ड आरण्यक भी है और उपनिषद् भी, जो बृहदारण्यक उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है।

(4) उपनिषद्

ब्राह्मण ग्रन्थों और आरण्यक ग्रन्थों की भांति उपनिषदों का भी चारों वेदों की अलग-अलग संहिताओं से सम्बन्ध है।

आरण्यकों के पश्चात्, उपनिषद् चूंकि वेदों के अंतिम भाग हैं, इसलिये उपनिषदों को वेदान्त भी कहा जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपनिषदों के बाद वेदों का अन्य कोई साहित्यिक विभाजन नहीं होता और यह भी कि वेद चार भागों से मिलकर बने हैं - (1) संहिता (2) ब्राह्मण (3) आरण्यक (4) उपनिषद्।

संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक में प्रधानतया कर्म की विवेचना होने के कारण ये तीनों तो यज्ञ से सम्बन्धित कर्मकाण्ड का विस्तार से वर्णन करते हैं,

परन्तु उपनिषद् ज्ञानकाण्ड प्रधान होने के कारण ब्रह्म के स्वरूप, जीव तथा ब्रह्म के परस्पर सम्बन्ध, ब्रह्मप्राप्ति के मार्ग आदि विषयों का विशद वर्णन करते हैं।

जगद्गुरु शंकराचार्य ने ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, प्रश्न, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर नामक 11 उपनिषदों पर भाष्य लिखे थे।

1. **ईशोपनिषद् (ईश-उपनिषद्)** :- यह शुक्लयजुर्वेद का 40वाँ अध्याय है। इसका पहला मंत्र 'ईशावास्यम्' से प्रारम्भ होता है, इसलिये इसे ''ईशावास्य उपनिषद्'' भी कहा जाता है। इसमें केवल 18 मंत्र हैं।
2. **केनोपनिषद्** :- यह सामवेद की जैमिनीय शाखा के तलवकार ब्राह्मण का नवाँ अध्याय है। इसमें सबसे पहले 'केन' शब्द आया है, इसलिये यह केनोपनिषद् कहलाता है। 35 श्लोकों के इस उपनिषद् में परब्रह्म का गुरु-शिष्य संवाद के माध्यम से विवेचन किया गया है।
3. **कठोपनिषद्** :- यह कृष्णयजुर्वेद की कठ शाखा के अन्तर्गत है। इसमें नचिकेता और यम के मध्य संवाद है।
4. **मुण्डकोपनिषद्** :- यह अथर्ववेद की शौनकी शाखा के अन्तर्गत है।
5. **माण्डूक्य-उपनिषद्** :- यह अथर्ववेद की पैप्पलादी शाखा के अन्तर्गत है।
6. **ऐतरेयोपनिषद्** :- ऋग्वेद की शाकल शाखा के ऐतरेय आरण्यक में दूसरे आरण्यक के चौथे, पाँचवें और छठे अध्यायों को ऐतरेय उपनिषद् कहा गया है। आदि शंकराचार्य ने ऐतरेयोपनिषद् को इतना ही माना है जबकि वेदभाष्यकार सायण ने ऐतरेय आरण्यक जिसमें 5 आरण्यक हैं, उनमें से दूसरे और तीसरे आरण्यक को ऐतरेयोपनिषद् माना है। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम, मनुष्य शरीर की उत्पत्ति, अन्न की उत्पत्ति एवं आत्मा के मनुष्य शरीर में प्रविष्ट होने के मार्ग के बारे में बताया गया है।
7. **तैत्तिरीयोपनिषद्** :- कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के तैत्तिरीय आरण्यक के सातवें, आठवें और नवें अध्याय को तैत्तिरीयोपनिषद् कहा जाता है।
8. **प्रश्नोपनिषद्** :- यह अथर्ववेद के पिप्पलाद-शाखा के ब्राह्मण के अन्तर्गत है।
9. **छान्दोग्य-उपनिषद्** :- सामवेद की तलवकार शाखा के अन्तर्गत जो छान्दोग्य नामक ब्राह्मण है, उसके तीसरे से दसवें तक के आठ अध्यायों का नाम छान्दोग्य उपनिषद् है। इसमें ॐ की व्याख्या और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को समझाया गया है।
10. **बृहदारण्यक-उपनिषद्** :- शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के शतपथ नामक ब्राह्मण का जो अन्तिम 14 वाँ काण्ड है, वही बृहदारण्यकोपनिषद्

के नाम से प्रसिद्ध है। 435 मन्त्रों वाले इस उपनिषद् में वैदिक जीवन एवं दर्शन का सार प्रस्तुत किया गया है।

11. **श्वेताश्वतरोपनिषद् :–** इसमें कृष्णयजुर्वेद के 6 अध्याय हैं जिनमें 113 मन्त्र हैं।

उपनिषदों का प्रभाव – मुगल बादशाह शाहजहाँ के बड़े बेटे दारा शिकोह अपने छोटे भाई औरंगजेब के समान कट्टर नहीं थे। 1640 ईस्वी में उन्हें कश्मीर में उपनिषदों की महिमा का पता लगा। तब उन्होंने काशी से कुछ विद्वानों को बुलाकर उनकी सहायता से अनेक उपनिषदों का फारसी भाषा में अनुवाद किया। 1657 ईस्वी में यह अनुवाद पूरा हुआ। 1802 ईस्वी में इसी फारसी अनुवाद का लैटिन भाषा में अनुवाद ''औपनेखत'' नाम से हुआ। इसे पढ़कर प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोपेनहॉवर लिखते हैं – "In the whole world, there is no study so elevating as that of the Upnishadas. It has been solace of my life. It will be solace of my life."

–अर्थात् सम्पूर्ण विश्व में उपनिषदों के समान जीवन को ऊँचा उठाने वाला कोई दूसरा अध्ययन का विषय नहीं है। उनसे मेरे जीवन को शान्ति मिली है। उन्हीं से मुझे मृत्यु में भी शान्ति मिलेगी।

जिस देश में उपनिषद्–रूपी ज्ञान–गंगा बहती हो उस देश अर्थात् भारत में ईसाई–धर्म के प्रचार का प्रयत्न व्यर्थ होगा और भविष्य में यूरोपीय विचारधारा भारतीय विचारधारा से प्रभावित हो जायेगी। इस सम्बन्ध में शोपेनहॉवर लिखते हैं– "In India our religion will now and never strike root. The primitive wisdom of the human race will never be pushed aside by the events of Galilee. On the contrary, Indian wisdom will flow back upon Europe, and produce a thorough change in our knowing and thinking."

–अर्थात् भारत में हमारे धर्म की जड़ कभी नहीं जम सकेगी। मानव जाति की 'पुराणी प्रज्ञा' गैलिली की घटनाओं से कभी निराकृत नहीं होगी। बल्कि भारतीय प्रज्ञा की धारा यूरोप में प्रवाहित होगी एवं हमारे ज्ञान और विचार में आमूल परिवर्तन ला देगी।

(5) सूत्र–ग्रन्थ (कल्पसूत्र/कल्प)

वेदाङ्ग (वेद के अङ्ग) 6 माने जाते हैं – शिक्षा, **कल्प**, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष।

कल्प (कल्पसूत्र) – सम्पूर्ण वैदिक कर्मकाण्ड को जिन ग्रन्थों में सूत्रबद्ध कर

लिया गया, वे ग्रंथ कल्पसूत्र कहलाए। सूत्र का अर्थ है जानकारी या तथ्यों को संक्षिप्ततम रूप में प्रस्तुत करना। वेद की प्रत्येक शाखा के **कल्पसूत्र** हैं। ये चार प्रकार के हैं –

(क) श्रौतसूत्र (ख) गृह्यसूत्र (ग) धर्मसूत्र (घ) शुल्वसूत्र

(क) **श्रौतसूत्र** – इन ग्रंथों में प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल में किये जाने वाले यज्ञों का, शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा तथा कृष्ण पक्ष में अमावस्या के अवसर पर होने वाले पाक्षिक यज्ञों और विशेष अवसरों जैसे अन्न की फसल तैयार होने पर किये जाने वाले यज्ञों आदि का वर्णन है।

(ख) **गृह्यसूत्र** – इन ग्रंथों में जन्म से मृत्यु तक किये जाने वाले समस्त संस्कारों तथा पंच महायज्ञों आदि का वर्णन मिलता है।

(ग) **धर्मसूत्र** – इन ग्रंथों में चारों वर्णो और चारों आश्रमों के कर्त्तव्यों, राजा–प्रजा के कर्त्तव्य आदि अनेक विषयों का वर्णन है। मनुस्मृति आदि समस्त स्मृति–ग्रंथों की रचना धर्मसूत्रों के आधार पर की गई है।

(घ) **शुल्वसूत्र** – इन ग्रंथों में यज्ञवेदी (यज्ञकुण्ड) के निर्माण के नियमों और सिद्धान्तों का विस्तार से वर्णन है। यज्ञवेदी के मापन में काम आने वाली डोरी/रस्सी (सुतली) को शुल्व कहते हैं।

शुल्वसूत्र नामक ग्रंथ रेखागणित (ज्योमेट्री) से सम्बन्धित है। इनमें रेखा, त्रिभुज, वर्ग, चतुर्भुज, आयत और उनके विकर्ण, समबाहु एवं विषमबाहु त्रिभुज, समान्तर चतुर्भुज तथा इनके विकर्णो के परस्पर सम्बन्ध पर सूत्र हैं। पाइथोगोरस ने जो प्रमेय (थ्योरम) दी, उस प्रमेय की जानकारी पाइथोगोरस से बहुत पहले वैदिक ऋषियों को थी, इस तथ्य को अब विश्व के सारे विद्वान स्वीकार कर चुके हैं।

(6) प्रातिशाख्य

प्रातिशाख्य एक प्रकार के वैदिक व्याकरण ग्रन्थ हैं। ऋग्वेद से सम्बन्धित ऋक् प्रातिशाख्य में स्वर, व्यंजन, स्वर विभक्ति एवं संधि आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इसके रचयिता महर्षि शौनक हैं। शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित वाजसनेयि प्रातिशाख्य की रचना महर्षि कात्यायन ने की। इसके मुख्य विषय हैं – वर्ण, स्वर, संधि, पदपाठ एवं क्रमपाठ। कृष्णयजुर्वेद का तैत्तिरीय प्रातिशाख्य भी उपलब्ध है। प्रातिशाख्य ग्रंथों में सामवेदीय प्रातिशाख्य भी उपलब्ध है। प्रातिशाख्य ग्रंथों में सामवेदीय प्रातिशाख्यों का विशिष्ट स्थान एवं महत्त्व है। सामसंहिता के यथार्थ उच्चारण के लिये ऋक्तंत्र, सामतंत्र, अक्षरतंत्र, पुष्पसूत्र की रचना हुई।

प्रकृतिगान के स्वरों के विधिवत् अध्ययन से सम्बन्ध रखने वाले सामतंत्र में स्वरों की विवेचना एवं व्याख्या उपलब्ध है। अथर्ववेद से सम्बन्धित अथर्वप्रातिशाख्य के अतिरिक्त चार अध्यायों में विभक्त शौनकीयाचतुरध्यायिका नामक एक प्रातिशाख्य और भी उपलब्ध है।

(7) अनुक्रमणी

वेदों की रक्षा तथा वेदार्थ का विवेचन अनुक्रमणी नामक ग्रंथों का प्रयोजन है। ऋग्वेद से सम्बन्धित अनुक्रमणी ग्रंथ –आर्षानुक्रमणी (इसमें मंत्रक्रम से ऋषियों के नाम हैं), छन्दः अनुक्रमणी, देवता–अनुक्रमणी, अनुवाक्–अनुक्रमणी, सर्वानुक्रमणी आदि।

कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित अनुक्रमणी ग्रंथ – आत्रेय–अनुक्रमणी, चारणीय–अनुक्रमणी आदि।

शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित अनुक्रमणी ग्रंथ – कात्यायन–अनुक्रमणी आदि।

अथर्ववेद से सम्बन्धित अनुक्रमणी ग्रंथ – बृहत्सर्वानुक्रमणिका में अथर्ववेद के मंत्रों के ऋषि, देवता तथा छन्दों का वर्णन है।

(ख) वेदाङ्ग

वेदाङ्ग (वेद के अङ्ग) 6 हैं– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष।

छन्दशास्त्र को वेदपुरुष का चरण, कल्पशास्त्र को हाथ, ज्योतिष शास्त्र को नेत्र, निरुक्त/निर्वचनशास्त्र को श्रोत्र/कान, शिक्षाशास्त्र को नासिका तथा व्याकरणशास्त्र को मुख कहा गया है। इसलिये जो इन 6 अंङ्गों (6 शास्त्रों) सहित वेदों का अध्ययन करता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है –

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रौत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। (पाणिनीय शिक्षा 41–42)

(1) **शिक्षा** – शिक्षा–ग्रंथों का उद्देश्य है – वर्णोच्चारण की शिक्षा देना अर्थात् वेद मंत्रों के अन्तर्गत आने वाले वर्णो का उच्चारण किस स्वर (उदात्त/उच्च स्वर, अनुदात्त /निम्न स्वर या स्वरित/मध्यम स्वर) में किया जाए और किस स्थान (कंठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ) से किया जाये, आदि का ज्ञान ही 'शिक्षा' है।

वेदमंत्रों के उच्चारण की शिक्षा जिन ग्रंथों से मिलती है, वे ही ग्रंथ, शिक्षा कहलाते हैं। वर्तमान में चारों वेदों से सम्बन्ध रखने वाले जो शिक्षा–ग्रंथ उपलब्ध हैं, वे हैं –

1. ऋग्वेद से सम्बन्ध रखने वाला शिक्षा–ग्रंथ – पाणिनीय शिक्षा।
2. कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाला शिक्षा–ग्रंथ – व्यास शिक्षा। शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाले शिक्षा–ग्रंथ – याज्ञवल्क्य शिक्षा आदि 25 ग्रंथ।
3. सामवेद से सम्बन्ध रखने वाले शिक्षा–ग्रंथ – गौतमी शिक्षा, लोमशी शिक्षा, नारदीय शिक्षा।
4. अथर्ववेद से सम्बन्ध रखने वाला शिक्षा–ग्रंथ – माण्डूकी शिक्षा।

(2) **कल्प** – कल्प–ग्रंथों के सम्बन्ध में पहले ही पृष्ठ 35 पर संक्षिप्त रूप से लिखा जा चुका है।

(3) **व्याकरण** – व्याकरण नामक वेदाङ्ग को वेद–पुरुष का मुख कहा गया है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। शब्दों का यथार्थ ज्ञान, उसका शास्त्रानुसार शुद्ध प्रयोग एवं वाचन करना व्याकरण का उद्देश्य है। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता के अनुसार सबसे पहला व्याकरण ग्रंथ इन्द्र ने बनाया था। लेकिन वर्तमान में व्याकरण का पूर्ण और सुव्यवस्थित ज्ञान महर्षि पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रंथ में उपलब्ध है। पाणिनि से पहले भी व्याकरण ग्रंथों की एक सुदीर्घ परम्परा थी, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने व्याकरण ग्रंथ में किया है। महर्षि पाणिनि के अष्टाध्यायी नामक व्याकरण ग्रंथ पर कात्यायन ऋषि का वार्तिक और महर्षि पतञ्जलि का महाभाष्य भी उपलब्ध है।

(4) **निरुक्त** – 'निघण्टु' नामक ग्रंथ में वेद के क्लिष्ट शब्दों का समुच्चय होने से इसे 'वैदिक कोश' (वैदिकशब्द–संग्रह) कहा जाता है। महाभारत (मोक्षधर्मपर्व) के अनुसार निघण्टु की रचना प्रजापति कश्यप ने की थी। वेदभाष्यकार सायणाचार्य के अनुसार अर्थज्ञान में निरपेक्षतापूर्वक पदों की व्युत्पत्ति जिन ग्रंथों में बतायी गई है, वे निरुक्त कहलाते हैं।

वेदार्थ को यथार्थ रूप में जानने में निघण्टु के अलावा महर्षि यास्क द्वारा रचित 'निरुक्त' एक प्रामाणिक ग्रंथ है। निरुक्त निघण्टु की भाष्यभूत टीका है। स्वयं महर्षि यास्क ने अपने निरुक्त में कश्यप, शाकपाणि आदि आचार्यों का उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट है कि निरुक्तग्रंथों की भी एक सुदीर्घ परम्परा रही है, जबकि आज केवल महर्षि यास्क का ही निरुक्त उपलब्ध है। निरुक्त में वैदिक शब्दों की निरुक्ति (व्युत्पत्ति) बताई गई है और वैदिक शब्दों के अर्थों का

विवेचन भी है। महर्षि यास्क के अनुसार सभी शब्द व्युत्पन्न हैं और प्रत्येक शब्द किसी न किसी धातु के साथ अवश्य सम्बद्ध है। इसलिये महर्षि यास्क निरुक्त में शब्दों की व्युत्पत्ति प्रदर्शित कर धातु के साथ विभिन्न प्रत्ययों का निर्देश भी देते हैं। वास्तव में वेदों के अध्ययन के लिये व्याकरण एवं निरुक्त दोनों का ज्ञान आवश्यक है। निरुक्त वैदिक शब्दों के निर्वचन का शास्त्र है, जिसमें वैदिक शब्दों की व्याख्या हुई है। निरुक्त में निर्वचन की पद्धति द्वारा किसी शब्द के मूल तक पहुंचने का प्रयत्न किया जाता है और इस आधार पर उस शब्द का प्रचलित अर्थ स्पष्ट किया जाता है। इस प्रकार निरुक्त न केवल वेदमंत्रों के अर्थ का ज्ञान कराने वाला शास्त्र है बल्कि यह शब्दों के विकास सम्बन्धी मूल सिद्धान्तों को भी समझाने में सहायक है। निरुक्त में निघण्टु के क्रम से प्रमुख प्रतिनिधि शब्दों के निर्वचन दिये गये हैं, तथा उनकी पुष्टि में वैदिक मंत्र उद्धृत किये गये हैं, फिर उद्धृत मंत्रों की व्याख्या की गई है।

(5) **छन्द** – छन्द का अर्थ है आच्छादन अर्थात् ढकना। वेदमंत्र का रस, भाव, वर्ण्यविषय छन्द द्वारा आच्छादित होता है। वेदमंत्रों के उच्चारण के लिये छन्दों का ज्ञान आवश्यक है। प्रत्येक छन्द में अक्षरों की संख्या निश्चित होती है। वैदिक छन्दों में केवल अक्षरों अर्थात् स्वरों की ही गणना होती है। महर्षि पिंगलाचार्य द्वारा लिखा गया 'छन्दःसूत्रम्' छन्द शास्त्र का आधार ग्रंथ है। 8 अध्यायों में विभक्त इस ग्रंथ के चौथे अध्याय के सातवें सूत्र तक वैदिक छन्दों का वर्णन है, इसके बाद लौकिक छंदों पर प्रकाश डाला गया है।

वैदिक छन्दों के विवरण 3 प्रकार के ग्रंथों में मिलते हैं –

1. वे ग्रंथ जिनमें अन्य विषयों के साथ छन्दों का भी वर्णन है, जैसे–अग्निपुराण, ऋक्प्रातिशाख्य और निदानसूत्र आदि।
2. अनुक्रमणी नामक ग्रंथ जैसे –कात्यायन द्वारा रचित ऋक्सर्वानुक्रमणी, वेंकटमाधव द्वारा रचित छन्दोऽनुक्रमणी आदि।
3. केवल छन्दों पर ही लिखे गये ग्रन्थ जैसे – महर्षि पिंगल द्वारा रचित छन्दःसूत्रम्, गार्ग्यप्रोक्त उपनिदान सूत्र (सामवेदीय) और जयदेव द्वारा रचित छंदसूत्र आदि।

(6) **ज्योतिष** :– ज्योतिष को वेद–पुरुष का चक्षु (नेत्र) कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि वेदों के अध्ययन के लिये ज्योतिष नामक वेदाङ्ग का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान में लगधाचार्य के वेदाङ्ग ज्योतिष नामक ग्रंथ के अतिरिक्त नारद, पराशर और वसिष्ठ आदि ऋषियों के तथा आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य के भी अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं।

(ग). वेद के उपाङ्ग

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त नामक ये 6 वैदिक दर्शन वेद के उपाङ्ग के रूप में प्रसिद्ध हैं। लेकिन श्री वामन शिवराव आप्टे के प्रसिद्ध संस्कृत-हिन्दी कोश में ''उपाङ्ग'' शब्द के संदर्भ में लिखा गया है- ''वेदाङ्गों के परिशिष्ट स्वरूप लिखा गया ग्रन्थ समूह (ये चार हैं- पुराणन्यायमीमांसाधर्म शास्त्राणि)।'' इससे स्पष्ट है कि न्याय और मीमांसा आदि दर्शन जो वेद के उपाङ्ग के रूप में प्रसिद्ध हैं, इनके अतिरिक्त पुराण और ६ ार्मशास्त्र (मनुस्मृति आदि स्मृतिग्रंथ) भी वेद के उपाङ्ग हैं। यहाँ यह ध्यान देना आवश्यक है कि श्री आप्टे 4 ग्रन्थों के समूह को उपाङ्ग बताते हैं, लेकिन ''पुराणन्यायमीमांसाधर्म शास्त्राणि'' के रूप में जब वे चारों का उल्लेख करते हैं तो न्याय और मीमांसा- इन दोनों के दर्शन की श्रेणी में आ जाने से इनकी संख्या 3 ही रह जाती है। इस समस्या का समाधान ''पुराणेतिहास-उपवेद -दर्शन-६ ार्मशास्त्राणि'' के रुप में किया जा सकता है। यहाँ श्री आप्टे के उक्त कथन में न्याय और मीमांसा के स्थान पर ''दर्शन'' के आ जाने से तो किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती और पुराणों तथा इतिहास का जोड़ा तो प्रसिद्ध है ही, और फिर इस जोड़े के साथ उपवेद के आ जाने से श्री आप्टे जी के उस कथन का समन्वय इस प्रकार हो जाता है- ''पुराणेतिहास-दर्शन -उपवेद-धर्मशास्त्राणि''।

निष्कर्षतः -

वेद के उपाङ्ग

दर्शन | स्मृति (धर्मशास्त्र) | पुराण-इतिहास | उपवेद

(1) दर्शन (वैदिक दर्शन)

मानव जीवन में दुःख हमेशा के लिये समाप्त हो जायें - यह तत्त्वज्ञान से ही सम्भव है और तत्त्वज्ञान कराने वाला शास्त्र ही दर्शनशास्त्र है। वैदिक दर्शन 6 हैं : (1) वैशेषिक (2) सांख्य (3) योग (4) न्याय (5) पूर्वमीमांसा (6) उत्तरमीमांसा (वेदान्त)।

(अ) **वैशेषिक दर्शन** - वैशेषिक दर्शन का प्रामाणिक ग्रंथ महर्षि कणाद का 'वैशेषिक सूत्र' है। इसमें 10 अध्याय हैं, जिनमें 370 सूत्र हैं। इस ग्रंथ का प्रारम्भ 'अथातो धर्मव्याख्यास्यामः' से होता है, अर्थात् अब हम धर्म की व्याख्या करेंगे और यह कहकर अगले ही सूत्र में वे धर्म को परिभाषित करते हुए लिखते हैं-

***यतोऽभ्युदयः* निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः**। अर्थात् जिससे इहलोक में उन्नति और परलोक में कल्याण होता है, उसे धर्म कहते हैं। वैशेषिक दर्शन 7 पदार्थो (द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव) द्वारा ही सत्य की जांच करता है। वैशेषिक दर्शन प्रत्यक्ष और अनुमान को ही प्रमाण मानता है। यह दर्शन उपमान और शब्द प्रमाण को अनुमान के अन्तर्गत ही मानता है। महर्षि कणाद के वैशेषिक सूत्रों पर बहुत से भाष्य और टीकाएँ उपलब्ध हैं। इनमें से प्रशस्तपाद का ''पदार्थधर्मसंग्रह'' प्रमुख है। इस प्रशस्तपाद भाष्य पर चार उत्तम टीका ग्रंथ हैं –
(1) उदयनाचार्य की 'किरणावली' (2) श्रीधराचार्य की 'न्यायकंदली'
(3) व्योमशेखर की 'व्योमवती' (4) श्रीवत्स की 'लीलावती'।

(आ) **सांख्य दर्शन** – सांख्यदर्शन का प्रामाणिक ग्रंथ कपिलमुनि का 'सांख्यसूत्र' है। इसमें 6 अध्याय हैं, जिनमें 537 सूत्र हैं। ईश्वर कृष्ण की ''सांख्यकारिका'' भी सांख्यदर्शन का प्रसिद्ध ग्रंथ है। गौड़पाद का 'सांख्यकारिका–भाष्य' भी प्रसिद्ध है। सांख्यदर्शन के अनुसार 25 तत्त्व प्रसिद्ध हैं –

8 प्रकृतियाँ (प्रकृति, महत्–तत्त्व, अहंकार, 5 तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध), **16 विकार** 5 महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी), 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 कर्मेन्द्रियाँ, 1 उभयेन्द्रिय–मन, **1 पुरुष)**

सांख्यदर्शन के अनुसार सृष्टि–निर्माण के प्रारम्भिक काल में त्रिगुणात्मक प्रकृति अव्यक्त– अवस्था (साम्य–अवस्था) में रहती है। लेकिन चेतन–पुरुष के संसर्ग में आते ही प्रकृति अव्यक्त से व्यक्त होने लगती है। अर्थात् यह सत्व, रज और तम नामक तीन गुणों में प्रकट होने लगती है। व्यक्त होने की प्रक्रिया में सर्वप्रथम प्रकृति से महत्–तत्त्व और महत्–तत्व से अहंकार, अहंकार से एक ओर मन तथा 5 ज्ञानेन्द्रियाँ व 5 कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होते हैं तो दूसरी ओर 5 तन्मात्रायें और 5 महाभूत उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार मन, 5 ज्ञानेन्द्रियों व 5 कर्मेन्द्रियों और 5 महाभूतों से सारी सृष्टि उत्पन्न होती है।

(इ) **योगदर्शन** – योगदर्शन का प्रामाणिक ग्रंथ महर्षि पतञ्जलि का योगदर्शन है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है – **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**।

चित्तवृत्तियों के निरोध से साधक अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाता है। यही योग का लक्ष्य है। योग के 8 अंग हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। योग के इन्हीं 8 अंगों (अष्टाङ्ग योग) द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध सम्भव है।

1. यम – अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (अनावश्यक संग्रह न करना)। ये महाव्रत प्रत्येक जाति और देश के व्यक्तियों के लिये सभी कालों में पालन करने योग्य है – **जाति-देश-काल-समयान्विच्छन्नाः सार्वभौमामहाव्रतम्।**

2. नियम – शौच (बाहर और भीतर की पवित्रता), संतोष, तपस्या, मन, वचन और कर्म से मर्यादित (नियंत्रित) जीवन जीना, ईश्वर प्रणिधान (की आराधना) – ये 5 नियम हैं।

3. आसन – चित्त को स्थिर करने के लिये सुखपूर्वक निश्चल/अचल/स्थिर भाव से एक स्थान पर बैठना आवश्यक है (ध्यान रहे जिसके चित्त में चञ्चलता ज्यादा होती है, वह व्यक्ति एक स्थान पर ज्यादा देर तक बैठ नहीं सकता)।

4. प्राणायाम – श्वास-प्रश्वास की गति को संयमित करना प्राणायाम है। इससे चित्त की चञ्चलता समाप्त होती है।

5. प्रत्याहार – चित्त की वृत्तियाँ भिन्न-भिन्न इन्द्रियों के अपने-अपने विषयों के सम्पर्क में आने पर चञ्चल होती है, इसलिये इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर चित्त में ही स्थित करने से चित्त शान्त हो जायेगा, यही प्रत्याहार है।

6. धारणा – चित्त का किसी विशेष वस्तु के साथ संलग्न होना ही धारणा है।

7. ध्यान – चित्त का किसी वस्तु विषयक ज्ञान में तल्लीन हो जाना ही ध्यान है।

8. समाधि – चित्त का अपने ही स्वरूप के साथ एकाकार हो जाना समाधि है।

(ई) न्याय दर्शन :- न्याय दर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ महर्षि गौतम का 'न्याय-सूत्र' है। 12 वीं सदी में गंगेश उपाध्याय द्वारा लिखित 'तत्त्वचिन्तामणि' नामक ग्रन्थ 'नव्यन्याय' की अमरकृति बन गया।

प्रमाणों के द्वारा किसी विषय की परीक्षा करना ही 'न्याय' है, इसे 'तर्क' भी कहते हैं। न्याय दर्शन में 16 तत्त्वों की चर्चा की गई है, जिनसे किसी भी पदार्थ की सत्यता की जाँच- पड़ताल होती है, वे हैं – प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान।

न्याय दर्शन के अनुसार प्रमाण चार हैं – 1. प्रत्यक्ष (इन्द्रियजन्य और अन्तर्दृष्टि), 2. अनुमान (मनन), 3. उपमान (तुलना – उपमा या सादृश्यजन्य ज्ञान को उपमान कहते हैं) और 4.शब्द (आप्त –पुरुषों के वचन/वाक्य)। न्याय दर्शन को तर्क/हेतु/आन्वीक्षिकी के नाम से भी जाना जाता है।

(उ) मीमांसा (पूर्व-मीमांसा) दर्शन :-मीमांसा (मीमांसा-दर्शन) को पूर्व-मीमांसा के नाम से भी जाना जाता है। मीमांसा का तात्पर्य है - विवेचना (गहन विचार)। मीमांसा-दर्शन वेद में बताये गये विभिन्न कर्मों की तार्किक जाँच करता है। वेदों में जिस कर्मकाण्ड का विधान किया गया है, उसे मीमांसा-दर्शन धर्म (कर्त्तव्य-कर्म = करने योग्य कर्म) मानता है तथा धर्म के इसी स्वरूप का परीक्षण मीमांसा-दर्शन में किया गया है।

इस दर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ महर्षि जैमिनी का 'जैमिनी-सूत्र' है। इसमें 12 अध्यायों में 2642 सूत्र हैं। सूत्रों की यह संख्या शेष 5 दर्शनों की सूत्र संख्या के योग के बराबर है। जैमिनी सूत्र पर शबरस्वामी का शाबरभाष्य प्रसिद्ध है। शाबरभाष्य पर कुमारिल भट्ट ने वृत्ति रूप में श्लोकवार्त्तिक और तन्त्रवार्त्तिक आदि लिखे हैं। प्रभाकर ने शबरस्वामी के भाष्य पर 'बृहती' नाम की टीका लिखी है।

वेद के दो भाग हैं - कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। इनमें से ब्राह्मण ग्रंथ वेद के कर्मकाण्ड भाग का और उपनिषद् वेद के ज्ञानकाण्ड भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उसी प्रकार से दर्शन में भी दो धारायें है, इनमें से मीमांसा (पूर्व-मीमांसा) नामक दर्शन कर्मकाण्ड को अभिव्यक्त करता है और वेदान्त (उत्तर-मीमांसा) नामक दर्शन ज्ञानकाण्ड को अभिव्यक्त करता है।

मीमांसा दर्शन के जैमिनी-सूत्र नामक प्रधान ग्रंथ का पहला सूत्र है- "**अथातो धर्मजिज्ञासा**"। अर्थात् अब हम धर्म के सम्बन्ध में जानेंगे। मीमांसा दर्शन के अनुसार वेद (वेदों में भरा हुआ ज्ञान) नित्य है और अपौरुषेय है। प्रकृति के नियम जो अटल सत्य हैं, ऋषियों ने उन्हें समझा अर्थात् उनका साक्षात्कार किया, इसीलिये कहा गया है - '**ऋषयः मंत्रद्रष्टारः**"। परन्तु प्रकृति में तो वे नियम थे ही (उनका पालन हो ही रहा था) अर्थात् वो ज्ञान था ही। दूसरे शब्दों में कहें तो सृष्टि के प्रारम्भ से ही था और प्रलय तक भी रहेगा। इसलिये वह ज्ञान नित्य है और उन नियमों को चूंकि मनुष्यों ने नहीं बनाया, इसलिये दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह ज्ञान अपौरुषेय/ईश्वरकृत है। इसलिये वेदों को अपौरुषेय कहा जाता है। मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने तो केवल उस ज्ञान का साक्षात्कार किया था और उसे शब्दों में पिरोया था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वेद ईश्वरकृत हैं।

मीमांसकों की दृष्टि में जगत् तथा उसके विषय सत्य हैं। मीमांसकों के अनुसार सारा ब्रह्माण्ड कर्म की सत्ता से चल रहा है और कर्म स्वयं परिणाम देने में सक्षम है।

मीमांसा दर्शन विविध प्रकार के यज्ञों की विवेचना (मीमांसा) करता है। मीमांसकों के कर्म-सिद्धान्त के अनुसार कर्म चार प्रकार के हैं - 1. नित्यकर्म (संध्या-वन्दन आदि), 2. नैमित्तिक कर्म (श्राद्ध आदि), 3. प्रतिषिद्ध कर्म (वेद द्वारा वर्जित कर्म) और 4. काम्यकर्म (स्वर्ग आदि की इच्छा से किये गये यज्ञ आदि)।

कुछ विद्वानों को ऐसा लगता है कि प्राचीन मीमांसक कर्म द्वारा स्वर्ग प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानते थे, परन्तु बाद के मीमांसकों ने कर्म द्वारा मोक्ष प्राप्ति को ही जीवन का ध्येय माना।

(ऊ) वेदान्त (उत्तर-मीमांसा) दर्शन :- वेदों के अंतिम भाग (उपनिषद्) पर आधारित होने से ही यह दर्शन वेदान्त कहलाता है। वेदान्त दर्शन का प्रामाणिक ग्रंथ महर्षि वेदव्यास का 'ब्रह्मसूत्र' है। ब्रह्मसूत्र में आए उल्लेखों से पता चलता है कि महर्षि वेदव्यास से पहले भी वेदान्त दर्शन के अनेक आचार्य हो चुके थे।

ब्रह्मसूत्र का पहला सूत्र है - **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा** अर्थात् ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा। ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा को शान्त किया गया है।

वेदान्त दर्शन अद्वैतवादी है। अद्वैत अर्थात् 'दो नहीं'। एक अद्वितीय, अनिर्वचनीय ब्रह्म ही इस संसार में है, नाना प्रकार की जो वस्तुएँ दिखाई पड़ रही हैं, वे सत्य नहीं हैं। वास्तव में वे माया से उत्पन्न हुई, अज्ञान से सत्यवत् प्रतीत होती हैं- यही वेदान्तशास्त्रीय मत है।

वेदान्त के सार को अपने भाष्य में एक श्लोक में अभिव्यक्त करते हुए आदि जगद्गुरु शंकराचार्य लिखते हैं -

श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः।
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।।

अर्थात् मैं आधे श्लोक में वह बात कहता हूँ जो करोड़ों ग्रंथों में कही गई है- ब्रह्म ही सत्य है तथा जगत् मिथ्या है और जीव तथा ब्रह्म एक ही हैं, भिन्न नहीं। इस प्रकार आदि शंकराचार्य केवल अद्वैत की ही चर्चा करते हैं , इसलिये उनका मत '**केवलाद्वैत**' के नाम से प्रसिद्ध है।

ब्रह्मसूत्र पर 'श्रीभाष्य' लिखने वाले रामानुजाचार्य भी अद्वैतवादी हैं। उनके अनुसार सत्-चित्त -आनन्दमयब्रह्म अपने आनन्द गुण को तिरोहित (छोड़) कर जीव बनता है तथा चेतन गुण को तिरोहित कर जगत् बनता है। रामानुजाचार्य का यह मत '**विशिष्टाद्वैत**' के नाम से प्रसिद्ध है।

वल्लभाचार्य ने भी ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा। उनके अनुसार जगत् किसी माया या अज्ञान के कारण व्यक्त नहीं होता बल्कि यह उस ब्रह्म की लीला के कारण व्यक्त होता है। वल्लभाचार्य का यह मत '**शुद्धाद्वैत**' के नाम से प्रसिद्ध है।

आदि शंकराचार्य का ब्रह्मसूत्र पर 'शारीरक-भाष्य' प्रसिद्ध है। निम्बार्काचार्य ने भी ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा है। मध्वाचार्य अद्वैतवादी नहीं हैं, बल्कि द्वैतवाद के प्रतिपादक हैं, इन्होंने भी ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा है। इस प्रकार अनेक आचार्यों के अपने-अपने मतों के कारण वेदान्त-दर्शन से सम्बन्ध रखने वाले अनेक सम्प्रदाय वर्तमान में प्रसिद्ध हैं।

वेदान्त और मोक्ष - वेदान्त के अनुसार जीव अज्ञान के कारण बन्धन में है और इसी कारण दु:खी है। जिस दिन वह यह जान लेगा कि वही ब्रह्म है, उस दिन उसका अज्ञान चला जायेगा और वह मुक्त हो जायेगा अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हो जायेगा।

वेदान्त की विशेषता - ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है उस सब का एकीकरण ब्रह्म में करता हुआ वेदान्त कहता है - **एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति**। अर्थात् एक ब्रह्म ही है और दूसरा कुछ भी नहीं है।

(2) स्मृति

शुक्राचार्य शुक्रनीति में स्मृति को परिभाषित करते हुए लिखते हैं -

वर्णादिधर्मस्मरणं यत्र वेदाविरोधकम्।
कीर्तनं चार्थशास्त्राणां स्मृतिः सा च प्रकीर्तिता।। (शुक्रनीति 4/3/37)

अर्थात् जिसमें वेद-सम्मत चारों वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों (कर्त्तव्यों) का वर्णन हो तथा अर्थशास्त्र का भी भलीभाँति प्रतिपादन किया गया हो, उसे 'स्मृति' कहते हैं।

मनुष्य धर्म का मर्म समझ सके, शुद्ध आचरण का महत्त्व जान सके, पाप-पुण्य, नीति-अनीति को पहचानने की सामर्थ्य प्राप्त कर सके तथा देव, पितृ, अतिथि, गुरु आदि के प्रति अपना कर्त्तव्य समझ सके एवं अपने कर्त्तव्यपथ पर बढ़ता रहे- यह स्मृति-ग्रन्थों का प्रधान उद्देश्य है।

सामान्यत: स्मृतियों में 3 प्रधान विषयों पर विवेचन हुआ है -

1. **आचार** - इसमें चारों वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों (कर्त्तव्य-कर्मों) का वर्णन है और राजा के कर्त्तव्य, प्रजा के प्रति उसके व्यवहार, उसके द्वारा दण्ड-विधान के पालन का विस्तृत विवेचन है।

2. **व्यवहार** – इसमें दण्ड और उसके प्रकार, साक्षी और उसके प्रकार, शपथ, न्यायकर्ता के गुण, न्याय–निर्णय का ढंग, सम्पत्ति का विभाजन, सम्पत्ति के अधिकारी, सम्पत्ति का अंश, स्त्री–धन और कर ग्रहण की व्यवस्था आदि का वर्णन है।

3. **प्रायश्चित** – इसमें धार्मिक तथा सामाजिक कृत्यों के न करने पर तथा उनकी अवहेलना करने से जो पाप होते हैं, उनके प्रायश्चित का विधान बताया गया है। जिन विषयों की आधार– शिला गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रों में रखी गई हैं, उन्हीं विषयों का स्मृति–ग्रंथों में विस्तार से वर्णन हुआ है।

स्मृतियों में वर्णधर्म, आश्रमधर्म, सामान्य धर्म, विशेष धर्म, गर्भाधान से अंत्येष्टि तक के संस्कार, दिनचर्या, पंचमहायज्ञ, बलिवैश्वदेव, भोजन विधि, शयनविधि, स्वाध्याय, यज्ञ–याग, इष्ट–आपूर्त्त, अशौच (जननाशौच, मरणाशौच), भक्ष्य–अभक्ष्य विचार, आपत्–धर्म, दाय विभाग (सम्पत्ति का बँटवारा), स्त्री–धन, पुत्रों के भेद, दत्तक पुत्र मीमांसा, राजधर्म आदि का विस्तार से वर्णन हुआ है। मनु स्मृति के व्याख्याकार मेधातिथि के अनुसार धर्म शब्द के 5 उपादान प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं– (1) वर्णधर्म (2) आश्रमधर्म (3) वर्णाश्रम धर्म (4) नैमित्तिक धर्म जिसे अन्यत्र प्रायश्चित धर्म भी कहा गया है, (5) गुणधर्म (राजकार्य संरक्षण धर्म)।

स्मृति–ग्रन्थों पर अनेक भाष्य एवं टीकाएँ हुई हैं, तथा इनके विविध विषयों में से एक–एक विषय को लेकर स्वतन्त्र निबन्ध–ग्रंथों की रचना भी हुई है। सभी स्मृति–ग्रंथ अर्थात् धर्मशास्त्र हमें सदाचारी बनने की शिक्षा देते हैं, सद्व्यवहार सिखाते हैं। सच्चा मानव बनने की प्रेरणा देते हुए हमें अपने कर्त्तव्यों का बोध कराते हैं, इस दृष्टि से स्मृति–ग्रंथों में वर्णित विचार सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। यद्यपि आजकल 100 से भी अधिक स्मृतियाँ (स्मृति–ग्रंथ) प्राप्त होती हैं फिर भी उनमें 25 ही मुख्य मानी गई हैं और उनमें भी मनुस्मृति (मानव धर्म शास्त्र/विश्व के प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य शास्त्र) सर्वाधिक मान्य है।

मनुस्मृति – स्वायम्भुव मनु ने अपने पिता ब्रह्मा से वेदों का सारभूत 1 लाख श्लोकों वाला जो ग्रंथ पढ़ा था, उसे संक्षिप्त कर भृगु, नारद आदि अपने 10 मानस पुत्रों को पढ़ाया। (मनु 1/51, मन्वर्थ मुक्तावली टीका) उसमें से महर्षि नारद द्वारा ग्रथित 'नारदीय मनुस्मृति' और महर्षि भृगु द्वारा ग्रथित 'मनुस्मृति' ये दो आज हमें उपलब्ध हैं।

मनुस्मृति ने धर्म से नियंत्रित अर्थ और काम को ही पुरुषार्थ माना है क्योंकि उच्छृंखल (अनियंत्रित) अर्थ और काम मनुष्य को पथभ्रष्ट कर उसके मूल्यवान जीवन को ही नष्ट कर डालते हैं। इसीलिये स्मृतियों को धर्मशास्त्र कहा जाता है – **'धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः'**(मनु॰ 2/10)। यही कारण है कि मनुस्मृति अर्थ और काम के प्रतिपादन के अवसर पर धार्मिक निर्देशों को प्रदर्शित करती है।

मनुस्मृति में धर्म शब्द अपने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जो विश्व को धारण करे वह धर्म है–'धरति विश्वमिति धर्मः'। अर्थ–रूप धर्म के बिना विश्व का धारण नहीं हो सकता, इसलिये 'अर्थ' भी धर्म है। 'काम' के बिना सृष्टि का बढ़ना ही रुक जाए, इसलिये काम भी धर्म है। 'मोक्ष' के बिना मानव–जीवन की सार्थकता ही नष्ट हो जाए, इसलिये मोक्ष भी धर्म है।

धर्म को इस व्यापक अर्थ में न समझ सकने के कारण ही यह प्रश्न उठता है कि मनुस्मृति के प्रारम्भ में महर्षियों ने मनु से यह पूछा कि हमें समस्त मनुष्यों का धर्म बताइये –**'धर्मान्नो वक्तुमर्हसि'** (1/2), तो उन्होंने 58 श्लोकों तक सृष्टि और प्रलय की बातें क्यों बताईं?

इसका उत्तर यह है कि ब्रह्म धर्मों का धर्म है और मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य भी उसी की प्राप्ति है। जिससे जगत् का जन्म, स्थिति और संहार हो वह ब्रह्म है (यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति। (तैत्ति॰ उप॰ 3/1)

मनु ने भी 58 श्लोकों में इसी श्रुति की व्याख्या की है। ब्रह्म का ज्ञान होना ही मोक्ष है जो मनुष्य जीवन का परम धर्म है। मनु ने इसी परम धर्म को प्रतिपादित करना आवश्यक समझा। इसीलिये मनु ने उन 58 श्लोकों में ऋषियों ने जो पूछा उसका उत्तर ही दिया है, कोई अप्रासंगिक बात नहीं कही।

मनुस्मृति की महिमा – मनु ने जो कुछ कहा है, वह सब मनुष्यों के लिये जीवन की महान औषधि है।

'यत्किंच मनुरवदत् तद्भेषजं भेषजतायाः'। (ताण्ड्य. 23/16/7) और **'यद वै किं च मनुरवदत् तद् भेषजम्'**। (कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता 2/2/10/2, मैत्रायणी संहिता 1/15 और काठक संहिता 11/5/9)

आज विश्व का मानव अपने लक्ष्य और पथ को ढूँढने में भ्रमित हो गया है। भारत की जनता में भी भ्रम अधिक फैला दिया गया है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक मानव का यह कर्त्तव्य है कि वह वेद के स्वर में अपना स्वर मिलाकर अपने उपास्य देव से यह प्रार्थना करे – ''हे भगवन्! मनुष्य मात्र के पिता मनु द्वारा बताये

हुए और परम्परा से उनसे प्राप्त पथ से हम दूर न होने पावें''– **'मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरम्'** (ऋग्वेद 8/30/3)। मनु के पथ से दूर होकर आज मानव किस तरह विनाश के मुख में जा पड़ा है, यह बात किसी से छुपी हुई नहीं है। मनुस्मृति में वर्णाश्रमधर्मों के अतिरिक्त मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित विषयों का प्रतिपादन हुआ है। यह बात निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायेगी –

मनुस्मृति के 12 अध्याय और उनमें वर्णित विषय

अध्याय	**मुख्य वर्णित विषय**
1.	संसार की उत्पत्ति।
2.	ब्रह्मचर्य व्रत का पालन और गुरु–शिष्य सम्बन्धों का वर्णन।
3.	विवाहों के प्रकार और गृहस्थों के कर्त्तव्य।
4.	जीविका के उपाय और गृहस्थों के नियम।
5.	भक्ष्य–अभक्ष्य, मरणाशौच की शुद्धि और स्त्रियों के धर्म।
6.	वानप्रस्थियों और संन्यासियों के धर्म।
7.	मुकदमों के निर्णय और करग्रहण आदि राजधर्म।
8.	ऋण आदि का व्यवहार और गवाहों से प्रश्नोत्तर का विधान।
9.	साथ तथा अलग रहने पर पति एवं पत्नी के धर्म, भाइयों में धन का बंटवारा, चोरों से बचाव के उपाय, वैश्य धर्म, शूद्र धर्म।
10.	वर्णसंकरों की उत्पत्ति, आपत्तिकाल में जीविका का साधन।
11.	विभिन्न प्रकार के दुष्कर्मों के प्रायश्चित्त विधान।
12.	कर्मों के अनुसार मिलने वाली योनियाँ, देश धर्म, जाति धर्म, पाखण्डियों का आचरण।

मनुस्मृति के पावन सन्देश

पृथ्वी के सभी मानव अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें :-

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।। (मनुस्मृति 2/20)
स्वं चरित्रं च गृह्णीयुः पृथिव्यां सर्वमानवाः।। (महा. आश्व. 92 दा.)

अर्थात् भारतवर्ष के ब्रह्मावर्त्त (सरस्वती एवं दृषद्वती के बीच का भू–भाग) और ब्रह्मर्षि देश (कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल/पंजाब और शूरसेन नामक देश) नामक दोनों देशों में उत्पन्न ब्राह्मणों से पृथ्वी पर रहने वाले सब मनुष्यों को अपने–अपने चरित्र (आचरण) की शिक्षा लेनी चाहिये। भगवान् मनु के इस कथन से यह स्पष्ट है कि उस समय ब्रह्मावर्त्त और ब्रह्मर्षि देश में निवास करने वाले ब्राह्मण कितने चरित्रवान् रहे होंगे।

आचार: परमो धर्म: –

आचार: परमो धर्म: श्रुत्युक्त: स्मार्त एव च।

तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विज:।। (मनुस्मृति 1/108)

अर्थात् श्रुतियों और स्मृतियों में प्रतिपादित आचार ही श्रेष्ठ धर्म है। इसलिये आत्मा का हित चाहने वाले द्विज को चाहिये कि वह इस आचार से सदा ही युक्त रहे। (आचार – ब्रह्म मुहूर्त में उठना, संध्या, हवन, तर्पण, बलिवैश्वदेव, स्वाध्याय (वेद आदि शास्त्रों का अध्ययन), गुरुजनों की सेवा-सुश्रूषा आदि अनेक कर्म)।

प्रणाम करने के लाभ :-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविन:।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।। (मनु. 2/121)

अर्थात् जिसका प्रणाम करने का स्वभाव है और जो नित्य वृद्धों की सेवा करता है (ज्ञानवृद्धों के पास बैठकर उनके उपदेशों को श्रद्धापूर्वक सुनता है), उसके आयु, विद्या, यश और बल – ये चारों बढ़ते हैं।

माता का गौरव :-

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।

सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।। (मनुस्मृति 2/145)

अर्थात् दस उपाध्यायों* की अपेक्षा आचार्य**, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता, हजारों पिताओं की अपेक्षा माता का गौरव अधिक है।

*, ** उपाध्याय और आचार्य – जो ब्राह्मण शिष्य का यज्ञोपवीत संस्कार करवाकर कल्प★ तथा उपनिषद् के साथ वेद पढ़ाये, वह आचार्य कहलाता है और जो ब्राह्मण जीविका के लिये वेद का एक भाग (मंत्र या ब्राह्मण) तथा वेदाङ्गों को पढ़ाये, वह उपाध्याय कहलाता है। (मनुस्मृति 140 और 141)

★कल्प – 6 वेदाङ्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) में से एक है।

नारियों का सम्मान :-

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता: पतिभिर्देवरैस्तथा।

पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभि:।।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया:।।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।

न शोचन्ति तु यत्रेता वर्धते तद्धि सर्वदा।।
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः।। (मनुस्मृति 3/55-58)

अर्थात् पिता, भाई, पति, देवर, जो भी उत्कर्ष के इच्छुक हों, उन्हें स्त्रियों का सम्मान एवं सत्कार करना चाहिये। (3/55) जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं, किन्तु जहाँ उनका अपमान होता है वहाँ सभी संस्कार विफल होते हैं। (3/56) जहाँ नारियाँ दुःखी रहती हैं वे परिवार शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, जहाँ वे सुखी रहती हैं वे परिवार उन्नति करते हैं। (3/57) स्त्रियों का असम्मान जिन घरों को शापित करता है, वे घर मानो जादू से सूख गये हों ऐसे पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। (3/58)

प्रिय सत्य बोलें -

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमऽप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।। (मनुस्मृति 4/138)

अर्थात् सदा सत्य बोलें, प्रिय बोलें, किन्तु ऐसी बात न कहें जो सत्य तो हों पर अप्रिय हों तथा जो प्रिय तो हों पर असत्य हों, उसे भी न कहें। यह सनातन धर्म है।

अर्थोपार्जन में पवित्रता -

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिः स हि शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।। (मनुस्मृति 5/109)

अर्थात् अर्थ (धन) की कमाई में पवित्रता (ईमानदारी) ही सब प्रकार के शौचाचारों (पवित्रता के आचरणों) में श्रेष्ठ है, जो धन के उपार्जन (कमाई) में पवित्र है, वही वास्तव में पवित्र है। मिट्टी या पानी की पवित्रता, पवित्रता नहीं है।

3. पुराण- इतिहास

इतिहास के अन्तर्गत 18 पुराण, वाल्मीकि रामायण एवं वेदव्यास रचित महाभारत ग्रन्थ आते है यथा -

(अ) **पुराण** - शुक्रनीति के रचयिता दैत्यगुरु शुक्राचार्य पुराण के पाँच लक्षणों का उल्लेख करते हुए 'पुराण' को परिभाषित करते है -

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंश्यानुचरितं यस्मिन् पुराणं तद्धि कीर्तितम्।। (शुक्रनीति 4/3/35)

अर्थात् जिसमें सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय), वंश, मन्वन्तर तथा वंश्यानुचरित (वंशों के चरित्र) का वर्णन हो, उसे 'पुराण' कहते हैं।

पुराण के इन पाँच लक्षणों में पहला 'सृष्टि' ही पुराणों का प्रधान प्रतिपाद्य विषय है तथा प्रतिसृष्टि आदि गौण विषय हैं। इसलिये सृष्टि विद्या/सृष्टि विज्ञान को ही पुराण विद्या अथवा पुराण कहा जाता है अथवा यह कहें कि विश्व सृष्टि का इतिहास पुराण कहलाता है। पुराणों में सृष्टि का विज्ञान भी है और इतिहास भी है।

18 पुराण – 18 पुराणों के नाम निम्न श्लोक द्वारा सरलतापूर्वक याद रखे जा सकते हैं–

म द्वयं भ द्वयं चैव ब्र त्रयं व चतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक्-पृथक्।।

म द्वयं अर्थात् म से प्रारंभ नाम वाले दो पुराण हैं – मत्स्य पुराण और मार्कण्डेय पुराण।
भ द्वयं अर्थात् भ से प्रारंभ नाम वाले दो पुराण हैं – भविष्य पुराण और भागवत पुराण।
ब्र त्रयं अर्थात् ब्र से प्रारंभ नाम वाले तीन पुराण हैं – ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण।
व चतुष्टयं अर्थात् व से प्रारंभ नाम वाले चार पुराण हैं –वराह पुराण, वामन पुराण, वायु पुराण और विष्णु पुराण।
अ अर्थात् अग्नि पुराण।
ना अर्थात् नारद पुराण।
प अर्थात् पद्मपुराण।
लिं अर्थात् लिंग पुराण।
ग अर्थात् गरुड़ पुराण।
कू अर्थात् कूर्म पुराण
स्क अर्थात् स्कन्द पुराण।

मत्स्य पुराण के 53 वें अध्याय में, पुराण क्रम में पुराणों के क्रम–अनुसार नाम और उनमें श्लोकों की संख्या कितनी–कितनी है, यह बताया गया है। इस सम्बन्ध में यह तालिका प्रस्तुत है –

क्र.सं.	**पुराण का नाम**	**श्लोक संख्या**	**क्र.सं**	**पुराण का नाम**	**श्लोक संख्या**
1.	ब्रह्मपुराण	13000	10.	ब्रह्मवैवर्त्त पुराण	18000
2.	पद्म पुराण	55000	11.	लिंग पुराण	11000
3.	विष्णु पुराण	23000	12.	वराह पुराण	24000
4.	वायु पुराण	24000	13.	स्कन्द पुराण	81100
5.	भागवत पुराण	18000	14.	वामन पुराण	10000
6.	नारद पुराण	25000	15.	कूर्म पुराण	18000

7.	मार्कण्डेय पुराण	9000	16.	मत्स्य पुराण	14000
8.	अग्नि पुराण	16000	17.	गरुड़ पुराण	18000
9.	भविष्य पुराण	14500	18.	ब्रह्माण्ड पुराण	12200

पुराण कपोल- कल्पित ग्रंथ नहीं हैं।

पुराणों में 8 प्रकार के आख्यानों/उपाख्यानों का वर्णन है-

1. केवल आध्यात्मिक (अध्यात्म से सम्बन्धित)
2. केवल आधिदैविक (प्रकृति/प्राकृतिक तत्त्वों से सम्बन्धित)
3. केवल आधिभौतिक (भूतों/प्राणियों से सम्बन्धित)
4. आध्यात्मिक, आधिभौतिक (अध्यात्म तथा भूत/प्राणि दोनों से सम्बन्धित)
5. आध्यात्मिक आधिदैविक (आध्यात्मिक तथा प्राकृतिक तत्त्वों से सम्बन्धित)
6. आधिदैविक, आधिभौतिक (प्राकृतिक तत्त्व तथा भूत/प्राणि दोनों से सम्बन्धित)
7. आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक (अध्यात्म, प्राकृतिक तत्त्व तथा भूत/प्राणि तीनों से सम्बन्धित)
8. असद्-आख्यान/मिथ्या कल्पित आख्यान (Mythology) - इनमें ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र आदि प्राण देवताओं के रहस्य/विज्ञान को सरलता से समझाने के लिये खगोलीय नक्षत्रों में से किसी को ब्रह्मा, किसी को इन्द्र, किसी को रुद्र, किसी को बृहस्पति आदि मान लिया गया है।

इन मिथक कथाओं के माध्यम से खगोलीय नक्षत्रों का ज्ञान तथा महर्षियों के चरित्र का ज्ञान तो हमें प्राप्त होता ही है, साथ ही साथ प्राकृतिक तत्त्वों (प्राण देवताओं) से सम्बन्धित विज्ञान या रहस्य भी हमें सरलता से समझ में आ जाते है। इसी सन्दर्भ में उदाहरण के रूप में **एक असद्-आख्यान का तात्पर्य यहाँ प्रस्तुत है** - एक बार प्रजापति मृग रूप धारण कर मृगी बनी हुई अपनी पुत्री रोहिणी के पीछे ऐसे भागे जैसे कोई मृग सन्तानोत्पत्ति की कामना से किसी मृगी के पीछे भागता है। यह देखकर डर के मारे वह भी भागी। प्रजापति के इस अनुचित कार्य को देखकर देवताओं ने सोचा कि इन्हें मार देना चाहिये। यह विचार करके वे रुद्र के पास गये और कहा कि आप इन्हें दण्ड दीजिये। रुद्र द्वारा असमर्थता प्रकट करने पर सभी देवताओं ने अपना-अपना तेज एकत्रित करके रुद्र को दे दिया। जिससे बलवान होकर रुद्र ने प्रजापति के मस्तक को त्रिकाण्ड बाण द्वारा काट गिराया।

इस असद्-आख्यान का निर्माण (कृतिका नक्षत्र से पूर्व, लुब्धकबन्धु नक्षत्र से पश्चिम, श्याव एवं शबल नामक दो श्वानों से उत्तर तथा प्रजापति और पुनर्वसु से दक्षिण तक जो) आकाश मण्डल है उसमें स्थित प्रमुख तारों पर प्रजापति आदि देवताओं की कल्पना करके किया गया है।

इस असद्-आख्यान में -

1. कृतिका नक्षत्र के पूर्व में (अथवा यह कहें कि कृतिका के ठीक बाद में) चमकते हुए और लाली लिये हुए जो शकट के (छकड़े के) आकार के पाँच तारे हैं, वही रोहिणी नक्षत्र है और उसी पर प्रजापति की पुत्री रोहिणी की कल्पना की गई है।
2. रोहिणी के पूर्व में (अथवा यह कहें कि रोहिणी के ठीक बाद में) 10-15 तारों का एक समूह है जो कि मस्तक के आकार का प्रतीत होता है, वही मृगशिरा नक्षत्र है और उसी पर प्रजापति के मस्तक की कल्पना की गई है।
3. मृगशिरा नक्षत्र के पास तीन चमकते हुए तारे हैं, इन्हीं पर त्रिकाण्ड बाण की कल्पना की गई है।
4. इन तीन चमकते तारों से पूर्व की ओर थोड़ी दूरी पर एक प्रकाशयुक्त तीव्र तारा है जिसे लुब्धकबन्धु कहते हैं, इसी पर पशुपति रुद्र की कल्पना की गई है।

   इस प्रकार यह आख्यान आकाश मण्डल के प्रदेश विशेष में स्थित तारों (नक्षत्रों) का ज्ञान करवा रहा है।

इस आख्यान में प्रजापति का रोहिणी के पीछे दौड़ने (अनुधावन) से तात्पर्य यह है कि आकाश में नक्षत्र हमें प्रतिदिन पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हुए दिखाई देते हैं। सबसे पहले अश्विनी जाता है उसके बाद भरणी, उसके बाद कृतिका, उसके बाद रोहिणी, और रोहिणी के पीछे मृगशिरा नक्षत्र जाता है। नक्षत्रों के गतिमान दिखाई देने का यह जो क्रम है उस क्रम के आधार पर ही प्रजापति (मृगशिरा) रोहिणी के पीछे दौड़े, यह कहा गया है।

एक प्रश्न - इस आख्यान में रोहिणी (नक्षत्र) को प्रजापति की पुत्री क्यों कहा गया है? इस प्रश्न का समाधान- चूंकि नक्षत्र आदि सारी प्रजा उस प्रजापति से ही उत्पन्न हुई है, इसलिये यह स्पष्ट ही है कि रोहिणी नक्षत्र भी प्रजापति से ही उत्पन्न हुआ है। अर्थात् रोहिणी नक्षत्र प्रजापति की संतान है। लेकिन, चूंकि यह रोहिणी शब्द, स्त्रीलिंग शब्द है अथवा स्त्रीसंज्ञक है इसलिये प्रजापति से इसके उत्पत्ति सम्बन्ध और इसकी स्त्री संज्ञात्मकता को दृष्टिगत रखते हुए ही इस आख्यान में रोहिणी को प्रजापति की पुत्री कहा गया है।

दूसरा प्रश्न – इस आख्यान में मृगशिरा (नक्षत्र) को प्रजापति क्यों कहा गया है? इस प्रश्न का समाधान – यद्यपि मृगशिरा नक्षत्र भी रोहिणी आदि अन्यान्य नक्षत्रों की भाँति प्रजापति से ही उत्पन्न हुआ है लेकिन उसके इस उत्पत्ति सम्बन्ध की अपेक्षा प्रजापति से उसके अंश–अंशी सम्बन्ध की दृष्टि से उसे प्रजापति कहा गया है। अंश–अंशी सम्बन्ध को एक उदाहरण द्वारा समझते हैं। मान लीजिये हम गंगा के सामने खड़े हैं, तो जो हमारे सामने प्रवाहित हो रही है वह तो गंगा है, लेकिन उसमें से अंजलि भर लेने पर जो हाथ में जल होता है वह गंगाजल होता है। यह गंगाजल उस गंगा का ही अंश है, इसलिये गंगा और गंगाजल एक ही हैं। यही गंगा (अंशी) और गंगाजल (अंश) का अंश–अंशी सम्बन्ध है। ईश्वर से उत्पन्न हुए समस्त जीव ईश्वर के ही अंश हैं, तभी तो भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं – ममैवांशो लोके– अर्थात् हे अर्जुन! मुझसे उत्पन्न हुए इन जीवों को तू मेरे ही अंश जान। इसलिये मृगशिरा (नक्षत्र) और प्रजापति के मध्य भी इसी (अंश–अंशी) सम्बन्ध को दृष्टिगत रखते हुए इस आख्यान में मृगशिरा (नक्षत्र) को प्रजापति कहा गया है।

इस असद्–आख्यान में आकाश मण्डल में स्थित तारों की देवताओं के रूप में कल्पना की गई है। उन देवताओं ने अपना–अपना तेज रुद्र (लुब्धकबन्धु) को दिया, इस कथन के माध्यम से आख्यान के निर्माणकर्त्ता यह समझाना चाहते हैं कि जिस प्रकार से अलग–अलग वनस्पतियों में अलग–अलग प्रकार के रस पाये जाते हैं लेकिन गूलर में सभी वनस्पतियों का रस होता है। ठीक उसी प्रकार से अलग–अलग नक्षत्रों में अलग–अलग प्रकार का तेज होता है लेकिन लुब्धकबन्धु में सभी नक्षत्रों का तेज है। इस असद्–आख्यान का रहस्य ऐतरेय ब्राह्मण (3/3/9) में स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है जिसे अविकल रूप से यहाँ उद्धृत किया जा रहा है–

'प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत्–दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये। तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्। तं देवा अपश्यन्नकृतं वै प्रजापतिः करोतीति। ते तमैच्छन् य एनमारिष्यति। एतमन्योन्यस्मिन् नाविन्दन्। तेषां या एव घोरतमास्तन्व आसंस्ता एकधा सममरन्। ताः संभृता एष देवोऽभवत्, तदस्यैतद् भूतवन्नाम इति। तं देवा अब्रुवन्, अयं वै प्रजापतिरकृतमकः, इमं विधयेति। स तथेत्यब्रवीत्। स वै वरं वृणा इति। वृणीष्वेति। स एतमेव वरमवृणीत पशूनामाधिपत्यं तदस्यैतत पशुन्नाम' इति।

तमभ्यायत्याविध्यत्। स विद्ध ऊर्ध्व उद्पतत्। तमेतं मृग इत्याचक्षते। य उ एव मृगव्याधः स उ एव सः। या रोहित् सा रोहिणी। यो एवेषुस्त्रिकाण्डा सो एवेषुस्त्रिकाण्डा। इति।

इस उद्धरण का तात्पर्य यह है कि प्रजापति मृगरूप धारण कर मृगी बनी हुई अपनी पुत्री रोहिणी के पीछे ऐसे भागे जैसे कोई मृग संतानोत्पति की कामना से किसी मृगी के पीछे भागता है। देवताओं ने प्रजापति को उसके अनुचित कार्य के लिये दण्ड देने वाले व्यक्ति की कामना की। परन्तु उन्हें ऐसा व्यक्ति देवताओं में नहीं मिला। तब उन्होंने अपना घोरतम भाग एकत्रित किया जो रुद्र बना। उसका नाम भूतवान अर्थात् भूतपति हुआ। उस भूतपति रुद्र को देवताओं ने कहा - यह प्रजापति अनुचित कार्य कर रहा है इसलिये इस पर प्रहार करो। रुद्र ने कहा ठीक है। किन्तु इसके बदले मैं कुछ वर माँगना चाहता हूँ। देवताओं ने कहा माँगो। उसने यही वर माँगा कि मैं पशुओं का अधिपति बन जाऊँ। इसलिये रुद्र का नाम पशुमान या पशुपति हुआ।

वर मिलने पर पशुपति रुद्र ने प्रजापति के पास आकर उसे बाण से बींध दिया। बाण से विद्ध (कटा हुआ) प्रजापति का ऊर्ध्व भाग अर्थात् मस्तक ऊपर उछला। प्रजापति के उस कटे हुए मस्तक को मृग कहते हैं। अर्थात् वह मृगशिरा नक्षत्र है। जो प्रजापति रूप मृग को मारने वाला रुद्र था वही मृगव्याध नक्षत्र है। जो रक्तवर्ण की मृगी थी वही रोहिणी नक्षत्र है। जिस त्रिकाण्ड बाण से प्रजापति का मस्तक काटा गया था। वही तीन तारों का समूह त्रिकाण्ड नक्षत्र है।

आकाश मण्डल में प्रजापति का वह कटा हुआ मस्तक रूप मृगशिरा नक्षत्र, जिस बाण से काटा गया था वह उस बाण से संलग्न (लगा हुआ ही) दक्षिण की ओर दिखाई देता है और कटे हुए मस्तक वाला प्रजापति उत्तर की ओर दिखाई देता है।

इस प्रकार इस असद्-आख्यान से आकाशमण्डल के भाग विशेष में स्थित नक्षत्रों का ज्ञान भलीभाँति हो जाता है तथा इस आख्यान का रहस्य और इसके निर्माण का रहस्य भी समझ में आ जाता है।

निष्कर्ष - इस सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसे बच्चों को सरलता और शीघ्रता से समझाने के लिये झूठ-मूठ की कहानियाँ बनाई जाती हैं, ठीक उसी प्रकार असद् - आख्यान भी पुराणों की रचना करने वालों द्वारा बनाई गई झूठ-मूठ की कहानियाँ हैं। प्रजापति (ब्रह्मा) का अपनी पुत्री रोहिणी के पीछे संतानोत्पत्ति की कामना से भागना इत्यादि यह सब कल्पना है अर्थात् यह सब उन नक्षत्रों पर कल्पना करके कहा गया है।

आख्यानिकों ने इस असद्-आख्यान को आकाश में स्थित नक्षत्रों से सम्बन्धित माना है। जबकि नैदानिकों (निदान विद्या को जानने वाले विद्वानों) ने इस असद्-आख्यान को उषा तथा उससे उत्पन्न कुमाराग्नि से सम्बन्धित माना है। यह आख्यान 'अनुगम' है। वह आख्यान जिसका सम्बन्ध किसी विशेष देवता आदि से न होकर अनेकों के साथ होता है, उसे अनुगम कहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस आख्यान का सम्बन्ध केवल आकाश में स्थित नक्षत्रों के साथ ही न होकर उषा के साथ भी है। 12 प्रजापतियों में से एक द्यु प्रजापति भी हैं। इनसे उषा उत्पन्न होती है, इसलिये उषा को इनकी पुत्री भी कहा गया है-

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शिव्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ।।

(ऋग्वेद 1/113/7)

ऋग्वेद के इस मंत्र में भी द्युलोक को पिता (प्रजापति) कहा गया है -

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्।।

(ऋग्वेद 1/164/33)

उषा की उत्पति द्यु प्रजापति सूर्य से ही होती है। पहले उषाकाल आता है, बाद में सूर्योदय होता है। इस प्रकार प्रतिदिन प्रातःकाल के समय सूर्य प्रजापति अपनी उषारूपी पुत्री के पीछे ही रहते हैं। यही उषा-रूपी पुत्री के पीछे सूर्य रूप द्यु प्रजापति का अनुधावन (पीछे दौड़ना) है।

इस तथ्य को स्वयं ऋग्वेद का मंत्र बतला रहा है -

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।

(ऋ. 1/115/2)

अर्थात् सूर्य प्रकाशमान उषादेवी का उसी प्रकार पीछा करता है जिस प्रकार मनुष्य स्त्री के पीछे दौड़ता है। उपर्युक्त आख्यान का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड के सप्तम् अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण में किया गया है।

यदि प्रजापति के अपनी पुत्री का अनुधावन करने के कारण ही पुराणों को अश्रद्धेय और अप्रामाणिक माना जाये तो ऋग्वेद के मंत्र में भी इसका निरूपण होने से वेद/संहिता को भी अश्रद्धेय और अप्रामाणिक मानना पड़ेगा।

'पिता यत् स्वां दुहितरमधिष्कन् क्ष्मया रेतः संजग्मानो निषिञ्चत्' (ऋ. 10/6/17)। उपर्युक्त पौराणिक असद्-आख्यान तो उपर्युक्त मंत्र के अर्थ का स्पष्टीकरण ही कर रहा है।

तात्त्विक दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराण वेद मंत्रों के अर्थ के प्रतिपादक हैं और वेदों के गूढ़ रहस्यों को निरूपित और उद्घाटित करते हैं। पुराण वेदार्थ के उपबृंहक उद्घाटक हैं। इतिहास और पुराणों की सहायता से वेदमंत्रों के अर्थ का उपबृंहण (व्याख्या/विस्तार) करना चाहिये। अल्पश्रुत (जिसने कम विद्याध्ययन किया हो और ज्यादा शास्त्र नहीं पढ़े हों) से वेद भी डरते हैं कि यह मुझ पर प्रहार करेगा। इसी अभिप्राय से भगवान् वेदव्यास ने कहा है –

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।

इसलिये पौराणिक असद्–आख्यानों को आधार बनाकर हम पुराणों के प्रति अपनी अश्रद्धा प्रकट करें और उन्हें अप्रामाणिक कहें यह उचित नहीं है। बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि हम उन असद्–आख्यानों को समझने के लिये, उनमें प्रतिपादित रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करें। इस सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराण कपोल–कल्पित ग्रंथ (गप्पोड़–ग्रंथ) नहीं हैं।

वेदवाचस्पति पं. मधुसूदन जी ओझा के अनुसार इतिहास और पुराण कालभेद से विभिन्न हो जाते हैं परन्तु अज्ञान या धृष्टता से उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। जो पुराणों के द्वारा भलीभाँति सम्पूर्ण भूगोल तथा खगोल को और महाभारत के द्वारा इतिहास को जानता है, वही वेदार्थ को जान सकता है। लेकिन जो व्याकरण आदि 6 अंगों तथा उपनिषदों सहित चारों वेदों का अध्ययन कर चुका है और पुराणों को नहीं जानता, वह वेदार्थ को नहीं जान सकता। जिस गूढ़ विज्ञान का वेदों तथा स्मृतियों के द्वारा भी ज्ञान नहीं होता वह पुराणों के द्वारा जाना जाता है। इतिहास (महाभारत) और पुराणों के द्वारा वेदज्ञान को सुदृढ़ बनाया गया है क्योंकि इतिहास और पुराणों में वेद विज्ञान को चरित्रों के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इसको वेददृष्टि ही समझना चाहिये। जो पुराणों के रहस्य को नहीं जानता, उसको वेदार्थ का प्रकाश भी नहीं होता। इसलिये पुराणविद्या का अध्ययन वेदार्थज्ञान के लिये आवश्यक है। वह हेय तथा अनुपादेय नहीं है।

(आ) वाल्मीकि रामायण –

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना।।

अर्थात् वेद जिस परमतत्त्व का वर्णन करते हैं वही परमतत्त्व रामायण में श्रीरामरूप से वर्णित है। वेदों से जानने योग्य उस परमतत्त्व के दशरथनन्दन

श्रीराम के रूप में अवतार लेने पर स्वयं वेद ही महर्षि वाल्मीकि (प्राचेतस–प्रचेता के पुत्र) के मुख से प्रकट हुए। इसलिये महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण की वेद के समान ही प्रतिष्ठा है। महर्षि वाल्मीकि संसार के पहले कवि हैं, इसलिये संसार के समस्त कवियों के गुरु हैं और उनका 'रामायण' नाम का यह काव्य संसार का सबसे पहला काव्य है। विशेषकर भारत के लिये तो यह परम गौरव का ग्रंथ है तथा भारत की बहुमूल्य राष्ट्रीय–निधि है। इसलिये प्रत्येक भारतीय का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह इस महान् ग्रंथ को प्रतिदिन आदर और श्रद्धा सहित थोड़ा अवश्य पढ़े और उस पर मनन करे। ऐसा करने में ही व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का कल्याण सुनिश्चित है। इसका एक–एक अक्षर भारी से भारी पापों का नाश करने वाला है –**एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्।**

तप और स्वाध्याय इन दो शब्दों से वाल्मीकीय रामायण का शुभारम्भ होता है। इसलिये तप और स्वाध्याय के द्वारा अपने ग्रंथ का शुभारम्भ कर महर्षि वाल्मीकि तत्कालीन विश्व के और आगे भी युगों–युगों में जन्म लेने वाले सम्पूर्ण मानवों को तप और स्वाध्याय की महिमा का संदेश देना चाहते हैं।

वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण समस्त काव्यों का बीज है। भगवान् वेदव्यास आदि सभी कवियों ने इसी का अध्ययन कर महाभारत, पुराण आदि का निर्माण किया –

पठ रामायण व्यास काव्यबीजं सनातनम्।

(बृहद्धर्म पुराण, प्रथमखण्ड 30/47,51)

रामायण पाठितं मे प्रसन्नोऽस्मि कृतस्त्वया।
करिष्यामि पुराणानि महाभारतमेव च।। (बृहद्धर्मपुराण 1/30/55)

महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण और महर्षि वेदव्यास रचित महाभारत, ये दोनों ही हमारे प्रमुख इतिहास ग्रंथ हैं। इनमें वर्णित इतिहास आधुनिक ऐतिहासिक शैली में नहीं है। इसलिये आधुनिक इतिहासकार इन्हें इतिहास रूप में स्वीकार नहीं करते हैं, परन्तु हमारी सनातन शास्त्रीय परम्परा में 'इतिहास' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है –

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।। (विष्णुधर्मोत्तर पुराण 3/15/1)

अर्थात् जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–रूपी चारों पुरुषार्थों से सम्बन्धित उपदेशों से समन्वित हो और जो पुराने वृत्तान्तों और कथाओं से युक्त हो–वह इतिहास कहलाता है।

चार वर्ण, चार आश्रम और चार पुरुषार्थ पर टिकी भारतीय संस्कृति की शास्त्रीय परम्परा में 'इतिहास' की इतनी विस्तृत परिभाषा है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष चाहे वह किसी भी वर्ण और आश्रम का हो, वह अपने जीवन में प्रतिदिन ऐसा इतिहास अवश्य पढ़े जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-रूपी चारों पुरुषार्थों से सम्बन्धित उपदेशों से समन्वित हो।

प्रतिदिन इतिहास, पुराण आदि आर्ष ग्रंथों को पढ़ना -यह हमारा नित्यकर्म है। भगवान् मनु ने ब्रह्मयज्ञ आदि 5 महायज्ञों के रूप में इन नित्यकर्मो का विधान किया है। जिसमें से पहला ही नित्यकर्म (महायज्ञ) है- ब्रह्मयज्ञ। ब्रह्मयज्ञ से तात्पर्य है- वेद-वेदाङ्ग तथा इतिहास-पुराण आदि आर्ष ग्रंथों का स्वाध्याय। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को प्रतिदिन इतिहास आदि का अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

लेकिन आधुनिक इतिहासकार तथा अन्य आधुनिक विचारक जिनकी जानकारी में यह नहीं हैं कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक ये चार पुरुषार्थ तत्त्व रूप में क्या हैं और इनका व्यक्तिगत जीवन में तथा पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक दृष्टि से क्या महत्त्व है और इनकी इतिहास की परिभाषा भी भिन्न है, इसलिये वे रामायण और महाभारत आदि को इतिहास ग्रंथ नहीं मानते हैं, लेकिन यदि वे विश्व का कल्याण चाहते हैं तो उन्हें अपनी दृष्टि में सुधार करना ही होगा। विश्वकल्याण को दृष्टि में रखने वाले प्राचीन ऋषियों की दृष्टि में दोष नहीं हो सकता। भगवान् वाल्मीकि ने भी वेदों में पारंगत हो चुके लव और कुश को वेदार्थ का विस्तार से ज्ञान कराने के लिये (वेदोपबृंहणार्थाय) रामायण नामक महाकाव्य का अध्ययन करवाया था। (वा.रा. बालकाण्ड 4/5-7)

भावी भूमिपालों से भगवान् राम की याचना

भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां काले काले पालनीयो भवद्भिः।।
वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्य मापातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमा नराणां धर्मः सदा सुहृदहो न विरोधनीयः।।
चलदलदललीलाचञ्चले जीवलोके तृणलवलघुसारे सर्वसंसारसौख्ये।
अपहरति दुराशः शासनं ब्राह्मणानां नरकगहनगर्तावर्तपातोत्सुको यः।।
(स्कन्दपुराण धर्मारण्य 34/38-40)

- हे भविष्य में होने वाले भूमिपालों (शासकों)! आप मधुर लगने वाले मात्र आपात रमणीय विषयों के भोगी न बनें। (अर्थात् इनके चक्कर में पड़कर

अपने धर्म /कर्त्तव्य को न भूलें), जो कि क्षणभंगुर हैं। यह वसुधा का आधिपत्य भी तो वायु में उड़कर नष्ट होने वाले मेघ के समान है। आप तिनके के अग्रभाग पर स्थित जल की बूंद के समान अस्थिर प्राणों के भी मोह में न पड़ें, क्योंकि चञ्चल जीवलोक में जीवों के शरीर उसी प्रकार से शीघ्रतिशीघ्र गिरते रहते हैं (अर्थात् मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं) जिस प्रकार से पीपल के पत्ते गिरते रहते हैं और संसार के जो सारे सुख हैं वो भी तिनके के समान अत्यन्त तुच्छ हैं, इन बातों को नहीं समझने के कारण भीषण नरकरूपी गड्ढों में बारम्बार गिरने को उत्सुक रहने वाले शासकों का शासन ब्राह्मणों के दुराशीष से शीघ्र ही नष्ट हो जाता है (क्योंकि ''सर्वे भवन्तु सुखिन:'' की प्रभु से प्रार्थना करने वाले ब्राह्मण उन शासकों की मूर्खता और दुष्टता से सारी प्रजा को दु:खी देखकर उनके शासन के शीघ्र नष्ट होने की भगवान् से प्रार्थना करते हैं, तब वे अपने कुकर्मो के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं अर्थात् पद से च्युत हो जाते हैं)। हे भविष्य में होने वाले भूमिपालों! चूंकि पहले भी श्रुति और स्मृति में जिस धर्म का प्रतिपादन हुआ है, उस धर्म का पालन करते हुए बहुत सारे सत्पुरुष भवसागर से पार उतरे हैं अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। इसलिये मनुष्यों को भवसागर से पार उतरने के लिये कर्त्तव्यपालन रूपी जो यह सामान्य धर्मसेतु है, यह आपके द्वारा रक्षणीय है। इसलिये हे भविष्य में होने वाले भूमिपालों! मैं अयोध्या नरेश महाराज दशरथ का पुत्र रामचन्द्र आपके चरणों में बारम्बार प्रणाम करता हूँ और आपसे यह याचना करता हूँ कि मैंने और मेरे से पूर्व होने वाले महान् धर्मपरायण राजाओं ने जिस प्रकार से प्रजा का पालन किया, उसी प्रकार से आप भी अपनी-अपनी प्रजा का पालन करते रहना। इस प्रकार अपने राजधर्म का पालन करते हुए राज्य का संचालन करना तथा श्रुति और स्मृति में प्रतिपादित धर्म का स्वयं भी पालन करना और प्रजा से भी उसका पालन करवाना। इस प्रकार उस धर्म सेतु की रक्षा करना।

भगवान् राम का यह कथन उचित ही है क्योंकि सत्तामद, विषयलोलुपता आदि कारणों से शासक प्राय: कर्त्तव्य की/मर्यादाओं की/धर्म-मर्यादाओं की/धर्मसेतु की धज्जियाँ उड़ाते रहते हैं। इसलिये भगवान् राम भावी भूमिपालकों से यह प्रार्थना करते हैं कि आप पूर्ववर्ती महान् धर्मपरायण शासकों द्वारा धर्म-मर्यादारूपी जो सेतु बांधा गया था, उसे न तोड़ें, वह आपके द्वारा रक्षणीय है।

(इ) महाभारत

महाभारत के प्रणेता महर्षि वेदव्यास ने स्वयं इसे उत्तम इतिहास बताया है–

इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।

पञ्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रयः।। (महाभारत, आदिपर्व 2/385)

–अर्थात् जैसे पाँच भूतों से तीन प्रकार की (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) लोक–सृष्टियाँ प्रकट होती हैं, उसी प्रकार से इस उत्तम इतिहास से काव्य निर्माण सम्बन्धी बुद्धियाँ प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त भगवान् वेदव्यास ब्रह्माजी से कहते हैं – 'ब्रह्मन्! मैंने इस महाकाव्य में सम्पूर्ण वेदों का गुप्ततम रहस्य तथा अन्य सब शास्त्रों का सार–सार संकलित करके स्थापित कर दिया है। केवल वेदों का ही नहीं, उनके अङ्ग (वेदाङ्ग) एवं उपनिषदों का भी इसमें विस्तार से निरुपण किया है।' (महाभारत, आदिपर्व 1/62)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों के उपदेशों से समन्वित पूर्व के वृत्तान्तों और कथाओं से जो युक्त होता है– वह इतिहास कहलाता है

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।

पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।। (विष्णुधर्म. 3/15/1)

इतिहास की इस परिभाषा के अनुसार महाभारत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों के उपदेशों से समन्वित तो है ही, लेकिन असीम बुद्धिवाले भगवान् वेदव्यास ने इसे अर्थशास्त्र कहा है, यह महान् धर्मशास्त्र भी है, इसे काम–शास्त्र भी कहा गया है –

अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत्।

कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना।। (महाभारत, आदिपर्व 2/383)

भगवान् वेदव्यास तो 'महाभारत' नामक इस इतिहास–ग्रंथ की एक अद्वितीय विशेषता बताते हुए यहाँ तक कह देते हैं कि –

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्।। (महाभारत, स्वर्गारोहणपर्व 5/50)

अर्थात् हे भरतश्रेष्ठ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में जो कुछ महाभारत में कहा गया है, वही अन्यत्र (अन्य शास्त्रों में) है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है।

''**धर्मो विवर्धति युधिष्ठिर कीर्तनेन**'' – अर्थात् धर्मराज युधिष्ठिर के चरित्र के अध्ययन से धर्म की वृद्धि होती है और जैसे–जैसे यह गहरा होता जाता है वैसे–वैसे उस व्यक्ति की 'धर्म' के बारे में समझ बढ़ती जाती है और ऐसा होते–होते वह

व्यक्ति जब युधिष्ठिर के चरित्र को समझ लेता है, तो उस स्थिति में पहुँचने पर वह धर्म को भी पूरी तरह से समझ लेता है। भगवान् राम के सन्दर्भ में भी यही बात समझनी चाहिये क्योंकि भगवान् राम तो साक्षात् धर्म की मूर्ति हैं।

आज जो हमें धर्म का ह्रास दिखाई दे रहा है उसके पीछे यही कारण है कि धर्म (कर्त्तव्य) की शिक्षा देने वाले भगवान् राम और धर्मराज युधिष्ठिर का अथवा रामायण और महाभारत का कीर्तन (अध्ययन) घट रहा है।

महाभारत का सार :- य इमां संहितां पुण्यां पुत्रमध्यापयच्छुकम्। (महाभारत स्वर्गारोहण पर्व 5/59-1/2) अर्थात् जिन भगवान् वेदव्यास ने इस पवित्र संहिता को प्रकट करके अपने पुत्र शुकदेवजी को पढ़ाया था, वे ही भगवान् वेदव्यास महाभारत के सारभूत उपदेश का इस प्रकार वर्णन करते हैं -

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे।। (महा.स्वर्गारोहण पर्व 5/60)

-अर्थात् मनुष्य इस जगत् में हजारों माता-पिताओं तथा सैकड़ों स्त्री-पुत्रों के संयोग-वियोग का अनुभव कर चुके हैं, करते हैं और करते रहेंगे।

हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्।। (महा.स्वर्गा.पर्व 5/61)

-अर्थात् अज्ञानी पुरुष को प्रतिदिन हर्ष के हजारों और भय के सैकड़ों अवसर प्राप्त होते रहते हैं, परन्तु विद्वान पुरुष के मन पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते।। (महा.स्वर्गा.पर्व5/62)

-अर्थात् मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार-पुकार कर कह रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता। धर्म से अर्थ और काम सिद्ध होते हैं तो भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते ?

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।। (महा.स्वर्गा. पर्व 5/63)

-अर्थात् कामना से, भय से, लोभ से अथवा प्राण बचाने के लिये भी धर्म का त्याग न करें। धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य, इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है और उसके बन्धन का हेतु अनित्य।

इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति।। (महा.स्वर्गा.पर्व 5/64)

–अर्थात् महाभारत का यह सारभूत उपदेश 'भारत–सावित्री' के नाम से प्रसिद्ध है। जो प्रतिदिन सवेरे उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण महाभारत के अध्ययन का फल पाकर परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

महाभारत के माहात्म्य से सम्बन्ध रखने वाले कुछ श्लोक –

यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता।। (महाभारत माहात्म्य)

–अर्थात् जिसमें भगवान् विष्णु की दिव्य कथाओं का वर्णन है और जिसमें कल्याणमयी श्रुतियों (वेदमंत्रों) का सार दिया गया है, (इसलिये) इस लोक में परम्–पद की इच्छा रखने वाले मनुष्य को महाभारत का श्रवण करना चाहिये।

श्रूयतां सिंहनादोऽयमृषेस्तस्य महात्मनः।
अष्टादशपुराणानां कर्तुर्वेदमहोदधेः।। (महाभारत माहात्म्य)

–अर्थात् अठारह पुराणों के रचयिता और वेद के (ज्ञान के) महान् समुद्र भगवान् वेदव्यास का यह सिंहनाद है कि 'तुम नित्य महाभारत का श्रवण करो।'

भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ।
सम्प्रत्याचक्षते चेदं तथा श्रोष्यन्ति चापरे।। (महाभारत माहात्म्य)

–अर्थात् हे भरतश्रेष्ठ! महाभारत समस्त शास्त्रों का शिरोमणि है, इसी से सम्प्रति विद्वान लोग इसका पठन–श्रवण करते हैं और आगे भी करेंगे।

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चाख्यानमिदं विद्यान्नैव स स्याद् विचक्षणः।। (महाभारत आदिपर्व 2/382)

–अर्थात् जो द्विज अङ्गों और उपनिषदों सहित चारों वेदों को जानता है, परन्तु इस महाभारत इतिहास को नहीं जानता, वह विशिष्ट विद्वान नहीं है।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। (महाभारत आदिपर्व 1/267)

–अर्थात् इतिहास और पुराणों की सहायता से ही वेदों के अर्थ का विस्तार करना चाहिये।

बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति। (महाभारत आदिपर्व 1/268)

अर्थात् जो इतिहास और पुराणों से अनभिज्ञ है, उससे वेद डरते है कि यह मुझ पर प्रहार कर देगा।

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।

अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना
नैवाप्तभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम्।। (महाभारत आदिपर्व 2/391)

–अर्थात् तपस्वी महर्षियों! (महाभारत के पाठकों) आप सदा सांसारिक आसक्तियों से ऊँचे उठें और आप का मन सदा धर्म में लगा रहे, क्योंकि परलोक में गये हुए जीव का बन्धु या सहायक एकमात्र धर्म ही है। विषयों के भोगों में कुशल मनुष्य भी धन और स्त्रियों का सेवन तो करते हैं, परन्तु वे उनकी श्रेष्ठता पर विश्वास नहीं करते और न उन्हें स्थिर ही मानते हैं।

(4) उपवेद

प्रत्येक वेद का एक उपवेद है। **ऋग्वेद का अर्थवेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद** है।

(अ) **अर्थवेद (अर्थशास्त्र) :**– वर्तमान में कौटिल्य (आचार्य चाणक्य) का अर्थशास्त्र इस विषय का सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है। आचार्य कौटिल्य के अनुसार 'अर्थ' शब्द के दो अर्थ हैं – (1) मनुष्यों की आजीविका और (2) वह भूमि जिस पर मनुष्य निवास करते हैं। उस भूमि की प्राप्ति और उसकी रक्षा के उपायों का वर्णन जिस शास्त्र में होता है, उसे अर्थशास्त्र कहते हैं –

मनुष्याणां वृत्तिरर्थः मनुष्यवतीभूमिरित्यर्थः,
तस्याः पृथिव्याः लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति।
(कौटि.अर्थशास्त्र 15, अध्याय 1)

वर्तमान में अर्थशास्त्र शब्द का प्रयोग जिन अर्थों में होता है, उन अर्थों में प्राचीनकाल में नहीं होता था। प्राचीनकाल में अर्थशास्त्र शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होता था। इसीलिये प्राचीनकाल में अर्थशास्त्र के अन्तर्गत मुख्यरूप से दण्डनीति (शासन करने की कला) (POLITICAL SCIENCE) का एवं आनुषांगिक के रूप से इकोनोमिक्स (ECONOMICS) , धर्मशास्त्र (THEOLOGY) और कानून (LAW) का अध्ययन किया जाता था।

कौटिल्य ने अपने ग्रंथ की रचना अपने से पूर्व के अनेक आचार्यों के अर्थशास्त्रों का सार ग्रहण करके की थी। इस संदर्भ में वे लिखते हैं –

पृथिव्याः लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः।
प्रस्थापितानि प्रायशः तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्।।
(कौटिलीय अर्थशास्त्र अधिकरण 1, अध्याय 1)

आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में अपने से पहले होने वाले निम्नलिखित अर्थशास्त्रियों के नामों का तथा उनके द्वारा रचित ग्रंथों में वर्णित उनके मतों का भी उल्लेख किया है : बृहस्पति (विश्व के प्रथम अर्थशास्त्री, महाभारत में महर्षि वेदव्यास इन्हें अर्थशास्त्र के प्रणेता स्वीकार करते हैं) उशनस् (उशना/शुक्राचार्य), मनु, भरद्वाज, पराशर, आम्भ, कोणपदन्त, बहुदन्तीपुत्र, पिशुन, वातव्याधि, विशालाक्ष आदि।

आचार्य कौटिल्य ने अपने ग्रंथ के प्रारम्भ में ''नमः शुक्रबृहस्पतिभ्याम्'' लिखकर बृहस्पति (अर्थशास्त्र के विद्वान और देवताओं के गुरु) के साथ-साथ शुक्राचार्य (अर्थशास्त्र के विद्वान और दैत्यों के गुरु) को भी नमस्कार किया है।

कौटिल्य के बाद में भी अर्थशास्त्र के ग्रंथों के निर्माण की परम्परा चलती रही। इस परम्परा में कामन्दक का कामन्दकीय नीतिसार, नीतिवाक्यामृत, भोज द्वारा रचित नीति-कल्पतरु, नीति रत्नाकर, नीतिप्रकाशिका, राजनीति रत्नाकर, राजनीति मयूख, राजनीति कल्पतरु, राजनीति कामधेनु आदि ग्रंथ अर्थशास्त्र के विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर ईसा की 18 वीं शताब्दी तक लिखे जाते रहे। चाणक्य (कौटिल्य) का अर्थशास्त्र तो प्रसिद्ध है, इसके अतिरिक्त चाणक्य द्वारा रचित ''चाणक्य नीति-दर्पण'' और ''चाणक्यनीति-सूत्र'' भी प्रसिद्ध हैं।

नीति शब्द का अर्थ - पहुँचना, ले जाना, दिग्दर्शन कराना, नेतृत्व करना तथा उपायों को बतलाना। जो उपायों को बतलाये वही नीति है।

नीति की परिभाषा - ''नी'' नामक प्राप्त्यर्थक धातु से नीति शब्द निष्पन्न हुआ है। धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों तथा इन्हें प्राप्त करने के उपायों का निर्देश जिसके द्वारा या जिसमें होता है, उसे नीति कहते हैं। अर्थशास्त्र के साथ नीति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। नीति-हीन व्यक्ति और समाज दोनों नष्ट हो जाते हैं। दण्डनीति की उपेक्षा से वेदों की रक्षा भी सम्भव नहीं हो पाती-**नश्येत त्रयी दण्डनीतौ हतायाम्।** चाणक्यनीति के अतिरिक्त शुक्रनीति, नीतिशतक (भर्तृहरि द्वारा रचित), पञ्चतंत्र, हितोपदेश, कथासरित्सागर आदि नीतिग्रंथ भी प्रसिद्ध हैं।

शुक्रनीति - नीतिशास्त्र का यह अत्यन्त प्रामाणिक ग्रंथ है।

विदुरनीति - महाभारत के उद्योग पर्व के 33 वें से 40 वें तक के जो 8 अध्याय हैं, वे विदुर नीति के नाम से प्रसिद्ध हैं।

पञ्चतंत्र -433 ईस्वी में ईरान में फारसी भाषा में इसका अनुवाद हुआ, बाद में 8 वीं सदी में अरबी में अनुवाद हुआ। इसके बाद तो इसके अनुवादों का ऐसा सिलसिला चला कि इसके यूरोप की सभी भाषाओं में अनुवाद होते गये। 11 वीं

सदी में यूनानी भाषा में अनुवाद हुआ। इसके रूसी और स्लाव भाषा में अनुवाद हुए। डॉ. हर्टेल विश्व की 50 भाषाओं में इसके 200 अनुवादों का उल्लेख करते हैं। विष्णु शर्मा द्वारा रचित यह ग्रंथ संस्कृत साहित्य की अमूल्य – निधि है।

विश्व बाल साहित्य की अनुपम कृति 'ईसप की कहानियाँ' का मूलाधार विश्व के विद्वानों द्वारा पञ्चतंत्र को ही माना गया है। सम्पूर्ण विश्व के लोक साहित्य को पञ्चतंत्र की कहानियों ने ही सूत्र प्रदान किये हैं। ईसप का जन्म ईसा से 620 वर्ष पूर्व माना जाता है। अमरशक्ति नाम के राजा ने अपने 3 मूर्ख पुत्रों से दु:खी होकर उन्हें विष्णु शर्मा को सौंप दिया था। विष्णु शर्मा ने उन्हें कुशल बनाने के लिये ही पञ्चतंत्र की रचना कर 6 महीनों में उन्हें नीति शास्त्र में कुशल बना दिया था। यद्यपि राजनीति के एक से बढ़कर एक ग्रन्थ हैं फिर भी पञ्चतन्त्र जैसा दूसरा कोई भी नहीं है क्योंकि इसमें राजनीति के अंगों (संधि, विग्रह, यान और आसन) के साथ-साथ नीति सम्बन्धी उपदेशों का भी प्रचुर भण्डार है, इसलिये यह एक अद्भुत ग्रंथ है।

हितोपदेश – यह भी नीति विषयक कथाओं का प्रख्यात ग्रंथ है। इसके लेखक नारायण पण्डित हैं। इसकी लगभग आधी कथाएँ पञ्चतंत्र से ली गई हैं। पञ्चतंत्र की तरह ही नीति ज्ञान तथा व्यावहारिक शिक्षा का यह भी एक मुख्य ग्रंथ है।

कथासरित्सागर – सोमदेव द्वारा रचित यह ग्रंथ भी प्रसिद्ध है। इसमें कथाओं के माध्यम से नीति के तत्त्व समझाये गये हैं।

राजतरंगिणी – कल्हण द्वारा रचित यह ग्रंथ भी प्रसिद्ध है। इसमें भी कथाओं के माध्यम से नीति के तत्त्व समझाये गये हैं।

दशकुमारचरित – दण्डी द्वारा रचित यह ग्रंथ भी राजपुत्रों को नीति-ज्ञान प्रदान करने वाला एक साहित्यिक ग्रंथ है।

शुकनासोपदेश – बाणभट्ट की कादम्बरी का शुकनासोपदेश भी बहुत ही विलक्षण है।

नीति मंजरी – आचार्य द्याद्विवेद का यह ग्रंथ नीति साहित्य का सर्वोपरि ग्रंथ है। इसमें ऋग्वेद के दसों मण्डलों से नीति के आख्यानों को छाँटकर संकलित किया गया है। यदि वह आख्यान सायण भाष्य, अनुक्रमणिका, बृहद्देवता तथा निरुक्त अथवा ब्राह्मणग्रंथों में विवेचित हुआ है तो उसे भी साथ में संकलित कर दिया गया है। आचार्य ने प्रत्येक नीति-कथा के तात्पर्य को श्लोकबद्ध कर बड़े ही सरल शब्दों में विवेचित किया है। 15वीं शताब्दी में लिखे गये इस ग्रंथ में 150 से अधिक नीति कथाएँ हैं।

पुरुष-परीक्षा – महाकवि विद्यापति द्वारा रचित दण्डनीति विषयक इस ग्रंथ के 4 प्रयोजन ग्रंथकार ने बताये हैं- (1) कोमलमति के बालकों को नीति शिक्षा देना।

(2) सहृदयजनों को मनोविनोद प्राप्त कराना। (3) राजनैतिक जटिलताओं का उदाहरणों द्वारा स्पष्टीकरण करना तथा (4) वाग्वैदग्ध्य को गुणशाली बनाना। पञ्चतंत्र और हितोपदेश से भिन्न इसमें मानवीय कथाएँ वर्णित हैं। इस ग्रंथ से लोक-व्यवहार का भलीभाँति ज्ञान प्राप्त होता है।

संस्कृत साहित्य में वर्णित नीति के श्लोकों का लोक कवियों ने लोक भाषाओं में कितना सुन्दर अनुवाद किया है। इसका एक उदाहरण हितोपदेश के एक श्लोक से सम्बन्ध रखने वाले दोहे के रूप में दिया जा रहा है-

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।
एकेकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।। (हितोपदेश, प्रस्ताविका 11)

अर्थात् यौवन, धनसम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक- इनमें से एक-एक भी अनर्थ करने वाला है और जिस व्यक्ति में ये चारों हों, उसके विषय में क्या कहना? (प्रभुत्वमविवेकता - प्रभुत्वम् + अविवेकता)

धन जोभन अरू ठाकरी ता पर अविवेक।
ए चारूं भैळा हुवे अनर्थ करे अनेक।।

(जोभन -यौवन, अरू - और, ठाकरी - प्रभुत्व/पॉवर/सत्ता/पद, चारूं -चार, ता पर - उस पर, भेळा- इकट्ठा, हुवे - हो जायें)

1915 में जब डॉ. शामशास्त्री के अथक प्रयासों से कौटिलीय अर्थशास्त्र का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ, तब भारतीयों को असभ्य समझने वाले योरोपीय विद्वानों में हलचल मच गई। बाद में फ्लीट, जौली, विंसेट स्मिथ आदि विद्वानों ने इस ग्रंथ की बहुत सराहना की।

प्रो. विनयकुमार सरकार ने **''सेक्रेड बुक्स ऑफ हिन्दू सीरीज''** में **शुक्रनीति** का भी अंग्रेजी में अनुवाद करके प्रकाशित करवाया।

कर्मचारियों के संदर्भ में शुक्रनीतिकार के विचार -

1. **बीमार कर्मचारियों का वेतन**- शुक्रनीति में बीमार कर्मचारियों/सेवकों को वेतन देने के निर्देश दिये गये हैं। (शुक्रनीति 2/151-153)

2. **पेन्शन** - 40 वर्ष सेवा करने वाले कर्मचारियों को राजा (नियोजक) द्वारा आजीवन आधा वेतन पैन्शन के रूप में दिया जाये। यही नहीं, उसके बच्चों को योग्य न होने तक पैन्शन का आधा और उसकी पत्नी और अविवाहित कन्या को भी पैन्शन का आधा रुपया मिले। इसी अभिप्राय से शुक्राचार्य कहते हैं -

चत्वारिंशत्समा नीताः सेवया येन वैनृपः।
ततः सेवा विना तस्मै भृत्यर्धं कल्पयेत्सदा।। (शुक्रनीति 2/154)

यावज्जीवं तु तत्पुत्रेऽक्षमे बाले तदधकम्।

भार्यायां वा सुशीलायां कन्यायां वा स्वश्रेयशे।। (शुक्रनीति 2/155)

3. **मृत राज्यकर्मचारी के पुत्र को नियुक्ति** – कर्मचारी की मृत्यु होने पर उसके पुत्र अपने पिता के वेतन को प्राप्त करें और जब उनमें से कोई पुत्र बड़ा होकर योग्य हो जाये तब उसे योग्यतानुसार नियुक्ति देकर यथोचित वेतन दिया जाये। इसी अभिप्राय से शुक्राचार्य कहते है –

स्वामिकार्ये विनष्टो यस्तत्पुत्रे तद् भृतिं वहेत्।

यावद्बालो न्यथा पुत्रगणान्दृष्ट्वा भृतिं वहेत्।। (शुक्रनीति 2/156)

4. **बोनस** – प्रत्येक कर्मचारी को प्रतिवर्ष उसके वेतन के आठवें हिस्से के बराबर पारितोषिक (बोनस) दिया जाये। (**अष्टमांश पारितोष्य दद्यादुभृत्याय वत्सरे**)।

5. **अधिक कार्यकुशल कर्मचारी को अतिरिक्त पारितोषिक** – कुशलतापूर्वक अधिक कार्य करने वाले कर्मचारी को उसके कार्य से हुई आय का आठवाँ हिस्सा उसे पारितोषिक के रूप में देकर उसके समर्पण का अवश्य सम्मान किया जाना चाहिये। (**कार्याष्टमांशं वा दद्यात् कार्य द्रागधिकं कृतम्)।**

6. **चोरी गई सम्पत्ति का भुगतान राजकोष से** – यदि राजा चोर को पकड़ कर उससे चुराई गई वस्तुओं को या उनका मूल्य वसूलकर वस्तुओं के स्वामी को न दिला सके तो यह राजा का कर्त्तव्य होगा कि वह राजकोष से चोरी गई वस्तुओं का मूल्य स्वामी को भुगतान करे। राजा इस प्रकार किये गये भुगतान की वसूली उस अधिकारी से करने का हकदार है, जो चोर को पकड़ने में लापरवाह रहा है। (याज्ञवल्क्य स्मृति 2/3)

देयं चौरद्हृतं द्रव्यं राज्ञाजानपदायतु।

अद्ददद्धि समाप्नोति किल्विषं यस्य तस्यतत्।। (याज्ञवल्क्य स्मृति 2/3)

तथा –

यदात्वन्यतोड पदहृतं द्रव्यं दापयितुं न शक्नोति।

तदास्वकोषादेव राजादद्यात् चौरद्हृतमवजित्य।

यथास्थानं गमयेत् स्वकोषाद्वा दद्यादिति गौतम स्मरणात्।।

7. **उपभोक्ता-संरक्षण के सम्बन्ध में नारद के निर्देश** – यदि विक्रेता ने ग्राहक को दोषरहित सामान दिखाकर धोखे की नीयत से दोषयुक्त सामान दे दिया हो तो क्रेता मुआवजा प्राप्त करने का अधिकारी है, जो कि उसके द्वारा दिये गये क्रयमूल्य से दोगुना तक हो सकता है। परन्तु विक्रेता ने दोषयुक्त सामान जानबूझकर नहीं दिया हो तो केवल क्रय रद्द करते हुए क्रेता अपना धन वापस ले सकेगा।

इसी अभिप्राय से नारद कहते हैं –

निर्दोषं दर्शयित्वा तु सदोषं यः प्रयच्छति।
समूल्याद्विगुणं दाप्यो विनयं तावदेक्तु।।
अबुद्धिपूर्वकं विक्रयतु क्रय परावर्तनमेव।

(आ) धनुर्वेद

युद्ध शस्त्रास्त्रकुशलो रचनाकुशलो भवेत्।
यजुर्वेदोपवेदोऽयं धनुर्वेदस्तु येन सः।। (शुक्रनीति 4/22)

अर्थात् जिसके ज्ञान से मनुष्य युद्ध, शस्त्र, व्यूहरचना आदि में निपुणता प्राप्त करता है, उसे यजुर्वेद का उपवेद 'धनुर्वेद' कहते हैं।

महर्षि वैशम्पायन द्वारा रचित धनुर्वेद में अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण तथा प्रयोग का वर्णन है। इस विषय से सम्बन्ध रखने वाले अन्य ग्रंथ भी उपलब्ध हैं – वृद्धशार्ङ्गधर, युक्तिकल्पतरु, समरांगण-सूत्रधार आदि। महर्षि भरद्वाज के 'यंत्र सर्वस्व' नामक ग्रंथ के 40 वें अधिकरण में आकाश में उड़ने वाले विमानों के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ के पहले प्रकरण में 25 ग्रंथों की सूची दी है, जिनमें से प्रमुख हैं- अगस्त्यकृत शक्ति सूत्र, ईश्वरकृत सौदामिनी कला, भरद्वाजकृत अंशुबोधिनी, यंत्रसर्वस्व तथा आकाशशास्त्र, शाकटायनकृत वायुतत्त्व प्रकरण, नारदकृत वैश्वानरतंत्र, धूमप्रकरण आदि। इस ग्रंथ में उन्होंने अपने से पूर्व हुए विमानशास्त्र के आचार्यो तथा उनके ग्रंथों का भी उल्लेख किया है, जो निम्नानुसार हैं –

1. नारायणकृत- विमानचन्द्रिका, 2. शौनककृत- व्योमयानतंत्र, 3. गर्गकृत- यन्त्रकल्प, 4. वाचस्पतिकृत- यानबिन्दु, 5. चाक्रायणीकृत- खेटयान प्रदीपिका, 6. घुण्डीनाथकृत – व्योमयानार्क प्रकाश।

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में विमानों के निर्माण की तथा उनके शास्त्रों की एक परम्परा रही है तथा वेदों, पुराणों और रामायण एवं महाभारत नामक इतिहास ग्रंथों में जो युद्धों में, आकाश में उड़ने वाले विमानों के उल्लेख मिलते हैं, वे भी काल्पनिक नहीं हैं।

धनुर्वेद के विषय में अधिक विस्तार में न जाते हुए भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम के एक अनुभव का उल्लेख किया जा रहा है, जिसके सम्बन्ध में वे प्रमाण सहित लिखते हैं कि विश्व में रॉकेट का सर्वप्रथम प्रयोग टीपू सुल्तान की सेना द्वारा अंग्रेजों के साथ हुए युद्ध में किया गया। इस सम्बन्ध में वे यह भी लिखते हैं कि – 'हम कुछ नहीं जानते उन महान् इंजीनियरों के बारे में, जिन्होंने टीपू की सेना के लिये रॉकेट बनाया'।

डॉ. कलाम के इस कथन के साथ हम यह भी जोड़ना चाहते हैं कि 'हम यह भी नहीं जानते कि टीपू सुल्तान के उन महान् इंजीनियरों ने धनुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाले किन प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन कर रॉकेटों का निर्माण किया था।'

निस्सन्देह ये ग्रंथ उपेक्षणीय नहीं हैं। आवश्यकता है कि युद्ध-विषयक इस शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले अन्यान्य ग्रंथों के प्रति सम्मानजनक दृष्टि रखी जाये और विशेषज्ञों द्वारा वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता पर विचार किया जाये।

(इ) गान्धर्ववेद

गान्धर्ववेद का नाट्य, नृत्य, गायन और वादन (अभिनय, नाचने, गाने और बजाने/Acting, Dancing, Singing and Music) आदि से सम्बन्ध है। नृत्य और गायन से सम्बन्ध रखने वाले उपलब्ध प्राचीन ग्रंथों में प्रमुख हैं- भरतमुनि का भरतनाट्यशास्त्र, शार्ङ्गदेव का संगीत रत्नाकर आदि।

भगवान् राम वेद-वेदाङ्गों के तो ज्ञाता थे ही (**साङ्गवेदवित्**। वा.रा. 2/2/34), साथ ही साथ में धनुर्वेद नामक उपवेद के विद्वानों में भी श्रेष्ठ गिने जाते थे (**धनुर्वेदविदांश्रेष्ठो**। वा.रा.1/1/29), इसीलिये वे त्रिलोकविजेता रावण को युद्ध में पराजित कर सके। उन जैसा शस्त्रधारी आज तक पैदा नहीं हुआ, इसीलिये भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं- मैं शस्त्रधारियों में राम हूँ (**रामः शस्त्रभृतामहम्।** गीता 10/30)। इसके अतिरिक्त उनके राज्याभिषेक का प्रस्ताव जब अनेक राजाओं और विद्वान सभासदों के सामने महाराज दशरथ ने रखा था, तब उन्होंने कहा था कि मेरे ज्येष्ठ पुत्र राम गान्धर्ववेद नामक उपवेद में भी अर्थात् संगीतशास्त्र में भी इस भूतल पर सबसे श्रेष्ठ हैं-

गान्धर्वे च भुवि श्रेष्ठो बभूवो भरताग्रज। (वा.रा. 2/2/35)

भरतमुनि का भरतनाट्यशास्त्र - यह काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ है। इसमें नाटक, नृत्य और संगीत आदि सभी विषयों का विवेचन किया गया है। इसके प्रथम अध्याय में नाटक तथा नाट्यवेद की उत्पत्ति का वर्णन है।

नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में संयम से जीने वाले और विशाल बुद्धि वाले भरतमुनि से आत्रेय आदि द्वारा नाट्यशास्त्र के निर्माण से सम्बन्धित प्रश्न पूछने पर वे उन प्रश्नों के उत्तर देते हुए कहते हैं कि जब यह संसार सुख और दु:ख के प्रवाह में पड़ गया था तथा काम और क्रोध के वशीभूत हो गया था, सभी लोग देव, दानव, गन्धर्व,यक्ष और राक्षस आदि की पूजा में लग गये थे और जब सारी मानव जाति में परब्रह्म को जानने की, आत्मज्ञान की प्राप्ति की चिन्ता मिट

गई थी; उस समय विश्व के सम्पूर्ण मानवों की वृत्ति को ईश्वराभिमुख करने के लिये इन्द्र आदि देवताओं ने ब्रह्मा से मनोविनोद के साधन गान्धर्ववेद (नाट्यवेद) की रचना के लिये प्रार्थना की। तब ब्रह्मा ने चारों वेदों से सन्दर्भित सामग्री लेकर आगम और निगम से युक्त नाट्यशास्त्ररूपी पञ्चम वेद को बनाया।

भरतमुनि से पहले और बाद में होने वाले नाट्यशास्त्र के अनेक विद्वानों के उल्लेख या उद्धरण तो नाट्यशास्त्र के अनेक ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं, परन्तु उनके ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं, वे आचार्य हैं –कोहल, दत्तिल, शालिकर्ण (शातकर्ण), बादरायण (बादरि), नखकुट्ट और अश्मकुट्ट आदि। अर्थात् स्पष्ट है कि ब्रह्मा से लेकर भरतमुनि तक और उनके बाद भी भारत में अंग्रेजों के आगमन के आस-पास तक भी नाट्यशास्त्र के आचार्यों की परम्परा चलती रही और उनके द्वारा नाट्यशास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले ग्रंथ लिखे जाते रहे।

वर्तमान काल के विद्वानों का मानना है कि वर्तमान नाट्यशास्त्र एक काल की रचना नहीं हैं बल्कि शताब्दियों के साहित्यिक प्रयास का फल है और नाट्यशास्त्र का वर्तमान रूप अनेक परम्परा-प्राप्त विद्याओं का समन्वित रूप है और उसके मूल में भरतमुनि द्वारा समन्वित किया गया नाट्यशास्त्र ही है।

नाट्यशास्त्र के व्याख्याकार – नाट्यशास्त्र के ग्रंथों से ही यह प्रतीत होता है कि नाट्यशास्त्र पर श्री हर्ष का कोई वार्तिक भी था। सुबन्धु का भी आचार्य के रूप में उल्लेख है। नान्यदेव/ नान्यपति भी भरत-भाष्य के कर्त्ता के रूप में याद किये जाते हैं। शार्ङ्गदेव के सङ्गीत-रत्नाकर में नाट्यशास्त्र के व्याख्याकारों के रूप में लोल्लट, उद्भट, शंकु, अभिनवगुप्त और कीर्तिधर का उल्लेख है। अभिनवगुप्त ने भट्टनायक का भी उल्लेख किया है जिनका हृदयदर्पण नामक ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। वर्तमान में अभिनवगुप्त की अभिनवभारती नामक टीका ही उपलब्ध है जिसे 'नाट्यवेदविवृत्ति' भी कहा जाता है।

नाट्यशास्त्र पर लिखे गये स्वतंत्र ग्रंथ – धनञ्जय का दशरूपक, नन्दीकेश्वर के अभिनयदर्पण, नन्दीश्वरसंहिता, नाट्यार्णव/भरतार्णव प्रसिद्ध हैं। सागरनन्दी का नाटकलक्षणरत्न कोष, रामचन्द्र-गुणचन्द्र का नाट्यदर्पण, शारदातनय का भावप्रकाश, शिङ्गभूपाल की नाटकपरिभाषा, रूपगोस्वामी की नाटकचन्द्रिका, सुन्दरमिश्र का नाट्यप्रदीप, त्र्यम्बक का नाटकदीप, रुप्यक की नाटकमीमांसा, पुण्डरीक का नाटकलक्षण और त्रिलोचनादित्य का नाट्यालोचन आदि।

काव्यशास्त्र के वे ग्रंथ जिनमें नाट्य-सम्बन्धी विवेचन हैं – भोजराज के श्रृङ्गारप्रकाश तथा सरस्वतीकण्ठाभरण, हेमचन्द्रसूरि का काव्यानुशासन, विद्यानाथ का प्रतापरुद्रयशोभूषण और विश्वनाथ का साहित्यदर्पण आदि।

नाट्यशास्त्र के आचार्य भरत के अनुसार नाट्य नामक पञ्चमवेद में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सम्बन्ध रखने वाली बातों के साथ–साथ शान्ति, युद्ध, क्रीड़ा और हास्य के द्वारा मनोरञ्जन (Entertainment) का भी समावेश रहता है।

भरतमुनि के अनुसार नाट्यवेद का निर्माण केवल धर्मात्मा या ज्ञानियों के लिये ही नहीं किया गया है, बल्कि इसमें कामुकों के लिये कामसेवन, दुर्विनीतों (दुष्टों/गुण्डों) के निग्रह (नियंत्रण) के उपाय तथा शूरवीरों (बहादुर व्यक्तियों/पुलिसवालों/फौजियों) के लिये पराक्रम बढ़ाने वाली सामग्री भी होती है। इसमें क्लीवों (हिंजड़ों/नपुंसकों) के लिये क्लीवत्व की, मूर्खों की मूर्खता की, विद्वानों की विद्वता की चर्चा भी समायी हुई होती है। इन सबके अतिरिक्त इसमें धनिकों के लिये विलास, अर्थलिप्सुओं (धन कमाने की इच्छा रखने वालों के लिये) अर्थोपलब्धि के उपाय, दु:खी लोगों के लिये दु:ख से छुटकारे के उपाय भी समाये हुए होते हैं। इस प्रकार गान्धर्ववेद में भिन्न–भिन्न विषयों का समावेश एक साथ रहता है। इसीलिये नाट्य में भिन्न–भिन्न प्रकृति वाले लोग अपने–अपने भावों, अपनी–अपनी रुचियों, अपनी–अपनी समस्याओं और अपनी–अपनी अवस्थाओं का पूरा–पूरा चित्र अपनी आँखों से देखकर आनन्दित होते हैं।

महामुनि आचार्य भरत के अनुसार गान्धर्ववेद में सभी प्रकार के मनुष्यों का अनुकरण होने के कारण नाटक में सभी प्रकार का ज्ञान, शिल्प, विद्याएँ, कलाएँ और शास्त्र समन्वित रहते हैं। यह वेद–विद्या है, इतिहास है और इसमें श्रुति, स्मृति, सदाचार तथा सबको विनोद प्रदान करने के साधन भी समाये हुए हैं। स्वयं भरतमुनि के समय में और उनसे बहुत पहले ही नट **(हीरो)** नटी **(हिरोइन)** नृत्य (**डान्स)** वाद्य और वाद्ययन्त्र (**म्यूजिक एण्ड म्युजिकल इन्स्ट्रुमेण्ट्स**) संगीत (Singing and songs), संवाद (**डायलॉग**) कथावस्तु (**स्टोरी**) और रंगमंच (**थियेटर**) आदि अस्तित्व में आ चुके थे अर्थात् आजकल यह जो कुछ नाटकों और फिल्मों आदि के रूप में हम देख रहे हैं, वह सब कुछ हजारों वर्ष पहले ही अस्तित्व में आ चुका था। भरत मुनि के समय तक और उससे बहुत पहले से ही विस्तार से चिन्तन और मनन भी हो चुका था।

मनोरंजन के साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थों की सिद्धि को जोड़कर इसे गान्धर्ववेद की नींव में रखा गया और इसी नींव पर गान्धर्व शास्त्र की रचना की गई। मनोरञ्जन के साथ चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति को जोड़ देना, निस्सन्देह बुद्धिमानी की पराकाष्ठा है।

दुर्भाग्य से आज हमने इस शास्त्र से मुँह मोड़कर मनोरञ्जन के लिए टी. वी. सीरियल्स और फिल्मों में पाश्चात्य जगत् का अन्धानुकरण करते जा रहे हैं– आर्ष–परम्परा की दृष्टि से या तो हम मूर्खता कर रहे हैं या फिर हम किसी षड्यन्त्र का शिकार होते जा रहे हैं क्योंकि जिस मनोरञ्जन के साथ चारों पुरुषार्थों का सम्बन्ध न हो, वह मनोरञ्जन भारतीय दृष्टि से हेय और अनर्थकारी है तथा आर्ष परम्परा से सम्पूर्ण विश्व के मानव समाज को दूर धकेलता चला जा रहा है। समय रहते हुए यदि मनीषी नहीं चेते तो सम्पूर्ण विश्व के मानव समुदाय को इसके गम्भीर परिणाम भुगतने होंगे। क्या उन्हें विनाश की दस्तक सुनाई नहीं दे रही है? हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि बहुत पहले से मनोरञ्जन का क्षेत्र भी एक उद्योग (इण्डस्ट्री) का रूप ले चुका है। यह बात छुपी हुई नहीं है कि मनोरञ्जन के इस उद्योग में निवेश करने वाले धन–कुबेर और सारी धरती पर राज करने के सपने देखने वाले लोभी शासकगण दोनों मिलकर अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये मनोरञ्जन को एक हथियार के रूप में काम में ले रहे हैं। यह षड्यन्त्र नहीं तो क्या है? मनोरञ्जन के माध्यम से आधुनिकता के नाम पर सम्पूर्ण विश्व की प्रजा के आचार और विचार में इस प्रकार के परिवर्तन किये जायें, जिनसे उन धन–कुबेरों और लोभी पृथ्वीपालों के उद्देश्यों की पूर्ति होती रहे। स्वार्थो से सने उनके अपवित्र उद्देश्यों से विश्व में शान्ति और कल्याण की कामना कैसे की जा सकती है? सृष्टि के प्रारम्भ से ही सभ्य मानव जिस दिशा में सोच रहा है वही दिशा, वही दृष्टि ही तो आर्ष–दृष्टि है। सम्पूर्ण वैदिक और वेदमूलक साहित्य की रचना इसी आर्ष दृष्टि के आधार पर ही हुई है जिसकी प्रतिध्वनि भरतमुनि और उनसे भी पहले होने वाले नाट्यशास्त्र के विद्वानों के द्वारा गन्धर्ववेद में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थों को मनोरञ्जन के साथ जोड़ने के रूप में सुनाई दे रही है।

(ई) आयुर्वेद

आर्ष–साहित्य में मानव जीवन में धर्म को सर्वोपरि स्थान दिया गया है क्योंकि धर्मपालन से ही अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है। धर्मपालन का साधन शरीर है, इसीलिये कहा गया –

शरीरमाद्यं (शरीरम्–आद्यम्) खलु धर्मसाधनम्। (महाकवि कालिदास, कुमारसम्भव)

आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य भावमिश्र लिखते हैं – **रोग** धर्म, अर्थ काम और मोक्ष नामक पुरुषार्थों की प्राप्ति में महाविघ्न–स्वरुप हैं–

धर्म-अर्थ-अखिलकाम-मुक्तिषु महाविघ्नस्वरूपा।

चारों पुरुषार्थों के मूल में तो आरोग्य ही है क्योंकि यदि व्यक्ति का शरीर स्वस्थ नहीं होगा तो न तो वह धर्म का पालन कर सकेगा, न ही उसे अर्थ की प्राप्ति हो सकेगी, न ही वह भलीभाँति काम का सेवन कर सकेगा और न ही मोक्ष के लिये कोई उपाय कर सकेगा। इन चारों पुरुषार्थों अर्थात् मानवीय जीवन के चार प्रधान लक्ष्यों की पूर्ति के लिये व्यक्ति का आरोग्यवान होना परम आवश्यक है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ चरकसंहिता में महर्षि चरक कहते हैं-

धर्म-अर्थ-काम-मोक्षाणाम्-आरोग्यं मूलम्-उत्तमम्। (च.सं.सू. 1/15)

क्या विश्व की कोई भी चिकित्सा पद्धति स्वस्थ रहने की आवश्यकता का प्रतिपादन इतने व्यापक रूप में करती है? इस विवेचन के माध्यम से आयुर्वेद विश्व के वर्तमान, भूत और भविष्य, तीनों कालों में जन्म लेने वाली सभी मानव-पीढ़ियों से यह प्रश्न पूछ रहा है कि क्या आप विषय-भोग के लिये स्वस्थ रहना चाहते हैं अथवा चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिये? इस प्रश्न के उत्तर में ही विश्व की सारी बीमारियों का इलाज और समस्याओं का समाधान छुपा है। सत्य तो यह है कि आयुर्वेद केवल चिकित्सा पद्धति ही नहीं है, बल्कि वह सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिये एक समग्र मानवीय जीवन-पद्धति है।

आयुर्वेद का इतिहास :- आयुर्वेद की विषय-वस्तु चारों वेदों में प्राप्त होती है, परन्तु इसकी सबसे अधिक साम्यता अथर्ववेद से होने के कारण आचार्य सुश्रुत ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपाङ्ग (सु.सू. 1/6) एवं वाग्भट ने अथर्ववेद का उपवेद (अ.हृ.सू. 8/9) कहा है। महर्षि चरक ने भी इसकी सर्वाधिक घनिष्ठता अथर्ववेद से बताई है। यद्यपि चरणव्यूह और महाभारत (सभापर्व 11/33 पर नीलकण्ठ की व्याख्या) में इसे ऋग्वेद का उपवेद कहा गया है। काश्यपसंहिता (आयुर्वेद का शिशु रोग से सम्बन्धित ग्रंथ) एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण में इसे पञ्चमवेद भी कहा गया है।

अथर्ववेद की 9 शाखाओं में से एक चारणवैद्य नामक शाखा, जो अब उपलब्ध नहीं है, उससे आयुर्वेद का सर्वाधिक सम्बन्ध है। वर्तमान में आयुर्वेद की सर्वाधिक प्राचीन संहिताओं में से चरक संहिता और सुश्रुत संहिता पूर्णतः उपलब्ध हैं, परन्तु काश्यप संहिता, हारीतसंहिता आदि खण्डित अवस्था में हैं।

चरक संहिता के अनुसार आयुर्वेद का ज्ञान ब्रह्मा ने दक्ष प्रजापति को, दक्ष प्रजापति ने दोनों अश्विनीकुमारों को, अश्विनीकुमारों ने इन्द्र को और इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति के पुत्र महर्षि भरद्वाज को दिया। चरकसंहिता में वर्णन आता है

कि ऋषिगणों ने लोककल्याण के लिये महर्षि भरद्वाज को अपने प्रतिनिधि के रूप में आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त के लिये देवराज इन्द्र के पास भेजा था। भरद्वाज ने पृथ्वीलोक पर वापस आकर वह ज्ञान अन्य ऋषि-मुनियों को दिया था। इस प्रकार महर्षि भरद्वाज पृथ्वीलोक में आयुर्वेद के सर्वप्रथम अध्येता थे।

महर्षि भरद्वाज से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया आत्रेय पुनर्वसु ने। आत्रेय पुनर्वसु शतपथ ब्राह्मण और ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेखित गान्धार नरेश नग्नजित के राजवैद्य थे। इन्हीं महर्षि आत्रेय के 6 शिष्य थे- अग्निवेश, जतूकर्ण, भेल, पराशर, हारीत और क्षारपाणि। इस प्रकार गुरु-शिष्य की परम्परा से आयुर्वेद का ज्ञान चरक को प्राप्त हुआ। चरक तक आते-आते आयुर्वेद का वह सम्पूर्ण ज्ञान महर्षि चरक के कल्याणकारी उपदेशों के रूप में 'चरक संहिता' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

सुश्रुत संहिता के अनुसार 'ब्रह्मा ने अथर्ववेद के उपाङ्ग स्वरूप आयुर्वेद को 1 लाख श्लोकों में ग्रथित किया था, जिसमें 1 हजार अध्याय थे' (सु.सं.सू. 1/6)।

यद्यपि वर्तमान में ब्रह्मसंहिता नामक आयुर्वेद संहिता उपलब्ध नहीं है, परन्तु इस संहिता के 16 से भी अधिक योग आयुर्वेद ग्रंथों में प्राप्त हैं। उनमें से 3 योग हैं- 1. चन्द्रप्रभावटी 2. ब्राह्मी तैल और 3. ब्राह्मी रसायन।

ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति ने और उनसे अश्विनीकुमारों ने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया था। वायुपुराण (49) के अनुसार 'अश्विनीकुमारों ने क्षीरसागर स्थित 'चन्द्रपर्वत' (मानसरोवर के पास गुर्लामान्धाता नामक पर्वत) पर उत्तम प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न करने तथा यथासमय उपयोग करने का शुभ कार्य किया था।' अश्विनीकुमारों द्वारा रचित आयुर्वेद का कोई ग्रंथ वर्तमान में उपलब्ध नहीं है, लेकिन आश्विनसंहिता, चिकित्सासारतंत्र, अश्विनीकुमार-संहिता आदि ग्रंथों का उल्लेख अन्य ग्रंथों में मिलता है।

अश्विनीकुमारों ने ही देवराज इन्द्र को आयुर्वेद का ज्ञान प्रदान किया था। स्वयं इन्द्र ने ऐन्द्रियरसायन, सर्वतोभद्र, दशमूलादितैल, हरीतक्यवलेह आदि योगों का निर्माण किया था।

देवराज इन्द्र ने आयुर्वेद का ज्ञान महर्षि भृगु, महर्षि अंगिरा, महर्षि अत्रि, महर्षि वसिष्ठ, महर्षि अगस्त्य, महर्षि पुलस्त्य, मुनि वामदेव, मुनि गौतम, मुनि असित आदि 10 महापुरुषों को प्रदान किया था। महर्षि कश्यप द्वारा रचित काश्यप संहिता ही वृद्धजीवकीय तंत्र नाम से प्रसिद्ध है। महर्षि अगस्त्य का ग्रंथ द्वैधनिर्णय-तंत्र और मुनि वामदेव का आयुर्वेद-संहिता नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है।

महर्षि आत्रेय पुनर्वसु के 6 शिष्यों में से अग्निवेश ने अग्निवेशतंत्र, भेल ने भेलसंहिता, पराशर ने पराशरसंहिता, जतूकर्ण ने जतूकर्ण-काय-चिकित्सा, हारीत ने हारीत-आयुर्वेद-संहिता और क्षारपाणि ने क्षारपाणि-कायचिकित्सातंत्र नामक ग्रंथ की रचना की।

देवराज इन्द्र के शिष्य निमि ने शालाक्यतंत्र नामक ग्रंथ की रचना की। इन्हीं निमि के शिष्य कराल ने कराल तंत्र में नेत्र रोग के 96 प्रकार वर्णित किये हैं। कराल का उल्लेख चरक संहिता के 'अक्षिरोग प्रकरण' में है।

इस सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट है कि महर्षि चरक ने अपने से पहले होने वाले आयुर्वेद के समस्त आचार्यों के ग्रंथों में वर्णित आयुर्वेद के सारे ज्ञान का अपनी चरक संहिता में समन्वय किया। चरक संहिता में 8 स्थान, 120 अध्याय और 12 हजार श्लोक हैं।

चरक संहिता की प्रसिद्ध टीकाएँ - भट्टार हरिश्चंद्रकृत न्यास, जेज्जटप्रणीत पदव्याख्या, चक्रपाणिरचित आयुर्वेददीपिका, शिवदाससेनप्रसूत तत्वप्रदीपिका, कविराज गंगाधरकृत जल्पकल्पतरु तथा योगीन्द्रनाथसेन द्वारा आविर्भूत चरकोपस्कार व्याख्या। इनके अतिरिक्त अनेक प्रामाणिक हिन्दी व्याख्याएँ भी सुलभ हैं।

सुश्रुतसंहिता के अनुसार भी आयुर्वेद का ज्ञान ब्रह्मा से दक्षप्रजापति को, दक्षप्रजापति से अश्विनीकुमारों को और अश्विनीकुमारों से इन्द्र को प्राप्त हुआ। इन्द्र से धन्वन्तरि को प्राप्त हुआ। दो धन्वन्तरि प्रसिद्ध हैं। पहले धन्वन्तरि जो भगवान् विष्णु के अवतार के रूप में समुद्र-मंथन के समय अमृत से भरा कलश लिये हुए प्रकट हुए थे। इसी अमृत से उन्होंने देवताओं को अजर (वृद्धावस्था से रहित) अमर (मृत्यु से रहित) और निरामय (सभी रोगों से मुक्त) बना दिया था। दूसरे धन्वन्तरि काशी के राजा धन्व के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए थे। सुश्रुत संहिता में यही काशीराज के पुत्र धन्वन्तरि कहते हैं 'देवताओं की वृद्धावस्था, रोग तथा मृत्यु को दूर करने वाला आदिदेव धन्वन्तरि अर्थात् समुद्रमंथन के समय प्रकट होने वाला धन्वन्तरि मैं ही हूँ। आयुर्वेद के अन्य अंगों सहित शल्यतंत्र का उपदेश करने के लिये फिर से इस पृथ्वी पर आया हूँ।'' (सु.सं.सू. 1/21)

इन्हीं काशिराज के पुत्र धन्वंतरि से ही महर्षि सुश्रुत ने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया था। सुश्रुत संहिता में यह भी उल्लेख है कि सुश्रुत महर्षि विश्वामित्र के पुत्र थे और इन्होंने धन्वन्तरि से शल्यशास्त्र (सर्जरी) की शिक्षा ग्रहण की थी।

पृथ्वीलोक पर धन्वन्तरि ही सर्वप्रथम शल्यतंत्र को लाये थे। धन्वन्तरि से सुश्रुत ने शल्यतंत्र का ज्ञान प्राप्त कर सुश्रुतसंहिता नामक ग्रंथ की रचना की।

सुश्रुत त्वचारोपण-तंत्र (प्लास्टिक सर्जरी) और आँखों के मोतियाबिन्द को निकालने के विशेषज्ञ थे। सुश्रुत संहिता के अनुसार सुश्रुत के अतिरिक्त धन्वन्तरि के 6 अन्य विद्वान शिष्य थे- औपधेनव, वैतरण, औरभ्र, पौष्कलावत, करवीर्य, गोपुररक्षित। इन्होंने भी आयुर्वेद के ग्रंथों की रचना की। ब्रह्मा, दक्षप्रजापति, अश्विनीकुमार, इन्द्र और धन्वन्तरि से होता हुआ सुश्रुत तक जो शल्यचिकित्सा (सर्जरी) का ज्ञान पहुँचा था, उसका महर्षि सुश्रुत ने अपनी सुश्रुतसंहिता में समन्वय किया।

चरक संहिता और **सुश्रुतसंहिता** के अतिरिक्त आचार्य वाग्भट का **अष्टाङ्गहृदय**- ये तीनों ग्रंथ आयुर्वेद जगत् में **बृहत्त्रयी** के नाम से प्रसिद्ध हैं। अष्टाङ्गहृदय पर जितनी टीकाएँ हुई हैं, उतनी सम्भवतः आयुर्वेद के किसी अन्य ग्रंथ पर नहीं हुईं। अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद भी हुए हैं।

आचार्य माधव का **माधवनिदान**, भावमिश्र का **भावप्रकाश** और नाड़ीशास्त्र के ज्ञाता शार्ङ्गधर की **शार्ङ्गधरसंहिता और शार्ङ्गधरपद्धति**, आयुर्वेद की **लघुत्रयी** में माधव, भावमिश्र और शार्ङ्गधर के ग्रंथों का समावेश है।

आयुर्वेद के आठ अंग - धन्वन्तरि ने आयुर्वेद को आठ भागों में बाँट दिया- शल्य चिकित्सा, शालाक्य चिकित्सा (ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा), काय चिकित्सा, बाल चिकित्सा, ग्रह चिकित्सा, दंष्ट्र चिकित्सा, जरा चिकित्सा, वृष चिकित्सा।

1. **शल्य चिकित्सा (Surgery)** - छोटी या बड़ी सभी प्रकार की शल्यक्रियाओं (ऑपरेशन्स) का वर्णन इसमें किया गया है। काशिराज के पुत्र धन्वन्तरि ने शल्यशास्त्र का बहुत प्रचार किया। इनके द्वारा रचित ग्रंथ थे- सन्निपात कलिका, धातुकल्प, रोगनिदान, वैद्यचिन्तामणि और धन्वन्तरि - निघण्टु आदि। वर्तमान काल के सभी शल्य चिकित्सक बड़े ही आदर के साथ सुश्रुत को **विश्व का प्रथम शल्य चिकित्सक** स्वीकार करते हैं।

2. **शालाक्य/ऊर्ध्वांग चिकित्सा** (Ophthalmology, Dentistry etc.) - ग्रीवा/गर्दन से ऊपर के भाग की आंतरिक चिकित्सा का वर्णन इस में किया गया है। सिर, आँख, दाँत, कान (Ear), नाक (Nose), और गला (Throat) आदि के रोगों में **शलाका द्वारा किये जाने वाले कर्म** को **शालाक्य** कहते हैं। शालाक्य में ऊर्ध्व-जत्रु रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया गया है। ऊर्ध्व -जत्रु रोग से तात्पर्य है धड़ से ऊपर के रोग। (जत्रु = धड़)

शालाक्य चिकित्सा का ज्ञान इन्द्र से भरद्वाज और धन्वन्तरि ने प्राप्त किया। काङ्कायन, विदेह, निमि, गार्ग्य, गालव, भद्र, शौनक, कृष्णात्रेय, कराल,

सात्यकि आदि ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। इन सभी ने अपने-अपने नाम से ग्रंथ लिखे। वे हैं - विदेहतंत्र, काङ्कायनतंत्र, निमितंत्र, गार्ग्यतंत्र, गालवतंत्र, सात्यकितंत्र, शौनकतंत्र, करालतंत्र, चाक्षुष्यतंत्र और कृष्णात्रेयतंत्र। परन्तु वर्तमान में ये सब ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। बाह्लिक देश (अफगानिस्तान) के निवासी काङ्कायन शालाक्य तंत्र के प्रसिद्ध ज्ञाता थे। इनके अनेक शिष्य थे। देवराज इन्द्र के शिष्य निमि ने शालाक्यतंत्र नामक ग्रंथ की रचना की थी। निमि के शिष्य कराल ने करालतंत्र में 96 प्रकार के नेत्ररोगों का वर्णन किया है।

3. **काय चिकित्सा (Medicine)** - इसमें शरीर में होने वाले विभिन्न रोगों की चिकित्सा का वर्णन है।

4. **विष चिकित्सा (Toxicology)** - सर्प, बिच्छू आदि के विष और अन्य विषों की चिकित्सा के उपायों का वर्णन इसमें किया गया है।

5. **ग्रह चिकित्सा/भूतविद्या (Psychiatry)** - इसमें यक्ष, पिशाच, असुर आदि के आवेश से दूषित चित्त वाले एवं उन्मत्त (मानसिक रोगियों) की चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

6. **बाल चिकित्सा/शिशुरोग चिकित्सा (Paediatrics)** - इसमें बाल रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया गया है। काश्यपसंहिता में मुख्य रूप से शिशुरोगों की ही चिकित्सा का वर्णन है।

7. **जरा (वृद्धावस्था) चिकित्सा /रसायन (Science of Rejuvenation/ Immunology)** - जो तरुण अवस्था को बचाये रखे अथवा सभी व्याधियों के निवारण की सामर्थ्य जिसमें हो उसे रसायन कहते हैं। इसमें आयुष्य और बल आदि को बढ़ाने वाले तथा जरा (वृद्धावस्था) और व्याधियों को दूर करने वाले रसायनों का वर्णन किया गया है।

8. **यौन चिकित्सा/वृष चिकित्सा/वाजीकरण (Science of Aphrodisiac)**- यौन सम्बन्धी समस्याओं तथा स्त्रियों और पुरुषों के बाँझपन को दूर करने की चिकित्सा का वर्णन इसमें किया गया है।

इस सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट है कि हजारों वर्ष पुरानी इस महान् परम्परा को षड्यन्त्रपूर्वक वर्तमान में हाशिये पर धकेल दिया गया है। क्या यह विचारणीय नहीं है?

(उ) निबन्ध-ग्रंथ

वेदों के गूढ़ अर्थ को मनुस्मृति आदि स्मृतियों, विभिन्न पुराणों और रामायण तथा महाभारत जैसे इतिहास-ग्रन्थों में सरल शब्दों में स्पष्ट किया गया है।

श्रुतियों, स्मृतियों, पुराणों और रामायण–महाभारत आदि इतिहास–ग्रंथों में कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के सम्बन्ध में मिलने वाले वचनों में कहीं–कहीं विरोधाभास लगता है। इसके निवारण तथा विभिन्न ग्रंथों में प्रतिपादित विषयों का एक ही स्थान पर संकलन करने की दृष्टि से निबन्ध –ग्रंथ लिखने की परम्परा का शुभारम्भ हुआ।

निबन्ध ग्रंथों का महत्त्व यह है कि इनमें जिस विषय के सम्बन्ध में हम जानना चाहें, उसके सम्बन्ध में श्रुति–स्मृति–पुराण–इतिहास आदि ग्रंथों में क्या कहा गया है, वह एक स्थान पर ही देखने को मिल जाता है। ये विषय हैं– व्रत, दान, आचार, तीर्थयात्रा, श्राद्ध, प्रायश्चित आदि। विभिन्न विषयों से सम्बन्धित वचनों का संकलन तथा उनका निरापद निर्णय प्रस्तुत करना ही निबन्ध–ग्रंथों का उद्देश्य है। इसी कारण से विद्वत्–जगत में इन ग्रंथों का विशेष महत्त्व है।

काशिराज दिवोदास द्वारा विरचित ''दिवोदासीय'' को प्रथम निबन्धग्रंथ कहा जा सकता है। ''पृथ्वीचन्द्रोदय'' नामक प्राचीन ग्रंथ जो कि वर्तमान में उपलब्ध नहीं है, उसके वचन ''निर्णय– सिन्धु'' नामक निबन्धग्रंथ के विभिन्न प्रकरणों में प्राप्त होते हैं।

निबन्ध–ग्रंथों के लेखन की परम्परा राजा–महाराजाओं के संरक्षण में विद्वानों के सहयोग से चलती रही। विजयनगर के महाराज हरिहर और बुक्का के यहाँ तन्त्र, मन्त्र, आयुर्वेद, वेद–भाष्य के अतिरिक्त सुभाषितों का भी संग्रह निबन्ध–ग्रंथों के रूप में हुआ, जिनमें तीर्थसुधानिधि, श्राद्धसुधा – निधि, व्रतसुधानिधि, सुभाषितसुधानिधि तथा आयुर्वेदसुधानिधि आदि निबन्धग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहाँ कुछ निबन्धकारों और निबन्धग्रंथों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है –

1. **कृत्यकल्पतरु** – धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रंथों की परम्परा में यह अत्यन्त प्राचीन निबन्धग्रंथ है। इसके रचयिता पं. लक्ष्मीधर कान्यकुब्ज नरेश गोविन्दचन्द्र के महामंत्री थे। प्रसिद्ध निबन्धकार हेमाद्रि इनकी विद्वता से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने इन्हें 'भगवान्' पद से सम्बोधित किया है।

2. **स्मृतिचन्द्रिका** – देवण्ण भट्ट के इस प्राचीन ग्रंथ में संस्कार, आह्निक कृत्य (दैनिक कृत्य), व्यवहार, श्राद्ध एवं अशौच–विषयक संग्रह है। इसमें अपरार्क, देवस्वामी, धर्मदीप, मेधातिथि, विज्ञानेश्वर और विश्वरूप आदि प्राचीन निबन्धकारों के मतों का भी संग्रह हुआ है।

3. **धर्मरत्न** – इस वृहद् ग्रंथ के कालविवेक, व्यवहारमातृका तथा दायभाग नामक तीन भाग तीन ग्रंथों के रूप में प्रकाशित हैं। दायभाग पैतृक सम्पति के बँटवारे से सम्बन्धित है। धन के बँटवारे के कानून का यह प्रामाणिक ग्रंथ है।

4. **हारलता एवं पितृदायिता** – अनिरुद्ध नामक प्राचीन निबन्धकार द्वारा रचित इन दोनों ग्रंथों में श्राद्ध सम्बन्धी बातों के अतिरिक्त आचार सम्बन्धी विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। अनिरुद्ध बङ्गाल के राजा के गुरु थे।

5. **दानसागर** – अनिरुद्ध के शिष्य बल्लाल सेन की इस प्रसिद्ध रचना में सोलह महादानों के साथ –साथ दान सम्बन्धी सभी बातें संगृहीत हैं। इनके द्वारा आचारसागर, प्रतिष्ठासागर और अद्‌भुतसागर की रचना के संकेत मिलते हैं।

6. **स्मृत्यर्थसार** – श्रीधर द्वारा रचित यह ग्रंथ आचार, अशौच और प्रायश्चित्त नामक 3 प्रकरणों में विभक्त है।

7. **चतुर्वर्गचिन्तामणि** – हेमाद्रि के इस विशाल ग्रंथ की इतनी प्रसिद्धि हुई कि उनका यह ग्रंथ 'हेमाद्रि' नाम से ही प्रसिद्ध हो गया। हेमाद्रि देवगिरि के यादवराज महादेव के मन्त्री थे और आगे चलकर रामचन्द्र के भी मुख्य अमात्य रहे। श्रावणी तथा विवाह आदि विशेष अवसरों पर पढ़ा जाने वाला इनका संकल्प बड़ा प्रसिद्ध है। हेमाद्रि का यह ग्रंथ धार्मिक कृत्यों और धार्मिक निर्णयों का विश्वकोश ही है। इस महाग्रंथ के व्रत, दान, तीर्थ, मोक्ष और परिशेष नामक 5 खण्डों में से तीर्थ और मोक्ष नामक दो खण्ड उपलब्ध नहीं हैं।

(क) **व्रतखण्ड** – इसमें बड़े–बड़े 32 अध्याय हैं। इसमें व्रत–सम्बन्धी वचन जिस ग्रंथ से उद्धृत हैं, उसका उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है। इसके प्रारम्भ में व्रत को धर्म का अंङ्गभूत बताकर 'धर्म–तत्त्व' का विस्तार से निरूपण किया गया है। धर्म की परिभाषा, उसका महत्त्व, उसका स्वरूप तथा धर्म का पालन ही श्रेयस्कर है– इत्यादि विषयों पर श्रुतियों, स्मृतियों, पुराणों और रामायण तथा महाभारत आदि ग्रंथों के सैकड़ों वचनों का संग्रह है। तत्पश्चात् व्रततत्त्व, व्रत की परिभाषा और विभिन्न तिथि–व्रत, वार–व्रत आदि के वर्णन के अलावा शान्ति एवं पौष्टिक कर्मों के अनुष्ठान की विधि भी वर्णित है। इसे व्रतों का कोश भी कहा जा सकता है।

(ख) **दानखण्ड** – इसमें 13 अध्याय हैं। इसमें दान की परिभाषा, दान के प्रकार– तुलादान, 10 महादान, 16 महादान, गौदान, ग्रन्थदान आदि के सम्बन्ध में वचनों का संग्रह है।

(ग) **परिशेषखण्ड** – यह खण्ड भी चार खण्डों में विभक्त था : (अ) देवता (ब) कालनिर्णय (स) कर्मविपाक तथा (द) लक्षण–समुच्चय।

कालनिर्णय – इसमें 17 अध्याय हैं। नित्य–नैमित्तिक कर्म एवं काम्य कर्म तथा व्रत–उपवास आदि अन्य कर्म भी नियत समय पर करने पर पूर्ण फलदायी होते

हैं। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए इस भाग में विभिन्न धार्मिक कृत्यों के करने का उचित समय बताया गया है। किस मास में, किस तिथि में, किस नक्षत्र में, किस मुहूर्त में कौनसा कार्य करणीय है– इनका इस भाग में वर्णन है। तिथिनिर्णय, मलमासनिर्णय, जन्माष्टमी–रामनवमी–एकादशी और शिवरात्रि आदि व्रतों के काल का निर्णय, सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण के काल का निर्णय–आदि का इसमें वर्णन है।

श्राद्धकल्प – इसमें बड़े–बड़े 25 अध्याय हैं, जिनमें श्राद्धसम्बन्धी सभी बातों का सूक्ष्मतापूर्वक वर्णन किया गया है।

(घ) **प्रायश्चित खण्ड** – इसमें सभी प्रकार के पापों के प्रायश्चित की विधियों का संग्रह हुआ है।

हेमाद्रि–विरचित चतुर्वर्गचिन्तामणि नामक ग्रंथ धर्मशास्त्रीय विषयों का महाकोश है। इस ग्रंथ के निर्माण के मूल में यही भावना रही है कि आस्तिक प्रजा धर्मशास्त्रों के व्यापक स्वरूप को जानकर अपने दैनिक जीवन को धर्म की मर्यादा में व्यवस्थित कर सके।

8. **आचार्य सायण और माधव के धर्मशास्त्रीय ग्रंथ**–आचार्य सायण के बड़े भाई माधव (माधवाचार्य) विद्यारण्य स्वामी के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। माधवाचार्य विजयनगर और श्रीनगर (कश्मीर) राज्य के संस्थापक रहे हैं। उन्होंने ही विजयनगर के राजसिंहासन पर महाराज बुक्क को स्थापित किया। आचार्य सायण, महाराज बुक्क और महाराज हरिहर के प्रधान अमात्य भी रहे। वेदों के भाष्यकर्त्ता के रूप में आचार्य सायण अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। आचार्य माधव के धर्म शास्त्रीय ग्रंथ हैं – (1) पुरुषार्थसुधानिधि (2) दत्तकमीमांसा (3) स्मृतिसंग्रह (4) कुरुक्षेत्र महात्म्य (5) पराशर स्मृ85
त का भाष्य– पराशरमाधवीय (6) कालनिर्णय/ काल माधवीय।

9. **श्रीदत्त उपाध्याय** – इनके द्वारा रचित ग्रंथ निम्नलिखित हैं–

(अ) **आचारादर्श** – इसमें आह्निक (दैनिक) धार्मिक कृत्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पर दामोदर की ''आचारादर्श–बोधिनी'' नामक टीका भी है।

(ब) **समयप्रदीप** – इसमें व्रतों के समय का विवेचन है।

(स) **पितृभक्ति** – यह श्राद्धकर्म से सम्बन्धित ग्रंथ है।

इसके अतिरिक्त सामवेदियों के लिये इन्होंने छान्दोगाह्निक और श्राद्धकल्प नामक ग्रंथ भी लिखे।

10. **चण्डेश्वर** – इन्होंने स्मृतिरत्नाकर नामक एक विस्तृत धर्मशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की। मिथिला के हिन्दू व्यवहारों (कानूनों) में इनका 'विवादरत्नाकर' एक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। चण्डेश्वर स्वयं राज्यमंत्री थे, इनका 'राजनीति रत्नाकर' भी बहुत प्रसिद्ध गंथ है।

11. **स्मृतिविवेक** – शूलपाणि ने इसकी रचना की। शूलपाणि ने याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका 'दीपकलिका' भी लिखी। स्मृतिविवेक में एकादशीविवेक, तिथिविवेक, दत्तविवेक, प्रायश्चितविवेक, कालविवेक, शुद्धिविवेक, श्राद्धविवेक आदि अनेक विवेक सम्मिलित हैं। इनमें से श्राद्धविवेक अत्यन्त प्रसिद्ध है।

12. **मदनपारिजात** – प्राचीन निबन्धग्रंथों में इस ग्रंथ का अपना विशेष महत्त्व है। यह विशाल ग्रंथ विश्वेश्वर भट्ट द्वारा प्रणीत बताया जाता है।

13. **नृसिंह प्रसाद** – यह ग्रंथ धर्मशास्त्र का विश्वकोश माना जाता है। इसे दलपतिराज की रचना कहा गया है। विद्वज्जगत में इसकी बहुत प्रतिष्ठा रही है।

14. **मदनरत्न** – इसकी हस्तलिखित प्रतियों से ज्ञात होता है कि यह एक वृहद् निबन्ध ग्रंथ है।

15. **स्मृतितत्त्व** – धर्मशास्त्र सम्बन्धी 28 प्रकरणों वाले इस वृहदग्रंथ को धर्मशास्त्र का विश्वकोश माना जाता है। रघुनन्दन ने इसके अतिरिक्त गयाश्राद्धपद्धति का भी निर्माण किया।

16. **स्मृतिसार** – हरिनाथ द्वारा रचित यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है।

17. **रुद्रधर** – इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की जिनमें शुद्धिविवेक, श्राद्धविवेक और वर्षकृत्य प्रमुख हैं। वर्षकृत्य में वर्ष भर में सम्पन्न होने वाले कृत्यों का वर्णन किया गया है।

18. **विवादचन्द्र** – मिसरू मिश्र इस ग्रंथ के लेखक थे। यह व्यवहार और दाय सम्बन्धी मुख्य ग्रंथ है।

19. **वाचस्पति मिश्र** – इनके आचारचिन्तामणि, आह्निकचिन्तामणि, शुद्धिचिन्तामणि, कृत्यचिन्तामणि, तीर्थचिन्तामणि आदि 11 चिन्तामणि उपाधि वाले ग्रंथों का संकेत मिलता है। व्यवहारों (कानूनों) के निर्णय में इनका व्यवहारचिन्तामणि नामक ग्रंथ बहुत ही प्रसिद्ध है। कृत्य, आचार, विवाद, व्यवहार, दान, शुद्धि एवं पितृयज्ञ–महार्णव नामक 7 महार्णव–ग्रंथों का भी निर्माण किया।

20. **गोविन्दानन्द (कवि कङ्कणाचार्य)** – इन्होंने दानकौमुदी, क्रियाकौमुदी, वर्षकृत्यकौमुदी, शुद्धिकौमुदी तथा गोविन्दानन्दीय धर्मशास्त्र नामक ग्रंथों की रचना

की। वर्षकृत्यकौमुदी में वर्ष भर के तिथि-निर्णय, व्रत-उपवास तथा उत्सव एवं पूजा विधियों का वर्णन है। इनका दानकौमुदी नामक ग्रंथ विशेष महत्त्व का है। इन्होंने शूलपाणि के प्रायश्चितविवेक पर 'तत्त्वकौमुदी' नामक वैदूष्यपूर्ण टीका भी लिखी। इनकी लेखनशैली बड़ी ही मधुर एवं चमत्कृत करने वाली है।

21. **टोडरमल्ल** - ये मुगल सम्राट अकबर के वित्तमंत्री थे। इन्होंने ''टोडरानन्द'' नामक एक धर्म -शास्त्रीय निबन्धग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में कानून, ज्योतिष एवं औषधि सम्बन्धी बातें विस्तार से आई हैं।

22. **नन्दपण्डित** - इन्होंने अनेक निबन्ध लिखे जिनमें से द त्तकमीमांसा की विशेष प्रसिद्धि है। यह गोद लेने सम्बन्धी कानूनों का मुख्य ग्रंथ है। विष्णुस्मृति पर इनकी अत्यन्त प्रसिद्ध टीका है जो ''केशव-वैजयन्ती'' या वैजयन्ती नाम से प्रसिद्ध है। इसे उन्होंने अपने आश्रयदाता राजा केशवनायक के अनुरोध पर लिखा था। इसी प्रकार पराशरस्मृति की ''विद्वन्मनोहरा'' नामक इनकी टीका भी बहुत प्रसिद्ध है। याज्ञवल्क्यस्मृति पर विज्ञानेश्वर की प्रसिद्ध टीका मिताक्षरा पर इन्होंने भाष्य लिखा, जो प्रतिमाक्षरा नाम से प्रसिद्ध है। इनके श्राद्धकल्पलता, श्राद्धमीमांसा, नवरात्रप्रदीप, शुद्धिचन्द्रिका, माधवानन्दकाव्य, स्मृतिसिन्धु, हरिवंशविलास आदि अनेक ग्रंथ हैं।

23. **नारायण भट्ट** - इनके धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में त्रिस्थलीसेतु, प्रयोगरत्न, अंत्येष्टिपद्धति, रुद्रपद्धति विशेष प्रसिद्ध हैं। त्रिस्थलीसेतु में प्रयाग, काशी और गया- इन तीन तीर्थो की महिमा तथा तीर्थ स्नान आदि का विस्तार से वर्णन है। प्रयोगरत्न में सोलह संस्कारों के विधि- विधानों का वर्णन है तथा अंत्येष्टिपद्धति में प्रेतसंस्कार और श्राद्ध आदि का वर्णन है।

इनके एक पुत्र रामकृष्ण भट्ट ने तन्त्रवार्तिकव्याख्या और जीवित्पितृकनिर्णय नामक दो ग्रंथ लिखे और दूसरे पुत्र शंकरभट्ट ने द्वैतनिर्णय नामक ग्रंथ लिखा।

रामकृष्ण भट्ट के पुत्र दिनकर भट्ट ने भट्टदिनकरमीमांसा, उद्योत तथा शान्तिसार नामक ग्रंथों की रचना की। इनके पुत्र विश्वेश्वर भट्ट (गागा भट्ट) के भी अनेक ग्रंथ हैं। नारायण भट्ट के पौत्र और रामकृष्ण भट्ट के पुत्र कमलाकर भट्ट ने निर्णयसिन्धु नामक धर्मशास्त्रीय निर्णय-ग्रंथ लिखा, जो अत्यन्त प्रसिद्ध है। इन्होंने शान्तिकमलाकर और पूर्तकमलाकर आदि ग्रंथ लिखे।

24. **भगवन्तभास्कर (स्मृतिभास्कर)** - यह नारायण भट्ट के पौत्र और शंकर भट्ट के पुत्र नीलकण्ठ भट्ट की प्रसिद्ध रचना है। क्षत्रियकुलभूषण महाराज भगवन्तदेव का आश्रय इन्हें प्राप्त था। महाराज स्वयं विद्वान थे और

विद्वानों का आदर करते थे। राजा ने काशी में जब इन्हें सादर आमंत्रित किया था तब राजा स्वयं वेश बदलकर इनकी पालकी ढोने वालों के साथ लग गये थे। ये मीमांसकों के कुल में उत्पन्न हुए थे, इसलिये इन्होंने धर्मशास्त्र में भी मीमांसा–रीति का बड़ा ही सफल प्रयोग किया है।

धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रंथों में इस ग्रंथ का विशेष महत्त्व है। यह ग्रंथ एक–एक विषय को लेकर 12 प्रकरणों में विभक्त है। वे 12 प्रकरण हैं –
(1) संस्कारमयूख (2) आचारमयूख (3) समय –मयूख (4) श्राद्धमयूख
(5) नीतिमयूख (6) व्यवहारमयूख (7) दानमयूख (8) उत्सर्गमयूख
(9) प्रतिष्ठामयूख (10) प्रायश्चितमयूख (11) शुद्धिमयूख (12) शान्तिमयूख।

जैसा कि ग्रंथ के प्रकरणों के नाम से स्पष्ट है, प्रत्येक प्रकरण में उस–उस विषय का वर्णन है। इन में स्मृति एवं पुराणों के वचनों का भी संग्रह है।
संस्कारमयूख में गर्भाधान आदि संस्कारों का वर्णन है।
आचारमयूख में आचार सम्बन्धी बातों तथा नित्यकर्मों का वर्णन है। प्रात:जागरण, मूत्रपुरीषोत्सर्ग विधि, शौचविधि, आचमनविधि, दन्तधावन, पवित्री–लक्षण, कुश–प्रशस्ति, स्नान, स्नान के भेद,गौण–स्नान, तिलक, सन्ध्यावन्दन, गायत्रीजप, काम्यजप, होम– पञ्चमहायज्ञ, वैश्वदेव, देवपूजा, भोजनविधि, भोजनोत्तरकृत्य, शयनविधि तथा स्वप्न के फल आदि विषय वर्णित हैं।
समयमयूख में प्रत्येक मास की तिथियों एवं व्रतों का वर्णन है तथा अन्त में कलिवर्ज्यप्रकरण है। **श्राद्धमयूख** में भिन्न–भिन्न श्राद्धों की विधि है और श्राद्धसम्बन्धी सभी जानने योग्य बातों की विवेचना है।
नीतिमयूख में राजनीति एवं राजधर्म तथा राज्य एवं राज्याङ्गों का सूक्ष्म वर्णन हुआ है।
व्यवहारमयूख विशेष महत्त्व का है, इसमें हिन्दू–कानून विशेष रूप से वर्णित है। कानून आदि की जानकारी के लिये न्यायालय में इसका प्रचुर उपयोग है और इसे विशेष प्रामाणिकता प्राप्त है। **दानमयूख** में दानतत्त्व और दानभेदों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। यह अन्य मयूखों से कुछ बड़ा भी है। **उत्सर्गमयूख** अन्य मयूखों से छोटा है, परन्तु महत्त्व इसका अधिक है। इसमें पूर्तधर्म का विवेचन है। परोपकार की दृष्टि से निर्माण कराये गये वापी (बावड़ी), कूप (कुँआ), तड़ाग (तालाब), उद्यान, देवालय, गोचर–भूमि आदि को जनहित के लिये संकल्पपूर्वक उत्सर्ग (त्याग) करने की विधि इसमें वर्णित है। जलाशय–निर्माण के बाद जल–उत्सर्ग के समय की गई एक प्रार्थना इसमें संगृहीत है–

सर्वभूतेभ्य उत्सृष्टं मयैतज्जलमुज्झितम्।

रमन्तां सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः।।
सामान्यं सर्वभूतेभ्यो मया दत्तमिदं जलम्।
रमन्तां सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः।।

सभी प्राणियों के कल्याण के लिये मैंने इस जलाशय का निर्माण करवाया है और इस जलाशय से जल ग्रहण करने के सभी अधिकारी हैं। इस दृष्टि से मैं संकल्प -पूर्वक इसे जनहित के लिये समर्पित कर रहा हूँ। सभी प्राणी स्नान, पान और अवगाहन (डुबकी लगाना) आदि के द्वारा इससे आनन्द प्राप्त करें।

प्रतिष्ठामयूख में देवालय, प्रासाद तथा अनेक प्रकार की देव प्रतिमाओं की चल एवं अचल प्राण -प्रतिष्ठा तथा जीर्णोद्धार आदि की विधि वर्णित है।

प्रायश्चितमयूख में विस्तार से प्रायश्चित विधान बताया गया है। विहित कर्म (करने योग्य कर्म) के अनुष्ठान न करने से तथा निषिद्ध कर्म (न करने योग्य कर्म) के करने से जो पाप लगता है, उस पाप की निवृत्ति (शुद्धि) के लिये जो कर्म किया जाना अपेक्षित है – वह प्रायश्चित कहलाता है–

विहिताननुष्ठाननिषिद्धसेवननिमित्ते विहितं कर्म प्रायश्चितम्।

शुद्धिमयूख में शुद्धितत्त्व एवं अशुद्धितत्त्व का मीमांसाशैली में बड़ी ही सूक्ष्म रीति से विवेचन हुआ है। सामान्यतः शरीर की अशुद्धि एवं द्रव्य (पदार्थ/धन) की अशुद्धि से विहित कर्म की योग्यता प्राप्त नहीं होती, इसलिये सब प्रकार से शुद्धि एवं पवित्रता परम आवश्यक है। इस ग्रंथ में स्वर्ण आदि पात्रशुद्धि, वस्त्रशुद्धि, धान्य आदि शुद्धि, द्रव्य-शुद्धि, भू-शुद्धि, गर्भस्रावजन्य अशौच, जननाशौच, अनुपनीत-अशौच, सापिण्ड्य-अशौच, प्रेतकार्य, दशाह-अशौच, नवश्राद्ध और वृषोत्सर्ग आदि की व्यवस्था विवेचित है।

शान्तिमयूख में शान्ति और पौष्टिक कर्मो एवं आथर्वण शान्तिकल्प के विषयों का तथा दुर्निमित्तों का वर्णन है। जैसे विनायक शान्ति, नवग्रह शान्ति, ऋतु शान्ति, गोमुख-प्रसव विधि, दुष्ट-तिथि -शान्ति, मूल शान्ति, बालग्रह तथा बालारिष्ट शान्ति, अग्नि एवं वायु-प्रकोप-शान्ति, दिव्य-भौम-आन्तरिक्ष्य-उत्पात-शान्ति, राष्ट्र- शान्ति तथा अन्त में महाशान्ति का वर्णन है। इन शान्ति एवं पौष्टिक कर्मो के करने से सभी दुर्निमित्त शान्त हो जाते हैं और पुष्टि प्राप्त होती है।

25. **वीरमित्रोदय** – धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रंथों में इस ग्रंथ का सर्वाधिक महत्त्व है। इसकी रचना करने वाले पं. मित्र मिश्र ओरछा नरेश श्री वीरसिंह देव की राजसभा की शोभा बढ़ाते थे। राजा के अनुरोध पर ही इस विशाल ग्रंथ की उन्होंने रचना की। राजा वीरसिंह देव की स्मृति भी बनी रहे, इसलिये इस ग्रंथ के नाम

'वीरमित्रोदय' में उन्होंने अपने नाम "मित्र" के साथ राजा के नाम में जो "वीर" शब्द है उसे भी जोड़ दिया। सम्भवतः हेमाद्रि के चतुर्वर्गचिन्तामणि को छोड़कर धर्मशास्त्र–सम्बन्धी कोई भी अन्य ग्रंथ वीरमित्रोदय जितना विस्तृत नहीं है। यह ग्रंथ 'प्रकाश' नाम से 22 स्वतंत्र खण्डों में विभक्त है। वे हैं –

1. परिभाषाप्रकाश	2. संस्कारप्रकाश	3. आह्निकप्रकाश	4. पूजाप्रकाश
5. प्रतिष्ठाप्रकाश	6. राजनीतिप्रकाश	7. व्यवहारप्रकाश	8. शुद्धिप्रकाश
9. श्राद्धप्रकाश	10. तीर्थप्रकाश	11. दानप्रकाश	12. व्रतप्रकाश
13. समयप्रकाश	14. ज्योतिषप्रकाश	15. शान्तिप्रकाश	16. कर्मविपाकप्रकाश
17. चिकित्साप्रकाश	18. प्रायश्चित्तप्रकाश	19. प्रकीर्णप्रकाश	20. लक्षण प्रकाश
21. भक्तिप्रकाश	22. मोक्षप्रकाश।		

इस ग्रंथ में स्मृति, पुराण, महाभारत एवं पूर्ववर्ती निबन्धकारों के मतों का और अन्य अनेक ग्रंथों के वचनों का संग्रह हुआ है। इसका व्यवहारप्रकाश अन्य व्यवहार संग्रहों से विशेष महत्त्व का है। आचार्य मित्र मिश्र ने याज्ञवल्क्यस्मृति पर "वीरमित्रोदया" नामक टीका लिखी है। आनन्द– कन्दचम्पू भी इनका एक अन्य ग्रंथ है।

26. **स्मृतिकौस्तुभ** – इस ग्रंथ के रचयिता अनन्तदेव को कुमाऊँ नरेश बाजबहादुरचन्द का राज्याश्रय प्राप्त था। अनन्तदेव ने उन्हीं के अनुरोध पर इस ग्रंथ जैसे ही उच्च कोटि के अन्य अनेक ग्रंथ–रत्नों का प्रणयन किया। उनके द्वारा रचित 15 ग्रंथों में से स्मृतिकौस्तुभ के अतिरिक्त प्रायश्चितदीपिका और कालबिन्दुनिर्णय भी प्रसिद्ध हैं। यह विशाल ग्रंथ 7 खण्डों में विभक्त है–
1. संस्कारकौस्तुभ 2. आचारकौस्तुभ 3. राजधर्मकौस्तुभ 4. दानधर्मकौस्तुभ 5. उत्सर्गकौस्तुभ 6. प्रतिष्ठाकौस्तुभ एवं 7. तिथि–संवत्सरकौस्तुभ। इनमें से **राजधर्मकौस्तुभ** भारतीय राजनीति– शास्त्र का मान्य ग्रंथ है।

27. **धर्मशास्त्रसुधानिधि** – प्रतिपादन शैली एवं संयोजन की दृष्टि से पं. दिवाकर भट्ट द्वारा रचित यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। आह्निकचन्द्रिका, श्राद्धचन्द्रिका और प्रायश्चितमुक्तावली आदि इस ग्रंथ के प्रकरण होने पर भी स्वतंत्र ग्रंथों के रूप में प्रसिद्ध हैं।

28. **नागेश भट्ट (नागोजिभट्ट)** – इन्होंने 30 से भी अधिक ग्रंथों की रचना की। व्याकरण के विद्वान होने पर भी इन्होंने आचारेन्दुशेखर, तीर्थेन्दुशेखर, श्राद्धेन्दुशेखर और प्रायश्चितेन्दुशेखर नामक धर्मशास्त्रीय ग्रंथों की रचना की।

29. **धर्मसिन्धु** – इस ग्रंथ की रचना पं. काशीनाथ उपाध्याय ने की। अन्य निबन्धग्रंथों में तो दान, तीर्थ एवं प्रायश्चित आदि विषयों से सम्बन्धित वचनों का धर्मसूत्रों, स्मृतियों, पुराणों और रामायण–महाभारत आदि इतिहास–ग्रंथों से एक ही ग्रंथ में संग्रह कर लिया गया है, लेकिन उसमें अपना मत या निर्णय विशेष रूप से स्पष्ट नहीं दिया गया है। परन्तु इस ग्रंथ में ग्रंथ के रचयिता ने प्रत्येक विषय के सन्दर्भ में अपना निर्णय दिया है। इसी कारण से यह ग्रंथ विशेष –रूप से लोकप्रिय हो गया। काशी के विद्वानों ने इस ग्रंथ को पालकी में रखकर चार दिन तक काशी में घुमाया, इस प्रकार उन्होंने इस ग्रंथ को बहुत आदर दिया।

30. **व्रतकल्पद्रुम** – इस ग्रंथ के रचयिता पं. रत्नाकर भट्ट को अत्यन्त प्रतापी राजा जयसिंह से राज्याश्रय प्राप्त था। उन्हीं की प्रेरणा से पं. रत्नाकर भट्ट ने व्रत, उपवास एवं तिथियों के महाकोश के रूप में इस विशाल धर्मग्रंथ का प्रणयन किया । महाराज जयसिंह की धर्मप्रियता और उनकी स्मृति को दृष्टिगत रखते हुए पं. रत्नाकर भट्ट ने इस ग्रंथ का नाम ''जयसिंहव्रतकल्पद्रुम'' रखा।

31. **व्रतराज** – पं. विश्वशर्मा द्वारा रचित इस ग्रंथ में तिथि आदि के निर्णय को सुगम और सुस्पष्ट कर दिया गया है। इस ग्रंथ के प्रारम्भ में परिभाषा प्रकरण है जिसमें पञ्चपल्लव, पञ्च –गव्य, पञ्चामृत, सप्तधान्य आदि का वर्णन है। इसमें सभी तिथियों और सभी वारों के व्रत तथा उनकी कथाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक व्रतों का वर्णन है। व्रतों और उत्सवों के ज्ञान के लिये इस ग्रंथ का अध्ययन विशेष उपयोगी है।

उपसंहार –

सम्पूर्ण आर्ष–साहित्य वेद और वेद अङ्ग तथा उपाङ्ग के रूप में विभक्त है अथवा यह कहें कि आगम और निगम नाम से दो भागों में विभक्त है। साङ्गोपाङ्गवेद अथवा आगम और निगम में सम्पूर्ण आर्ष–साहित्य का समावेश हो जाता है। इस आलेख में वेद और वेदमूलक लगभग सम्पूर्ण आर्ष–साहित्य का परिचयात्मक रूप से संक्षिप्त विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय संस्कृति की आत्मा आर्ष–साहित्य में विराजती है। इसलिये प्रत्येक भारतीय को अपने विद्यार्थी जीवन में ही इस आलेख से जुड़ी सम्पूर्ण तथ्यात्मक विषयवस्तु से अवगत होना अत्यन्त आवश्यक है। सभी प्राणियों के हित में रत रहने वाले (सर्वभूतहितेरताः) ऋषि–मुनियों द्वारा रचित यह साहित्य न केवल ज्ञान और विज्ञान का भण्डार है बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिये कल्याणकारी भी है तथा यह मानव–जीवन के प्रत्येक पहलू पर विस्तृत प्रकाश डालता है।

वर्तमान के विश्वव्यापी संकटों के निवारण के लिये सम्पूर्ण विश्व को इस साहित्य की ही शरण ग्रहण करनी होगी। इस साहित्य के अध्ययन से प्राप्त दृष्टि में ही सम्पूर्ण विश्व का कल्याण निहित है। जब एक व्यक्ति के जीवन में भटकाव बहुत अधिक भयावह हो सकता है, तो कल्पना करिये कि वर्तमान में जब सम्पूर्ण विश्व भटकाव के दौर से गुजर रहा है, तो उसका परिणाम कितना भयावह होगा। भटकाव के इस दौर में सम्पूर्ण विश्व का मार्गदर्शन करने की सामर्थ्य यदि किसी में है तो वह केवल इसी साहित्य में है।

वर्णाश्रम-धर्मों का पालन करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि में ही प्रत्येक मानव के ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के सुख, समृद्धि, शान्ति और कल्याण के बीज निहित हैं। यही वह दृष्टि है जिसको आधार बनाकर सम्पूर्ण आर्ष–साहित्य शब्दों में पिरोया गया है।

jk"Vh; eukofÙk

''भारतीय–मानस पहले धार्मिक है फिर कुछ और है, यह इसका राष्ट्रीय लक्षण है, जिसे कोई प्रभावित नहीं कर सकता। धर्म राष्ट्र की आत्मा होती है, क्योंकि उसका कोई विनाश नहीं कर सकता। इसीलिए हिन्दू–राष्ट्र आज भी जीवित है, अनेक बाधाओं और झंझावातों को सहन करते हुए भी। यही राष्ट्रीय मनोवृत्ति, राष्ट्रीय जीवन–संजीवनी की प्रामाणिकता है। इसका अनुसरण करो और राष्ट्रीय गौरव को प्राप्त करो। इसका त्याग तुम्हें केवल मृत्यु का आलिंगन कराएगा । सर्वनाश इसकी परिणति होगी, जब तुम इस जीवन संजीवनी का परित्याग करोगे।''

– स्वामी विवेकानन्द

उपनिषद्

1. ईशावास्योपनिषद्
2. केनोपनिषद्
3. कठोपनिषद्
4. प्रश्नोपनिषद्
5. मुण्डकोपनिषद्
6. ऐतरेयोपनिषद्
7. माण्डूक्योपनिषद्
8. श्वेताश्वतरोपनिषद्
9. तैत्तिरीयोपनिषद्
10. छान्दोग्य उपनिषद्
11. वृहदारण्यक उपनिषद्

स्वामी विवेकानन्द ने अपने प्रवचन में कहा था– ''मैं उपनिषदों को पढ़ता हूँ, तो मेरे आंसू बहने लगते हैं। यह कितना महान् ज्ञान है? हमें शक्ति चाहिये। शक्ति के बिना काम न चलेगा। यह शक्ति कहां से प्राप्त हो ? उपनिषद् ही शक्ति की खानें हैं। उनमें ऐसी शक्ति भरी पड़ी है, जो सम्पूर्ण विश्व को बल, शौर्य एवं नवजीवन प्रदान कर सके। उपनिषद् किसी भी देश, जाति, मत व सम्प्रदाय का भेद किये बिना हर दीन, दुर्बल, दुःखी और दलित प्राणी को पुकार–पुकार कर कहता है– ''उठो, अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और बंधनों को काट डालो।''

स्वामी विवेकानन्द ने उपनिषद् ज्ञान की आवश्यकता को न केवल ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये अर्थात् आध्यात्मिक उन्नति के लिये बल्कि दैनिक जीवन के लिये भी उपयोगी बताया है। उनका कथन है कि उपनिषद् वह शक्ति प्रदान करता है, जिसके द्वारा मनुष्य जीवन–संग्राम का धैर्य तथा साहस के साथ मुकाबला करता है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र, चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक, दोनों में उपनिषद् का महत्वपूर्ण स्थान है। उपनिषद् ज्ञान के अथाह भण्डार हैं। यहां उपनिषदों का मात्र संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। उपनिषद् का नाम तो प्रायः सभी ने सुन रखा है किन्तु उसकी विषयवस्तु क्या है, यह जानकारी बहुतों को नहीं है। इस प्रकरण के पठनोपरान्त न केवल विषयवस्तु की संक्षिप्त जानकारी मिलेगी अपितु इससे सुधी पाठकों की रुचि बढ़ेगी और वे सम्भवतः विस्तृत ज्ञान हेतु मूल ग्रन्थों के अध्ययन की ओर प्रवृत होंगे।

1. ईशावास्योपनिषद्

यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय को ईशावास्योपनिषद् कहा गया है। इसमें कुल 18 मंत्र हैं। इसे सबसे पहला उपनिषद् माना जाता है। इसके पहले श्लोक में 'ईशा-वास्यम्' वाक्य आने से इसका नाम 'ईशावास्य' माना गया है। वेदों का रहस्य जिन ग्रन्थों में आया है, उसको वेदान्त (उपनिषद्) कहते हैं। वेदान्त के ग्रन्थ तो बहुत हैं, पर ईशावास्योपनिषद् में वेदों का सार है, ऐसा मानते हैं। इस उपनिषद् के प्रथम श्लोक में तो सम्पूर्ण अठारह श्लोकों का मानो निचोड़ ही है -

ईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

यह धन किसका है ? - दुनिया में जो कुछ भी चराचर (जड़ चेतन) है, सब ईश्वर से व्याप्त है। कोई भी चीज ईश्वर से खाली नहीं है। वही एक मालिक है, इस जगत् का। यह समझकर हमें सब कुछ उसी को समर्पण करना चाहिये और जो कुछ उससे मिले, प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये। यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है, सब कुछ ईश्वर का है, ऐसी भावना रखनी चाहिये। जो पुरुष इस तरह रहेगा - कोई भी चीज अपनी नहीं मानेगा- उसे सब मिल जायेगा । जो कुछ उसे मिलेगा, उसमें वह सन्तुष्ट रहेगा। दूसरे से मत्सर (ईर्ष्या) नहीं करेगा। दूसरों के धन की अभिलाषा नहीं करेगा। ईश्वर समर्पण प्रसाद के रूप में ग्रहण करना, मत्सर नहीं करना, धन की वासना नहीं करना- इस प्रकार एक सम्पूर्ण विचार, इस एक मंत्र ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। यह धन किसका है ? (कस्य स्विद् धनम्) प्रश्न करके ऋषि ने मनुष्य को अभिमानमुक्त होने का सन्देश दिया है।

बन्धनमुक्त होकर निरन्तर कर्म करें - मनुष्य दूसरे के धन की अभिलाषा क्यों करता है? इसलिये कि वह आलस्य में जीना चाहता है। इसीलिये इसके दूसरे मंत्र में कहा गया है कि बिना कर्म किये जीने की इच्छा रखना जीवन के साथ बेईमानी है। अतः बन्धनमुक्त रहकर निरन्तर कर्म करना चाहिये।

आप भगवान् को भूल जाते हो, भोगप्रधान वृति रखते हो,कर्म को छोड़कर आलस्य को अपनाते हो तो इसी जिन्दगी में नरक भोगते हो। इसी के अनुसार मरने के बाद की गति होती है। इस प्रकार तीसरे श्लोक में प्रकृति के अनुशासन का उल्लंघन करने के दुष्परिणामों का संकेत है।

ईश्वर का व्यापक स्वरुप - मंत्र चार व पांच में बताया गया है कि ईश्वर की भक्ति अलौकिक है। वह असीम है। वह तर्क से परे है। गीता में बताया है कि जब

ईश्वर अवतार लेता है तब वह भी महान् कर्म करता हुआ दिखाई देता है। पर जब वह अपने मूल रूप में रहता है (अर्थात् अवतार ग्रहण नहीं करता) तब वह यद्यपि कुछ भी करता दिखाई नहीं देता, पर उस वक्त भी सारी दुनिया का संचालन करता है। अर्थात् अकर्मा भी वह सब कर्म करता है। यही उसका व्यापक स्वरुप है।

ईश्वर भक्त का वर्णन –इसके आगे तीन मंत्रों में ईश्वर भक्त का वर्णन है। भक्त अपने में सबको और सब में अपने को देखता है। अर्थात् वह सोचता है कि जैसी मेरी इच्छाएं–आवश्यकताएं हैं वैसी दूसरों की भी हैं। इसलिये पहले उनको खिला कर खाऊँ। मुझमें और उनमें कोई भेद नहीं है। मुझमें और मेरे कुटुम्ब में कोई भेद नहीं, मुझमें और समष्टि में कोई भेद नहीं, इतना ही नहीं मनुष्य और पशु–पक्षी, जीव–जन्तु और वनस्पति आदि में भी वह भेद नहीं करता। इस प्रकार वह अपना–पराया का भेद मिटाता है।

बुद्धि ईश्वर परायण बने – आगे के तीन मंत्रों में बुद्धि का कार्य बताया है। भगवान् ने हमें बुद्धि रूपी बड़ा हथियार दिया है। इससे हम अपनी उन्नति भी कर सकते हैं और अवनति भी। आवश्यक व अनावश्यक ज्ञान का विवेक हमें सीखना चाहिये । बुद्धि अगर ईश्वर परायण होती है तो वह ठीक दिशा में कार्य करती है, अन्यथा वह अवनति का कारण बन जाती है।

हृदय शोधन – इसके आगे तीन मंत्रों में हृदयशोधन पर प्रकाश डाला गया है। जिस प्रकार बुद्धि को शुद्ध करना आवश्यक है, उसी प्रकार हृदय का भी शोधन आवश्यक है। विनोबाजी कहते हैं कि हमारा हृदय गुणों एवं दुर्गुणों से भरा है, हमें इन गुणों की संभूति (वृद्धि) और दुर्गुणों की असम्भूति (कमी) करनी चाहिये। उसका विकास करते रहना चाहिये। उसे उज्ज्वल बनाते रहना चाहिये।

सोने के ढक्कन को हटायें – इसके आगे जो मंत्र आया है, उसमें दर्शन का सार है, कि दुनिया में सत्य है किन्तु वह मोह के आवरण से ढका हुआ है। जब तक उस मोह के आवरण का भेद नहीं हो, तब तक सत्य का दर्शन नहीं होता। इस मोह को ऋषि ने सत्य रूपी स्वर्ण पात्र का ढक्कन कहा है।(**हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्**)। सत्य का दर्शन करना है तो सोने का यह ढक्कन हटा देना चाहिये। **(सत्य धर्माय दृष्टये)**

सोऽहम् (मैं वही हूँ) – उपनिषद् के अन्तिम तीन मंत्रों में प्रकृति का विकास क्रम बताया गया है। जिसे लोग ब्रह्म अथवा ईश्वर कहते हैं, वह संसार को प्रेरणा देता है, उसका पालन पोषण करता है और नित्य निरीक्षण करता है। उसमें और मुझमें भेद नहीं है, क्योंकि उसी का मैं अंश हूँ। मैं वही हूँ । मुझ पर देह का आवरण है। यह

एक सुवर्ण पात्र है, जिसके भीतर मैं छिपा हूँ। ईश्वर जिस प्रकार पूर्ण है, सुन्दर है, मैं भी हूँ – हो सकता हूँ। 'सोऽहम्' मंत्र ने हमें यह आश्वासन दिया है।

जितने भी भेद हैं, बाहरी हैं, देह के साथ हैं। मुझमें और आत्मा में कोई भेद नहीं। बाहरी आवरणों को भेदकर हमें अन्तर्यामी के पास पहुँचना है। ऋषि कहता है कि जो इस तरह निरन्तर साधना करता है, उसकी जब देह गिर जाती है, उसकी मिट्टी, मिट्टी में मिल जाती है तब आत्मा परमात्मा में मिल जाती है।

ईश्वर से प्रार्थना – अन्त में अग्निस्वरूप भगवान् से प्रार्थना है कि हे प्रभो ! जब तक हममें चेतना है, गरमी है, हमें सीधी राह पर रख। हमें वक्र मार्ग से न ले जा। हमारे जीवन में किसी तरह की वक्रता न आने पाये। काया–वाचा–मनसा तथा अन्दर–बाहर हम सरल हों। ऐसे सरल जीवन के लिये हमें बल दे।

2. केनोपनिषद्

यह सामवेदीय 'तलवकार ब्राह्मण' के नवें अध्याय के अन्तर्गत है। इसे 'ब्राह्मणोनिषद्' भी कहते हैं। उपनिषद् का प्रारम्भ 'केनेषितम्'...... (यह जीवन किसके द्वारा प्रेरित है?) प्रश्न से हुआ है। इसमें 'केन' का विवेचन होने से इसे 'केनोपनिषद्' कहा गया है। इसमें ऋषि ने स्पष्ट किया है कि 'ब्रह्म' तत्व कहने सुनने में जितना सुगम है, अनुभूति में वह उतना ही कठिन है। इसे भली–भाँति समझने के लिये गुरु–शिष्य संवाद के रूप में ब्रह्मतत्व का विवेचन किया गया है।

शिष्य के चार प्रश्न – पहले श्लोक में शिष्य द्वारा गुरु के समक्ष चार प्रश्न उठाए गए हैं :

1. अन्तःकरण (मन) को प्रेरित करने वाला कौन है?
2. प्राण किससे प्रेरित हो कर चलता है?
3. वाणी किससे क्रियाशील होकर बोलती है?
4. कौन चक्षु और कर्णेन्द्रिय को अपना कार्य करने की योग्यता प्रदान करते हैं। वह सर्व शक्तिमान चेतन कौन है?

इसके उत्तर में गुरु कहते हैं कि मन, प्राण और सम्पूर्ण इन्द्रियों का, इतना ही नहीं समस्त जगत् का परम कारण, जिससे ये सब उत्पन्न हुए हैं, जिसकी शक्ति पाकर ये सब अपना अपना कार्य करने में समर्थ हो रहे हैं, प्रेरित हो रहे हैं, वह परब्रह्म परमेश्वर ही इन सब का कारण है। जिसकी शक्ति के अंश से वाणी में बोलने की शक्ति आई है और जो वाणी का प्रेरक और प्रवर्तक है, वह ब्रह्म है। जिसकी शक्ति के अंश से बुद्धि में निश्चय करने का सामर्थ्य और मन में चिन्तन करने का सामर्थ्य आया है वह ब्रह्म है। जिसकी शक्ति और प्रेरणा से चक्षु आदि

ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषय को प्रत्यक्ष करने में समर्थ होती हैं तथा जिसकी शक्ति के अंश का यह प्रभाव है, वह ब्रह्म है। जो प्राणों का ज्ञाता, प्रेरक और शक्ति देने वाला है तथा जिसकी शक्ति के किसी अंश से यह प्राण सबको चेष्टायुक्त करने में समर्थ होता है वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर ब्रह्म है।

मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदि में ब्रह्म का केवल अंश मात्र है, पूर्ण नहीं। इस जीवात्मा और समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त जो ब्रह्म की शक्ति है, उन सब को मिलाकर भी देखा जाये तो वह भी सम्पूर्ण ब्रह्म का एक अंश ही है।

ब्रह्म को जानने की पात्रता - परब्रह्म परमेश्वर का साक्षात्कार उन्हीं को होता है, जिनमें जानने का अभिमान किंचित् भी नहीं है। जो यह मानता है कि मैंने ब्रह्म को जान लिया है, मैं ज्ञानी हूँ, परमेश्वर मेरे लिये ज्ञेय है, वह वस्तुतः भ्रम में है क्योंकि ब्रह्म इस प्रकार के ज्ञान का विषय नहीं है। उपनिषद् का ऋषि घोषणा करता है कि परमात्मा का ज्ञान कराने वाली यह ज्ञान रूपी शक्ति मनुष्य को परमात्मा की कृपा से ही मिलती है ।

मानव जीवन की सार्थकता - मानव जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। इसे पाकर जो मनुष्य परमात्मा की प्राप्ति के साधन में तत्परता से नहीं लग जाता, वह बहुत बड़ी भूल करता है। बुद्धिमान पुरुष प्रत्येक प्राणी में परमात्मा का साक्षात्कार करता है।

देवताओं की शक्ति का परीक्षण :

परमेश्वर के अंश की महिमा का एक दृष्टान्त - केनोपनिषद् के तृतीय खण्ड में एक दृष्टान्त के द्वारा यह समझाया गया है कि विश्व में कोई भी प्राणी या पदार्थ यदि शक्तिमान, सुन्दर और प्रिय प्रतीत होता है, उसके जीवन में सफलता दिखती है, तो वह उस परब्रह्म परमेश्वर के एक अंश की महिमा है। इस पर यदि कोई अभिमान करता है तो वह बहुत बड़ी भूल करता है। श्रीमद्भगवत् गीता के श्लोक 10/41 में भगवान् श्रीकृष्ण भी यही उपदेश देते हैं। एक बार परब्रह्म पुरुषोत्तम ने देवों पर कृपा करके उनको शक्ति प्रदान की, जिससे उन्होंने असुरों पर विजय प्राप्त की। यह विजय तो वास्तव में भगवान् की थी, देवता तो केवल निमित्त मात्र थे किन्तु देवता अभिमानवश यह मानने लगे कि वे बड़े शक्तिशाली हैं। भगवान ने सोचा कि देवताओं में यह अभिमान बना रहा तो इनका पतन हो जायेगा। अतः भगवान् देवताओं का दर्प चूर करने के लिये उनके सामने यक्ष के रूप में प्रकट हो गये। देवता उनको पहचान नहीं सके। देवता उस दिव्य एवं महाकाय यक्ष को देखकर सहम गये और उसका परिचय पाने के लिये व्यग्र हो उठे। सबसे पहले अग्नि को कहा गया कि आप जाकर पता लगाइये कि यह कौन है? अग्नि देवता

यक्ष के पास पहुंचे। यक्ष ने पूछा, 'आप कौन हैं?' 'मैं अग्नि हूँ, मैं चाहूँ तो इस पृथ्वी में जो कुछ भी है सब को जलाकर भस्म कर दूँ', अग्नि ने कहा। इस गर्वोक्ति को सुनकर ब्रह्म ने कहा – 'अच्छा ! जरा बल लगाकर इस सूखे तिनके को जला दीजिये।' अग्नि देवता ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी पर वे उसको जला नहीं सके। आंच लगती भी कैसे? अग्नि में जो दाहिका शक्ति है वह तो परब्रह्म परमात्मा से ही मिली है और उस शक्ति ने ही स्रोत को रोक लिया है तो यह शक्ति आयेगी कहाँ से? अग्निदेव निराश होकर वापस चले गये। पास में वायुदेव खड़े थे। वायुदेव ने कहा कि मैं पता लगाता हूँ और पहुँचे यक्ष के पास। यक्ष ने वायुदेव से पूछा, 'आप कौन हैं?' वायु देवता ने अपना परिचय दिया तो यक्ष ने उनसे पुनः प्रश्न किया– 'आप में क्या शक्ति है?' इस पर वायुदेव ने सगर्व उत्तर दिया, 'मैं चाहूँ तो इस भूमण्डल पर जो भी दिखाई दे रहा है, सबको बिना आधार के उठा लूँ और उड़ा दूँ।' इस पर यक्ष ने वायु के सामने भी तिनका रखा और कहा – 'जरा इस तिनके को तो उड़ा दीजिये।' किन्तु परमपिता परमात्मा द्वारा शक्ति रोक लिये जाने के कारण वायुदेवता तिनके को तनिक सा भी हिला नहीं सके। वायु देवता देवताओं के पास जाकर बोले कि मैं नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है?

जब अग्नि और वायु असफल होकर लौट आये तो देवताओं ने देवराज इन्द्र को इस कार्य के लिये चुना और निवेदन किया कि अब आप ही जाकर पता लगाइये कि यह यक्ष कौन है? जब इन्द्र यक्ष के पास पहुंचे तो यक्ष उनके सामने से अन्तर्ध्यान हो गये। इन्द्र में देवताओं से भी अधिक अभिमान था, इसलिये यक्ष ने उनको वार्तालाप का अवसर ही नहीं दिया। उपनिषद् के ऋषि का कहना है कि इन्द्र में इस एक दोष के अतिरिक्त अन्य सब प्रकार से वे अधिकारी थे। यक्ष के अन्तर्ध्यान हो जाने पर इन्द्र वहीं खड़े रहे, अग्नि व वायु की तरह वहाँ से लौटे नहीं। इतने में देखा कि जहाँ पर यक्ष खड़ा था ठीक उसी जगह हिमाचल कुमारी उमादेवी प्रकट हो गई। इन्द्र ने भक्तिपूर्वक कहा – 'भगवति ! कृपया मुझे यह बताइये कि वह दिव्य यक्ष कौन था? और किस हेतु से यहाँ प्रकट हुआ है?' देवराज इन्द्र के पूछने पर भगवती उमादेवी ने इन्द्र से कहा कि तुम जिस दिव्य यक्ष को देख रहे थे वे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। तुम लोगों ने जो असुरों पर विजय प्राप्त की है वह ब्रह्म की शक्ति का ही परिणाम है। तुम तो निमित्त मात्र हो। तुम्हारे मिथ्याभिमान का नाश करने एवं तुम्हारा कल्याण करने के लिये उन्हीं परमात्मा ने यक्ष के रूप में प्रकट होकर अग्नि और वायु का गर्व चूर किया। अतः तुम जिस ब्रह्म की महिमा से शक्तिमान् बने हो उसकी महिमा समझो।

3. कठोपनिषद्

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा के अन्तर्गत है। इसमें दो अध्याय एवं प्रत्येक में तीन-तीन वल्लियाँ हैं। इसमें ऋषि उद्दालक के पुत्र नचिकेता और यम के बीच संवाद का सुप्रसिद्ध आख्यान है।

नचिकेता का साहस

उद्दालक द्वारा विश्वजित यज्ञ करना :- जिस समय भारतवर्ष का पवित्र आकाश यज्ञ धूम और उसकी पवित्र सुगन्ध से परिपूर्ण रहता था, ऋषि-मुनियों द्वारा गाए हुए वेद-मंत्रों से सभी दिशाएँ गूँजती रहती थी, उस समय का यह प्रसिद्ध इतिहास है। गौतमवंशी अरुण के पुत्र उद्दालक (वाजश्रवा) ऋषि ने फल की कामना से विश्वजित् नामक महान् यज्ञ किया। इस यज्ञ में यजमान सर्वस्व दान करता है। ऋषि उद्दालक के नचिकेता नाम का एक पुत्र था।

यज्ञ में अयोग्य गायों को दान में देना व नचिकेता का चिन्तित होना :- उस समय गौ-धन ही प्रधान हुआ करता था। जिस समय दान के लिये गायें लाई जा रही थीं, उस समय बालक नचिकेता देख रहा था कि उन गायों में न तो झुककर जल पीने की शक्ति थी, न मुख में घास चबाने के लिये दाँत थे और न ही वे गर्भधारण करने योग्य थीं। नचिकेता ने सोचा -भला ऐसी अनुपयोगी और बूढ़ी गायें जिन ब्राह्मणों के घर जायेंगी, उनको दु:ख के सिवा ये क्या देंगी? पिताजी इस दान से क्या सुख पायेंगे? इन्होंने सर्वस्वदानरूपी यज्ञ करके उपयोगी गायों को मेरे लिये रख लिया है। सर्वस्व में तो मैं भी आता हूँ। मुझको तो इन्होंने दान में दिया ही नहीं। पर मैं इनका पुत्र हूँ, अतएव पिताजी को इसके अनिष्टकारी परिणाम से बचाने के लिये मुझे कुछ करना चाहिये।

नचिकेता का पिताजी को प्रश्न :- यह निश्चय कर उसने अपने पिताजी से कहा- 'पिताजी, मैं भी तो आपका धन हूँ, आप मुझे किसको देते हैं?' पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। नचिकेता ने जब तीन बार पूछा तो ऋषि को क्रोध आ गया और आवेश में आकर कहा - 'तुझे मृत्यु को देता हूँ।'

शिष्य या पुत्र की तीन श्रेणियाँ :- यह सुनकर नचिकेता सोचने लगा - शिष्यों और पुत्रों की तीन श्रेणियाँ होती हैं। उत्तम, मध्यम और अधम। जो गुरु या पिता का मनोरथ समझ कर उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा किये बिना उनकी रुचि के अनुसार कार्य करते हैं, वे उत्तम कहलाते हैं। जो आज्ञा मिलने पर कार्य करते हैं वे मध्यम होते हैं और जो मनोरथ जान लेने और स्पष्ट आदेश सुन लेने पर भी कार्य नहीं करते, अधम हैं। मैं बहुत से शिष्यों में प्रथम श्रेणी का हूँ, बहुत से शिष्यों में से मैं

मध्यम श्रेणी का हूँ, पर अधम श्रेणी का तो कतई नहीं हूँ। आज्ञा मिले और मैं पालन न करुँ, ऐसा तो मैंने कभी किया ही नहीं । फिर पिताजी ने मुझे ऐसा क्यों कहा? परन्तु जो भी हो, पिताजी का वचन तो सत्य करना ही है। इधर ऐसा भी दिखाई दे रहा है कि पिताजी भी पश्चात्ताप कर रहे हैं। अत: उन्हें भी सांत्वना देना आवश्यक है । यह विचार कर वह पिताजी के पास जाकर बोला – 'पिताजी ! आप सत्य का पालन कीजिये और मुझे मृत्यु (यमराज) के पास जाने की अनुमति दीजिये।' पुत्र के वचन सुनकर एवं उसकी सत्यपरायणता देख कर उन्होंने उसे यमराज के पास भेज दिया।

नचिकेता का यम-सदन पहुँचना :- नचिकेता को यम -सदन पहुँचने पर पता चला कि यमराज कहीं बाहर गये हुए हैं। अतएव तीन दिनों तक नचिकेता अन्न-जल ग्रहण किये बिना यमराज की प्रतीक्षा करता रहा। यमराज के लौटने पर उनकी पत्नी ने कहा – 'साक्षात् अग्नि ही मानो अपने तेज से प्रज्ज्वलित होकर ब्राह्मण अतिथि के रूप में गृहस्थ के घर पधारे हैं। अत: अपने कल्याण के लिये और अतिथि रूप उस अग्नि को शांत करने के लिये हे सूर्य पुत्र! तुरन्त जल ले जाइये और उस ऋषि पुत्र का पाद – प्रक्षालन कीजिये। आप स्वयं उसकी सेवा करेंगे तभी वह शान्त होगा।'

यमराज द्वारा तीन वर का प्रस्ताव :- पत्नी के वचन सुनकर यमराज तुरन्त नचिकेता के पास गये, विधिवत् पूजा की और कहने लगे – 'ब्राह्मण देवता! आप मेरे माननीय अतिथि हैं। मुझे चाहिये था कि मैं आपकी यथायोग्य सेवा करता, पर मेरे प्रमाद से आप तीन रात्रि तक लगातार भूखे और प्यासे बैठे हैं। मुझसे यह बड़ा अपराध हुआ है। भगवन् ! मेरे इस दोष की निवृत्ति हेतु आप कृपया प्रत्येक रात्रि के बदले एक -एक करके मुझसे अपनी इच्छानुसार तीन वर मांग लीजिये।'

प्रथम वर (पिता के मन की शान्ति) :- ब्राह्मण बालक के अनशन से भयभीत होकर यमराज ने जब इस प्रकार कहा तो अपने पिता को सुख पहुँचाने की इच्छा से नचिकेता बोला – 'हे मृत्युदेव! मेरे पिता उद्दालक ने क्रोधवश आवेश में आकर मुझे आपके पास भेजा है, अब वे अशान्त और दु:खी हो रहे हैं। उनके मन को शान्ति मिले और जब आपकी अनुमति से मैं घर जाऊँ तब वे मुझे अपने पुत्र के रूप में पहचान कर मेरे साथ पूर्ववत् स्नेह से बातचीत करें।' यमराज ने कहा – 'पुत्र, ऐसा ही होगा।'

दूसरा वर (अग्नि विज्ञान का ज्ञान) :- दूसरा वर माँगने के लिये नचिकेता बोला– 'यमराज ! मैं जानता हूँ कि स्वर्गलोक बड़ा सुखकर है। वहाँ किसी प्रकार

का भय नहीं है। परन्तु स्वर्ग अग्नि- विज्ञान को जाने बिना नहीं मिलता। अतः आप कृपया मुझको उस 'अग्नि - विद्या' का उपदेश दीजिये। यह मैं आपसे दूसरा वर माँगता हूँ।'

यमराज ने अग्नि विद्या की महत्ता एवं गोपनीयता बताकर अग्नि विद्या का रहस्य नचिकेता को समझाया। नचिकेता की बुद्धि व स्मृति की परीक्षा के लिये यमराज ने नचिकेता से पूछा कि तुमने जो कुछ समझा है, वह मुझे सुनाओ। नचिकेता ने जैसा सुना था, ज्यों का त्यों सुना दिया। यमराज उसकी विलक्षण प्रतिभा को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। यमराज ने प्रसन्न होकर नचिकेता से कहा कि यह अग्नि जिसका मैंने तुमको उपदेश किया है तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगी। यह **'नाचिकेत अग्नि'** कहलायेगी।

तीसरा वर (आत्मा के यथार्थ रूप का ज्ञान) :- नचिकेता ने आत्मा के यथार्थ रूप और उसकी प्राप्ति का उपाय जानने के लिये यमराज से तीसरा वर माँगा। नचिकेता ने कहा, 'हे भगवन् ! कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व रहता है और कुछ लोग कहते हैं कि ऐसा नहीं है। इस सम्बन्ध में आपका जो अनुभव हो वह मुझे बताइये। यह मेरा तीसरा वर है।'

नचिकेता के इस प्रश्न को सुनकर यमराज ने मन ही मन उसकी प्रशंसा की। सोचा, ऋषि कुमार बालक होने पर भी कितना प्रतिभाशाली है, किन्तु आत्मतत्व तो उपयुक्त अधिकारी को ही बताना चाहिये। अतएव पात्र की परीक्षा आवश्यक है। यह सोचकर यमराज ने तत्व की कठिनता का वर्णन करके विषय को टालना चाहा। यमराज ने कहा- 'नचिकेता! आत्मतत्व अत्यन्त गूढ़ व सूक्ष्म विषय है। इसका समझना सहज नहीं है। देवता भी इसको जान नहीं पाये। अतः तुम अन्य वर माँग लो।' नचिकेता विषय की कठिनता की बात सुनकर न तो घबराया और न ही उसका उत्साह मंद हुआ। बल्कि उसने और भी दृढ़ता के साथ कहा - 'हे मृत्यो ! आप जो यह कहते हैं कि यह विषय सहज नहीं है, बड़ा ही सूक्ष्म है तब यह तो सिद्ध ही है कि यह बड़े महत्व का विषय है। ऐसे महत्वपूर्ण और गूढ़ विषय को समझाने वाला गुरु आपके समान मुझे और कहाँ मिलेगा? आप मुझे अन्य वर की बात कहते हैं। परन्तु मैं तो समझता हूँ कि इसकी तुलना में अन्य वर है ही नहीं। कृपया मुझे इसी का उपदेश कीजिये।' इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर यमराज अब दूसरी परीक्षा के रूप में विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देने लगे - 'हे नचिकेता! तुम बड़े भोले हो। क्या करोगे इस वर को लेकर? सौ -सौ वर्ष जीने वाले पुत्र-पौत्रादि बड़े परिवार की माँग कर लो। गौ, पशु, हाथी, सुवर्ण, घोड़े और विशाल भूमण्डल का

साम्राज्य माँग लो। और इन सब को भोगने के लिये जितने वर्ष जीने की इच्छा हो, वह माँग लो। तुम इन्हें ले जाओ और इनसे अपनी सेवा कराओ। परन्तु नचिकेता! आत्मतत्व विषयक प्रश्न मत पूछो।' इस पर नचिकेता ने अपने निश्चय का युक्तिपूर्वक समर्थन करते हुए कहा – 'हे भगवन्! आपने जिन भोग्य वस्तुओं की महिमा बताई है, वे सभी क्षण भंगुर हैं। इसके संयोग से प्राप्त होने वाला सुख वास्तव में सुख नहीं है, वह तो दु:ख है। ये वस्तुएँ मनुष्य के तेज और धर्म का हरण कर लेती हैं। मुझे ये रथ, हाथी, घोड़े, रमणियाँ आदि नहीं चाहिए। मुझे किसी भी दृष्टि से अन्य वर माँगना उचित प्रतीत नहीं होता। आपका शिष्य नचिकेता इसके सिवा अन्य कोई वर नहीं चाहता।'

इस प्रकार नचिकेता के निष्काम भाव को देखकर यमराज ने निश्चय कर लिया कि यह ब्रह्म विद्या का उत्तम अधिकारी है। इसके अनन्तर नचिकेता की जिज्ञासा, उसके प्रश्न एवं यमराज द्वारा दिये गये उपदेश का विस्तृत वर्णन इस उपनिषद् का प्रमुख विषय है। विद्यार्थियों के लिये नचिकेता की ज्ञान के प्रति जिज्ञासा अनुकरणीय है।

4. प्रश्नोपनिषद्

यह उपनिषद् अथर्ववेद की पिप्पलाद शाखा का ब्राह्मण भाग है। इसमें जिज्ञासुओं द्वारा महर्षि पिप्पलाद से पूछे गये छ: प्रश्नों का क्रम से उत्तर दिया गया है।

भरद्वाज के पुत्र सुकेशा, शिवि के पुत्र सत्यकाम, गार्ग्य गोत्र में उत्पन्न सौर्यायणी, कौशल देश के आश्वलायन, विदर्भ देश के भार्गव और कत्य के प्रपौत्र कबंधी, ये छ: ऋषि परब्रह्म परमेश्वर की जिज्ञासा से महर्षि पिप्पलाद के पास गये। महर्षि पिप्पलाद ने इन छ: ऋषि पुत्रों को कहा – 'यद्यपि तुम तपस्वी हो और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदाध्ययन भी किया है तथापि मेरे आश्रम में रहकर पुन: एक वर्ष तक तपश्चर्या करनी होगी। उसके बाद मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूँगा।' महर्षि पिप्पलाद की आज्ञा से छहों ऋषि तपस्या करने लगे। एक वर्ष पूर्ण होने पर निम्न क्रम से प्रश्न पूछे गये –

प्रथम प्रश्न :– कत्य ऋषि के प्रपौत्र कबन्धी ने प्रश्न पूछा – भगवन् ! जिससे ये सम्पूर्ण चराचर जीव नानारूपों में उत्पन्न होते हैं, जो इनका सुनिश्चित कारण है, वह कौन रूप है?

दूसरा प्रश्न :– विदर्भ देश के भार्गव ऋषि ने महर्षि पिप्पलाद से पूछा –

(1) प्राणियों के शरीर को धारण करने वाले देवता कुल कितने हैं?

(2) इनमें से कौन-कौन इनको प्रकाशित करने वाले हैं?

(3) इन सब में अत्यन्त श्रेष्ठ कौन है ?

तृतीय प्रश्न :- इसमें आश्वलायन मुनि ने कुल छः बातें पूछी हैं -

(1) जिस प्राण की महिमा आपने बताई है, वह प्राण किससे उत्पन्न होता है?

(2) वह इस मनुष्य शरीर में कैसे प्रवेश करता है ?

(3) वह किस प्रकार शरीर में स्थित रहता है ?

(4) एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाते समय पहले शरीर से किस प्रकार निकलता है?

(5) वह पंच भौतिक शरीर को किस प्रकार ग्रहण करता है?

(6) मन और इन्द्रिय आदि आध्यात्मिक जगत् को किस प्रकार धारण करता है?

चतुर्थ प्रश्न :- इस प्रश्न में गार्ग्य मुनि ने महात्मा पिप्पलाद से पाँच बातें पूछी हैं :

(1) गहरी निद्रा के समय इस मनुष्य शरीर में रहने वाले देवताओं में से कौन-कौन सोते हैं?

(2) कौन-कौन जागते रहते हैं ?

(3) स्वप्न अवस्था में इनमें से कौन देवता स्वप्न की घटनाओं को देखता रहता है?

(4) निद्रा अवस्था में सुख का अनुभव किसको होता है?

(5) ये सब के सब देवता सर्वभाव से किसमें स्थित हैं?

इस प्रकार इस प्रश्न में गार्ग्य मुनि ने जीवात्मा और परमात्मा का पूरा-पूरा तत्व पूछ लिया है।

पंचम् प्रश्न :-सत्यकाम ने ओंकार की उपासना के सम्बन्ध में प्रश्न किया। उसकी जिज्ञासा है कि जो मनुष्य आजीवन ओंकार की उपासना करता है, उसे उस उपासना से कौन सा फल मिलता है?

षष्टम् प्रश्न :- इसमें सुकेशा ऋषि ने अपनी अल्पज्ञता और सत्यभाषण का महत्व प्रकट करते हुए सोलह कलाओं वाले पुरुष के विषय में प्रश्न किया है :

'सोलह कलाओं वाले पुरुष का तत्व क्या है, वह कहाँ है और उसका स्वरूप क्या है?'

प्रथम प्रश्न का उत्तर :- महर्षि पिप्पलाद कहते हैं कि यह दीखने वाला सम्पूर्ण जगत् 'प्राण' और 'रयि' - इन दो तत्वों के संयोग से बना है। यह सूर्य जो हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है, यही प्राण है, क्योंकि इसमें जीवन शक्ति प्रदान करने वाली

चेतना–शक्ति की प्रधानता है। जो कुछ आकार वाला है, स्थूल समुदाय है, वह रयि है। अर्थात् देखने व जानने में आने वाली समस्त वस्तुएं रयि है। यह रयि प्राण रूपी (सूर्य रूपी) जीवन शक्ति से प्रेरित शक्ति पाकर ही कार्य करता है। इस प्रकार सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वर से ही उसके संकल्प द्वारा प्राण और रयि के संयोग से जगत् की उत्पति होती है। इस मंत्र में सबको जीवन शक्ति देने वाली जो शक्ति है उसे 'प्राण' नाम दिया है और स्थूल–भूत समुदाय का नाम 'रयि' कहा गया है। प्राण चेतना है, रयि शक्ति और आकृति है। प्राण और रयि के संयोग से सृष्टि का समस्त कार्य सम्पन्न होता है।

द्वितीय प्रश्न का उत्तर :– भार्गव के पूछे गये प्रथम दो प्रश्नों का उत्तर ऋषि पिप्पलाद् एक साथ देते हैं। वे कहते हैं कि आकाश, वायु, जल, अग्नि व पृथ्वी में पाँच महाभूत शरीर को धारण किये रहते हैं। इसलिये ये धारक ही देवता हैं।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और चार अन्तःकरण – ये चौदह देवता इस शरीर के प्रकाशक हैं। दूसरे प्रश्न के दूसरे मंत्र में बताया गया है कि ये देवता आपस में झगड़ पड़े और कहने लगे कि 'हमने शरीर को आश्रय देकर धारण किया है।' तब प्राण ने उनसे कहा कि तुम तो अज्ञानवश ही परस्पर विवाद कर रहे हो। मैंने ही स्वयं को प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान रूप में पांच भागों में विभक्त कर रखा है और मुझसे ही यह सुरक्षित है। इस कथन को सिद्ध करने के लिये प्राण शरीर से बाहर निकलने के लिये ऊपर की ओर उठने लगा तो सब देवता विवश हो उसमें से बाहर निकलने लगे। जब प्राण पुनः अपने स्थान पर स्थित हो गया तो अन्य सभी स्थित हो गये। यह देखकर वाणी, चक्षु, श्रोत्र आदि सब इन्द्रियाँ और मन आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को विश्वास हो गया कि हम सब में प्राण ही श्रेष्ठ हैं। प्राण ही सूर्य है, यही मेघ, इन्द्र और वायु है। यही देव, पृथ्वी और रात्रि (भूत समुदाय) है, तथा सत् और असत् एवं उससे भी श्रेष्ठ जो परमात्मा है, वह भी प्राण ही है। अतः प्राण ही सबसे श्रेष्ठ है।

तृतीय प्रश्न का उत्तर :– महर्षि पिप्पलाद् क्रमशः आश्वलायन ऋषि के प्रथम दो प्रश्नों के उत्तर देते हैं। 'जिस प्राण की महिमा का वर्णन चल रहा है वह परमात्मा से उत्पन्न हुआ है। मन द्वारा किये संकल्प से वह शरीर में प्रवेश करता है। अर्थात् मरते समय प्राणी के मन में उसके कर्मानुसार जैसा संकल्प होता है, जैसा वह सोचता है उसे वैसा ही शरीर मिलता है। अतः प्राणों का शरीर में प्रवेश मन के संकल्प से होता है।'

महर्षि पिप्पलाद् तीसरे प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं – 'जिस प्रकार चक्रवर्ती सम्राट भिन्न–भिन्न ग्राम, मण्डल, और जनपद आदि में भिन्न –भिन्न अधिकारियों की नियुक्ति करता है और उनका कार्य बाँट देता है, उसी प्रकार प्राण भी अपने अंग स्वरूप अपान, व्यान आदि दूसरे प्राणों को शरीर के पृथक–पृथक स्थानों में पृथक–पृथक कार्य के लिये नियुक्त करता है।' यथा–

प्राण वायु – प्राण स्वयं मुख, नासिका, नेत्र और श्रोत्र में स्थिर रहता है।

अपान वायु – अपान को गुदा और उपस्थ में स्थापित करता है। मल–मूत्र को शरीर से बाहर निकालना तथा रज, वीर्य और गर्भ को बाहर करना भी इसी का कार्य है।

समान वायु – शरीर के मध्य भाग नाभि में समान वायु को रखता है। यह उदर में डाले गये अन्न को सम्पूर्ण शरीर के अंगों में यथायोग्य पहुँचाता है। अन्न के इस रस से शरीर में सात ज्वालायें (दो नेत्र, दो कान, दो नासिकायें, एक मुख–रसना) पुष्ट होकर अपना–अपना कार्य करती हैं।

व्यान वायु :– शरीर के हृदय प्रदेश में जीवात्मा का निवास स्थान है, उसमें एक सौ मूलभूत नाड़ियां हैं, प्रत्येक नाड़ी की एक–एक सौ शाखा–नाड़ियां है, और प्रत्येक शाखा–नाड़ी की बहत्तर हजार प्रतिशाखा नाड़ियां है। इस प्रकार इस शरीर में कुल बहत्तर करोड़ नाड़ियां है। इनमें व्यान वायु विचरण करता है।

उदान वायु :– उक्त बहत्तर करोड़ नाड़ियों से भिन्न एक नाड़ी और है, जिसे 'सुषुम्ना' कहते हैं, जो हृदय से निकलकर ऊपर मस्तिष्क में गई है, उसके द्वारा उदान वायु शरीर में ऊपर की ओर विचरण करता है।

इसके बाद महर्षि पिप्पलाद आश्वलायन के चौथे प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य पुण्यशील होता है, जिसके पुण्य कर्मों के भोग उदय हो जाते हैं, उसे यह उदान वायु ही अन्य सब प्राण और इन्द्रियों सहित वर्तमान शरीर से निकालकर पुण्य लोक (स्वर्गादि उच्च लोकों) में ले जाता है। पाप कर्म से युक्त मनुष्य को शूकर–कूकर आदि पाप योनियों में ले जाता है, तथा जो पुण्य और पाप दोनों प्रकार के कर्मों का मिश्रित फल भोगने के लिये अभिमुख हुए हैं, उनको मनुष्य शरीर में ले जाता है।

एक शरीर से निकलकर जब मुख्य प्राण उदान को साथ ले कर दूसरे शरीर में जाता है तब अपने अंगभूत प्राणों (प्राण,अपान,समान,व्यान,उदान) को तथा इन्द्रियों और मन को तो साथ ले ही जाता है, इन सब का स्वामी जीवात्मा भी उसके साथ जाता है।

सूर्य सबका बाह्य प्राण है। मुख्य प्राण सूर्य से उदय होकर शरीर के बाह्य अंग–प्रत्यंगों को पुष्ट करता है और नेत्र इन्द्रिय रूप आध्यात्मिक शरीर पर अनुग्रह करता है– उसे देखने की शक्ति अर्थात् प्रकाश देता है।

पृथ्वी में जो अपान वायु की शक्ति है वह मनुष्य के भीतर रहने वाले अपान वायु को आश्रय देती है।

पृथ्वी और स्वर्ग लोक के बीच का जो आकाश है वह समान वायु का बाह्य स्वरूप है। वह इस शरीर के बाहरी अंग–प्रत्यंगों को आकार देकर उनकी रक्षा करता है और शरीर के भीतर रहने वाले समान वायु को विचरण के लिये अवकाश देता है। इसकी सहायता से श्रोत्र–इन्द्रिय शब्द सुन सकती है। आकाश में विचरण करने वाला प्रत्यक्ष वायु ही व्यान का बाह्य स्वरूप है। यह इस शरीर के बाहरी अंग–प्रत्यंग को चेष्टाशील करता है। भीतरी व्यान वायु को नाड़ियों में संचरित करने तथा त्वचा इन्द्रिय को स्पर्श ज्ञान कराने में सहायक है।

सूर्य और अग्नि का जो बाहरी तेज (ऊष्णत्व) है वही उदान का बाह्य स्वरूप है। वह शरीर के अंग प्रत्यंगों को ठंडा नहीं होने देता और शरीर के भीतर की ऊष्मा को स्थिर रखता है। जिसके शरीर से उदान वायु निकल जाता है, उसका शरीर गर्म नहीं रहता। शरीर की गर्मी शान्त हो जाते ही उसमें रहने वाला जीवात्मा मन में विलीन हुई इन्द्रियों को साथ लेकर उदान वायु के साथ दूसरे शरीर में चला जाता है। गीता के अध्याय 15 श्लोक 8 में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी यही उपदेश दिया है।

चतुर्थ प्रश्न का उत्तर :– चतुर्थ प्रश्न में गार्ग्य ऋषि ने कुल पाँच बातें पूछी हैं। पिप्पलाद् ऋषि इस प्रकार उत्तर देते हैं –'गहरी निद्रा के समय सब देवता अर्थात् दसों इन्द्रियाँ, उनमें से श्रेष्ठ जो मन रूपी देवता है, उसमें विलीन हो जाती हैं। जागने पर पुनः वे सब इन्द्रियाँ मन से पृथक होकर अपना–अपना कार्य करने लगती हैं।

गार्ग्य ऋषि के प्रश्न, कि गाढ़ निद्रा (गहरी निद्रा) के समय कौन देवता जागते रहते हैं, के उत्तर में पिप्पलाद् ऋषि कहते हैं कि इस समय मनुष्य के शरीर रूपी नगर में पाँच प्राण रूपी अग्नियां (प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान) जागती रहती हैं।

गार्ग्य मुनि के तीसरे प्रश्न का उत्तर पिप्पलाद् उत्तर देते हैं – स्वप्न अवस्था में जीवात्मा ही मन और सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा अपनी विभूति का अनुभव करता है। पहले जो भी देखा है, सुना है, अनुभव किया है, उसी को वह स्वप्न में बार–बार देखता है, सुनता है और अनुभव करता है।

गार्ग्य मुनि ने चौथी बात पूछी थी कि निद्रा में सुख का अनुभव किसे होता है? इसका उत्तर महर्षि देते है कि जब निद्रा के समय यह मन उदान वायु के अधीन हो जाता है उस समय निद्राजनित सुख का अनुभव जीवात्मा को होता है। इस शरीर में सुख-दुखों को भोगने वाला जीवात्मा ही है।

गार्ग्य मुनि ने पाँचवी बात पूछी थी कि ये मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और प्राण सब किसमें स्थित हैं? किसके आश्रित हैं? इसका उत्तर महर्षि देते हैं- 'आकाश में उड़ने वाले पक्षीगण जिस प्रकार सायंकाल में लौटकर अपने वृक्ष पर आ जाते हैं, ठीक उसी प्रकार ये मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और प्राण आदि सबके सब परब्रह्म पुरुषोत्तम में आश्रय लेते हैं, क्योंकि वे ही इनके परम आश्रय स्थल हैं।'

पंचम् प्रश्न का उत्तर :- इस प्रश्न में सत्यकाम ने ओंकार की उपासना के विषय में प्रश्न किया है। महर्षि उत्तर देते हैं कि ओंकार की उपासना द्वारा मनुष्य उन परब्रह्म परमेश्वर को पा लेते हैं, जो परम शान्त- सब प्रकारों के विकारों से रहित हैं। जहाँ न बुढ़ापा है, न मृत्यु है, न भय है। जो अजर-अमर, सर्वश्रेष्ठ एवं पुरुषोत्तम हैं।

षष्ठम् प्रश्न का उत्तर :- छठा प्रश्न सुकेशा ऋषि द्वारा किया गया कि वे सोलह कलाओं वाले पुरुष को जानना चाहते हैं। महर्षि पिप्पलाद् कहते हैं कि 'हे सौम्य! जिस पुरुष में सोलह कलायें उत्पन्न होती हैं, वह इस शरीर के अन्दर ही है। उस पुरुष ने सर्वप्रथम **प्राण** रूप जीवात्मा को बनाया। इसके बाद शुभ कर्म में प्रवृत्त करने वाली **श्रद्धा** अर्थात् आस्तिक **बुद्धि** को बनाया। फिर क्रमशः शरीर के कारणाभूत **आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी** पांच महाभूतों की सृष्टि की। पांच महाभूतों के बाद परमेश्वर ने **अन्तःकरण** (मन,बुद्धि,चित्त,अहंकार) को रचा फिर विषयों के कर्म एवं ज्ञान के लिये **इन्द्रियों** को (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ) उत्पन्न किया। प्राणियों के शरीर की स्थिति के लिये **अन्न** की और अन्न के परिपाक द्वारा **बल** (वीर्य) की सृष्टि की। उसके बाद अन्तःकरण और इन्द्रियों के संयमरूप **तप** का प्रादुर्भाव किया। उपासना के लिये भिन्न-भिन्न **मंत्रों** की कल्पना की। अन्तःकरण के संयोग से इन्द्रियों द्वारा किये जाने वाले **कर्मों** का निर्माण किया। कर्मों के विभिन्न फलस्वरूप **लोकों** को बनाया और लोकों के **नाम-रूपों** की रचना की।

इस प्रकार सोलह कलाओं से युक्त इस ब्रह्माण्ड की रचना करके जीवात्मा सहित परमेश्वर स्वयं इसमें प्रविष्ट हो गये। हमारा यह मनुष्य शरीर भी ब्रह्माण्ड का ही एक छोटा स्वरूप है। परमात्मा जिस प्रकार सारे ब्रह्माण्ड में है,

उसी प्रकार हमारे इस शरीर में सोलह कलायें वर्तमान हैं। उस हृदयस्थ परमदेव पुरुषोत्तम को जान लेना ही उस सोलह कला वाले पुरुष को जान लेना है।'

प्राण के विभिन्न अवयव, उसके आश्रय स्थल तथा कार्य

क्र.	प्राण व इसके भाग	आश्रय स्थल	कार्य
1	प्राण	नेत्र व श्रोत्र में	आध्यात्मिक शरीर पर अनुग्रह। देखने व सुनने की शक्ति।
2	अपान	गुदा तथा उपस्थ में	मल–मूत्र को शरीर से बाहर निकालना। रज, वीर्य व गर्भ को शरीर से बाहर निकालना।
3	समान	शरीर के मध्य भाग–नाभि में	अन्न को शरीर के अंगों–प्रत्यंगों में पहुंचाना। इससे नेत्र, कान, नासिका एवं मुख अपना कार्य करने में समर्थ होते हैं।
4	व्यान	हृदय –प्रदेश में (जो जीवात्मा का निवास है)	शरीर की कुल बहत्तर करोड़ नाड़ियों में विचरण करता है।
5	उदान	सुषुम्ना नाड़ी में	सुषुम्ना नाड़ी हृदय से निकलकर ऊपर मस्तिष्क में गई है–उसके द्वारा शरीर के ऊपर के भाग में विचरण करता है।

प्राण के विभिन्न भागों के बाह्य स्वरूप तथा उनके कार्य

क्र.	प्राण व इसके भाग	बाह्य स्वरूप	शरीर के भीतर के स्वरूप से सम्बन्ध व कार्य
1	प्राण	सूर्य	शरीर के बाह्य अंगों को पुष्ट करता है। देखने की शक्ति अर्थात् प्रकाश देता है।आध्यात्मिक शरीर पर अनुग्रह करता है।
2	अपान	पृथ्वी	शरीर के भीतर अपान वायु को आश्रय देता है।गुदा व उपस्थ इन्द्रियों की सहायक शक्ति तथा इनके स्थूल आकार को ग्रहण करता है।
3	समान	आकाश (पृथ्वी व अन्तरिक्ष का स्थान)	शरीर के बाहरी अंगों की रक्षा करता है। शरीर के भीतर रहने वाले समान वायु को विचरने के लिये स्थान देता है। इसकी सहायता से श्रोत्र–इन्द्रिय सुन सकती है।

4 व्यान	वायु (आकाश में विचरने वाला प्रत्यक्ष वायु)	शरीर के बाहरी अंग-प्रत्यंग को चेष्टाशील करता है। भीतरी व्यान वायु को नाड़ियों में संचारित करता है। त्वचा इन्द्रिय को स्पर्श ज्ञान कराने में सहायक है।
5 उदान	अग्नि (सूर्य, अग्नि का तेज अथवा ऊष्णत्व)	शरीर के बाहरी अंग-प्रत्यंगों को ठंडा नहीं होने देता। शरीर के भीतर की ऊष्मा को स्थिर रखता है। (जिसके शरीर से उदान वायु निकल जाता है, उसका शरीर गर्म नहीं रहता, तब भौतिक शरीर शान्त हो जाता है। शरीर में रहने वाला जीवात्मा मन में विलीन हुई इन्द्रियों को साथ लेकर उदान वायु के साथ शरीर छोड़कर चला जाता है।)

5. मुण्डक उपनिषद्

सिर का मुण्डन करके ज्ञान के लिये समर्पित होने वाले संन्यासियों के लिये इसका विशेष महत्व है। ब्रह्मज्ञानी जीवन्मुक्त होता है। उसके अहंकार का मुण्डन होने पर वह कर्म-बन्धन से मुक्त होता है तथा पुण्य तथा पाप से ऊपर उठकर एक उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है। मुण्डक शब्द का अर्थ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार- 'मन का मुण्डन (परिष्कार) कर अविद्या से मुक्त कराने वाले ज्ञान' से है। इसमें महर्षि अंगिरा व शौनक का संवाद है। इसमें कुल तीन मुण्डक हैं तथा प्रत्येक मुण्डक के दो-दो खण्ड हैं।

शौनक नाम के प्रसिद्ध महर्षि विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता थे। पुराणों के अनुसार उनके ऋषि-कुल में अट्ठासी हजार ऋषि (विद्यार्थी) रहते थे। शौनक ऋषि महर्षि अंगिरा के पास आये व शिष्टाचार के उपरान्त प्रश्न किया - 'हे भगवन्! मुझे यह बताइये कि -'**किसके ज्ञात हो जाने पर सब कुछ ज्ञात हो जायेगा?' (कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते, सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।)** अर्थात् जिसको भली भांति जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है, वह परम् तत्व क्या है? उसे कैसे जाना जाये?'

इस पर महर्षि अंगिरा बोले - 'शौनक! मनुष्य को जानने योग्य दो विद्याएँ है, एक परा एवं दूसरी अपरा। जिसके द्वारा इस लोक और परलोक सम्बन्धी भोगों तथा उसकी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह अपरा विद्या है।

जिसके द्वारा परब्रह्म अविनाशी परमात्मा का तत्व ज्ञान होता है, वह परा विद्या है। समस्त जगत् के परम् कारण परमपिता परमात्मा को जान लेने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है। प्रिय शौनक ! हृदय-रूपी गुफा में छुपे हुए अन्तर्यामी परमेश्वर को जो जान लेता है, वह इस मनुष्य शरीर में ही अविद्या रूपी अंत:करण की गांठ का भेदन कर देता है। अन्त में सब प्रकार के संशय व भ्रम से रहित होकर परब्रह्म पुरुषोत्तम को प्राप्त हो जाता है। अंगिरा ऋषि इसे एक उदाहरण द्वारा समझाते हैं -
जीव व ईश्वर की भिन्नता का दृष्टान्त - मनुष्य शरीर मानो एक वृक्ष है। ईश्वर व जीव ये दोनों सदा साथ रहने वाले दो मित्र पक्षी है। ये शरीर रूपी वृक्ष में एक साथ हृदय रूपी घोंसले में निवास करते हैं। इसमें जीवात्मा तो उस वृक्ष के (अपने कर्म) फलों को, सुख-दु:खों को आसक्ति एवं द्वेषपूर्वक भोगता है और दूसरा-(ईश्वर) उन कर्मफलों से किसी प्रकार का सम्बन्ध न जोड़ते हुए केवल देखता रहता है। दोनों में नित्य सम्बन्ध है। ईश्वर अंशी है तथा जीवात्मा उसका अंश है। ईश्वर की यह विशेषता है कि उसमें ज्ञान, ऐश्वर्य, आनन्द और सामर्थ्य बहुत अधिक है। जगत् भी एक वृक्ष है। मोह, आसक्ति तथा वासना आदि के कारण यह विकसित होता है। ज्ञानी पुरुष ज्ञान, वैराग्य अथवा अनासक्ति से इसका उच्छेदन करके बन्धन मुक्त हो जाता है अथवा इस पर विजय प्राप्त कर लेता है। एक ही वृक्ष पर जीवात्मा आसक्ति में निमग्न है, वह शोक करते हुए असमर्थता अनुभव करता है। जब वह दूसरे पक्षी को (ईश्वर को) देखता है अर्थात् योगियों व भक्तों से सेवित उनकी महिमा को देखता है (उनकी शरण में जाता है) तब वह शोकरहित हो जाता है।
सत्यमेव जयते - तृतीय मुण्डक के प्रथम खण्ड के छठे श्लोक में सत्य की महिमा बताई गई है। **'सत्यमेव जयति नानृतं'** सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं। अर्थात् परमात्मा सत्य स्वरूप हैं, उसकी प्राप्ति के लिये मनुष्य में सत्य की प्रतिष्ठा होनी चाहिये। जो लोग मिथ्याभाषण, दंभ और कपट से उन्नति की आशा करते हैं, वे अन्त में निराश होते है। **'सत्येन पन्था विततो देवयानः'** अर्थात् वह देवयान नामक मार्ग सत्य से परिपूर्ण है। जो लोग मिथ्या भाषण अथवा मिथ्या आचरण अपनाते हैं, उससे कुछ क्षणिक लाभ तो हो जाता है परन्तु उसका परिणाम अन्ततः बुरा होता है। सत्य और धर्म एक ही है । ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या । तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है कि सत्य भाषण और स्वाध्याय करना चाहिये। (**सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च**) सत्य की साधना करने वाले मनुष्य के जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा होने पर उसकी क्रियाएँ सफल हो जाती हैं, उसकी वाणी सिद्ध हो जाती

है। वह व्यक्ति अपने मन में राग, द्वेष, घृणा तथा वैर से मुक्त रहता है। आन्तरिक दृढ़ता, साहस व धैर्य के कारण कभी विचलित नहीं होता। उसके आचार-विचार में पवित्रता रहती है तथा वह अपने भीतर नितांत निस्वार्थ, निर्भय और निश्चिन्त रहने के कारण परम शान्त रहता है। चित्त के शुद्ध होने पर मनुष्य अपने अन्तःकरण में परमेश्वर की उपस्थिति की अनुभूति करता है।

6. ऐतरेयोपनिषद्

ऋग्वेदीय ऐतरेय आरण्यक के दूसरे आरण्यक के चौथे, पाँचवें और छठे अध्याय को ऐतरेयोपनिषद् कहते हैं। इसमें ब्रह्म विद्या की प्रधानता है।

सृष्टि की उत्पत्ति - इसके प्रथम अध्याय में सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम और मनुष्य शरीर का महत्व बताया गया है। मंत्र में बताया गया है कि सृष्टि के आदि में परमपिता परमात्मा ने यह विचार किया कि मैं प्राणियों के कर्मफल भोग के लिये भिन्न-भिन्न लोकों की रचना करुँ। यह विचार कर परमात्मा ने अम्भः, मरीच, मर और जल- इन लोकों की रचना की। अर्थात् जगत् में जितने भी लोक- त्रिलोकों- चतुर्दश भुवन एवं सप्त लोकों के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन सब लोकों की रचना परमात्मा ने की।

इसके बाद उन्होंने जल में से (अर्थात् जल आदि सूक्ष्म महाभूतों से) हिरण्यमय पुरुष (ब्रह्मा) को निकालकर उसको समस्त अंग-उपांगों से युक्त कर मूर्तिमान् बनाया। इसके बाद इन्द्रियों आदि समस्त देवताओं को विराजित किया। तत्पश्चात् परब्रह्म परमात्मा अंश रूप में स्वयं विराजित हुए।

माता द्वारा गर्भ का पालन-पोषण - द्वितीय अध्याय के दूसरे श्लोक में बताया है कि माता के शरीर में आया हुआ गर्भ उसके शरीर का अंग जैसा हो जाता है। यही कारण है कि वह गर्भ माता को कभी कष्ट नहीं पहुंचाता। उसे वह भार स्वरूप प्रतीत नहीं होता। माँ अपने शरीर में आये गर्भ को अपने अंगों की भांति भोजन के रस से पुष्ट करती है एवं उसकी रक्षा करती है।

गर्भवती स्त्री के प्रति परिवार का दायित्व - इसी अध्याय के तीसरे श्लोक में बताया है कि ऐसी गर्भवती स्त्री परिवार द्वारा पालन-पोषण योग्य होती है। अर्थात् घर के लोगों का यह कर्त्तव्य होता है कि वे सब मिलकर उसके खान-पान और स्वास्थ्य का ध्यान रखें।

जन्म के बाद पिता का कर्त्तव्य - जन्म लेने के बाद पिता जातकर्म आदि संस्कारों से अपने पुत्र को पूर्ण करता है और जन्म से लेकर जब तक वह योग्य नहीं हो जाता

तब तक हर प्रकार से उसका पालन–पोषण करता है। विद्या अध्ययन आदि कराके उसे सब प्रकार से योग्य बनाता है। पिता मानो ऐसा करके अपनी ही रक्षा करता है।

पुत्र के कर्त्तव्य – पुत्र का कर्त्तव्य बताया गया है कि उसे अपने माता–पिता की सेवा करनी चाहिये। पुत्र बड़ा हो कर जब कार्य करने योग्य हो जाता है, तब पिता उसको अपना प्रतिनिधि बना देता है। जितने भी लौकिक कार्य हैं, उन सब का भार अपने पुत्र को सौंप देता है। ऐसा करके वह अपने को पितृऋण से मुक्त मानता है। शरीर की आयु पूर्ण होने पर जब पिता देह त्याग देता है तो अपने पूर्व जन्म के कर्मानुसार पुनः जन्म लेता है। इस तरह जन्म जन्मान्तर का क्रम चलता रहता है। जब तक जन्म–मृत्यु के कष्ट का विचार करके इससे छुटकारा पाने के लिये मनुष्य चेष्टा नहीं करता, तब तक यह परम्परा नहीं टूटती। इसलिये मनुष्य को अवश्य चेष्टा करनी चाहिये, यही बात समझाना इस प्रकरण का उद्‌देश्य है।

वामदेव ऋषि को गर्भ में आत्मज्ञान का दृष्टान्त – इस अध्याय के पाँचवें श्लोक में बताया गया है कि गर्भ में रहते हुए ही वामदेव ऋषि को यथार्थ ज्ञान हो गया था। इसलिये उन्होंने माता के उदर में ही कहा था – 'अहो! कितने आनन्द की बात है कि गर्भ में रहते ही मैंने अन्तःकरण और इन्द्रियरूप देवताओं के अनेक जन्मों का रहस्य जान लिया। मैं जान गया हूँ कि जन्म आदि वास्तव में अन्तःकरण और इन्द्रियों के ही होते है, आत्मा के नहीं। इस रहस्य को समझने से पहले मुझे लोहे के समान कठोर सैकड़ों शरीर–रूपी पिंजरों ने अवरुद्ध कर रखा था। अब मैं बाज पक्षी की भाँति ज्ञानरूपी बल के वेग से उन सब को तोड़कर उनसे अलग हो गया हूँ। शरीर रूपी पिंजरों से अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा। वामदेव ऋषि संसार में आकर एवं अन्त में शरीर के नष्ट होने पर संसार से ऊपर उठ गये तथा भगवान के परमधाम में पहुँचकर सर्वथा आप्तकाम होकर अमृत हो गये। जन्म मृत्यु के चक्र से सदा के लिये छूट गये।

उपास्य देव कौन ? – तीसरे अध्याय में बताया गया है कि निम्न में उपास्य देव कौन है?

(1) वह आत्मा (परमात्मा) जिसने सृष्टि की रचना की अथवा (2) वह आत्मा (जीवात्मा) जिसको सजीव पुरुष के रूप में परमात्मा ने प्रकट किया।

निर्णयार्थ ऋषियों का विचार – उक्त प्रश्न पर विचार कर ऋषि इस निर्णय पर पहुँचे कि सबको उत्पन्न करके, सब प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाले और उसकी रक्षा करने वाले ज्ञानरूप परमात्मा ही उपास्य देव हैं। यह समस्त ब्रह्माण्ड उस परमात्मा की शक्ति से ही शक्तियुक्त है। धरती पर जितने भी जीव हैं वे

परमात्मा से शक्ति पाकर ही अपने-अपने कार्य में समर्थ होते हैं। अतः वे ही उपास्य देव हैं।

7. माण्डूक्योपनिषद्

यह उपनिषद् अथर्ववेद के अन्तर्गत है। इसमें '**ओंकार**' को अक्षर ब्रह्म परमात्मा का श्रेष्ठ सम्बोधन सिद्ध करते हुए विभिन्न चरणों एवं मात्राओं का विवेचन किया गया है।

परमात्मा के चार चरणों की कल्पना - इस उपनिषद् में परब्रह्म परमात्मा के समग्र रूप तत्व को समझने के लिये उनके चार पादों की कल्पना की गई है। **अ-उ-म्** इन तीन मात्राओं के साथ और मात्रा रहित उसके अव्यक्त रूप के साथ परब्रह्म परमात्मा के एक-एक पाद की समता दिखाई गई है। इसलिये इसमें कहा गया है कि '**ॐ**' यह अक्षर पूर्ण ब्रह्म अविनाशी परमात्मा है।

इसके पहले श्लोक में बताया गया है कि 'ॐ' यह अक्षर अविनाशी ब्रह्म का प्रतीक है। उसकी महिमा को प्रकट करने वाला यह विश्व ब्रह्माण्ड है। भूत, भविष्य और वर्तमान तीन कारकों वाला यह संसार भी ॐ कार ही है। तीन कालों से अन्य जो भी तत्व है, वह भी ॐ कार ही है। ब्रह्म और आत्मा यह चार चरणों वाला क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म, कारण एवं अव्यक्त रूपों में प्रभावी है।

प्रथम चरण (स्थूल जगत् 'वैश्वानर') :- स्थूल, वैश्वानर (प्रकट विश्व का संचालक) है, जो जाग्रत स्थान में रहने वाला, बाहर का बोध कराने वाला (बहिः प्रज्ञ) तथा सात रंगों (सप्त लोक या सप्त किरणों से युक्त) उन्नीस मुखों (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण तथा चार अन्तःकरण) वाला तथा **स्थूल** का भोक्ता है।

दूसरा चरण (हिरण्यगर्भ रूप 'तैजस्') :- स्वप्न के सदृश अव्यक्त विश्व जिसका अधिष्ठान (स्थान) है, जिसके द्वारा अदृश्य लोक का ज्ञान अन्तः चक्षुओं से होता है, जो सूक्ष्म विषयों (वासनादि) का भोक्ता है, और ज्योतिर्मय है वही **तेजस्** ब्रह्म या आत्मा का दूसरा चरण है।

तीसरा चरण (आनन्दमय 'प्राज्ञ') :- जिस अवस्था में मनुष्य किसी भोक्ता अवस्था की कामना नहीं करता और न ही स्वप्न देखता है, ऐसी सुषुप्तावस्था में जो एकाग्रवृति वाला, जो एकमात्र आनन्द का ही भोक्ता है, जिसका मुख तेजोमय चैतन्य है, वह **प्राज्ञ** ही ब्रह्म का तीसरा चरण है। (जिस अवस्था में सोया हुआ मनुष्य किसी प्रकार के भोग की न तो कामना करता है और न ही अनुभव करता है

तथा किसी प्रकार का स्वप्न भी नहीं देखता, ऐसी अवस्था को सुषुप्ति कहते हैं।)

चतुर्थ चरण (निर्गुण-निराकार 'निर्विशेष' स्वरूप) :- जो परब्रह्म परमात्मा स्थूल जगत् में परिपूर्ण हैं, वे ही सूक्ष्म और कारण जगत् के अन्तर्यामी और अधिष्ठाता भी हैं, तथा इन सबसे अलग **निर्विशेष परमात्मा** हैं। वे सर्वशक्तिमान् भी हैं, और सब शक्तियों से रहित भी। वे सगुण भी हैं और निर्गुण भी। वे साकार भी हैं और निराकार भी। वास्तव में वे हमारी बुद्धि व तर्क से सर्वथा अतीत (परे) हैं। वही ब्रह्म का चतुर्थ चरण है। वही आत्मा या परमात्मा है, वही जानने योग्य है।

ओंकार के तीन पाद :- जिस प्रकार परब्रह्म परमात्मा के चार पदों का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ अक्षर के प्रकरण में तीन मात्राओं वाला ओंकार है। अ-उ-म् ये तीनों मात्राएँ ही उनके तीन पाद हैं। उनके तीनों पाद ही ओंकार की तीन मात्राएं है। जिस प्रकार ओंकार अपनी मात्राओं से अलग नहीं, उसी प्रकार अपने पादों से परमात्मा अलग नहीं। यहां पाद और मात्रा की एकता ओंकार के द्वारा परब्रह्म परमात्मा की उपासना के लिये की गई है।

ओंकार के निराकार रूप की चौथे पाद के साथ एकता :- ओंकार की किस मात्रा से ब्रह्म की किस पाद से एकता है और वह क्यों है, नौ से ग्यारह के श्लोकों में इसकी व्याख्या की गई है।

'वैश्वानर' नामक पहले चरण की 'अ' के साथ एकता - ओंकार की पहली मात्रा 'अ' समस्त जगत् के जितने भी शब्द है, उन सब में व्याप्त है। इसी प्रकार इस स्थूल जगत् रूप विराट शरीर में वैश्वानर रूपी परमात्मा व्याप्त है। इस प्रकार 'अ' की और जगत् की भाँति प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले इस स्थूल रूप शरीर में व्याप्त वैश्वानर नामक प्रथम पाद की एकता होने के कारण 'अ' ही पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर का पहला पाद है।

'तैजस्' नामक दूसरे चरण की 'उ' के साथ एकता - परमात्मा के नाम रूप ओंकार की दूसरी मात्रा 'उ' है, यह 'अ' से उत्कृष्ट (ऊपर उठा हुआ) होने के कारण श्रेष्ठ है तथा 'अ' और 'म' के बीच होने के कारण उभय स्वरूप है। इसी प्रकार 'तैजस्' वैश्वानर से उत्कृष्ट है तथा वैश्वानर व प्राज्ञ के मध्य होने के कारण उभय सम्बन्धी भी है। इसी समानता के कारण 'उ' ही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा का दूसरा चरण है।

'प्राज्ञ' नामक तीसरे चरण की 'म' के साथ एकता - 'म' का उच्चारण होते-होते मुख बन्द हो जाता है। 'अ' तथा 'उ' दोनों उसमें विलीन हो जाते हैं। अतः यह इन दोनों मात्राओं को विलीन करने वाला है। इसी प्रकार सुषुप्तस्थानीय कारण

जगत् का अधिष्ठाता 'प्राज्ञ' भी सर्वज्ञ है। कारण- जगत् से ही सूक्ष्म और स्थूल जगत् की उत्पत्ति होती है और उसी में उसका लय होता है। इस प्रकार 'म' की और कारण -जगत् के अधिष्ठाता 'प्राज्ञ' नामक तीसरे पाद की समता होने के कारण 'म' रूप तीसरी मात्रा ही पूर्ण ब्रह्म का तीसरा पाद है।

मात्रा रहित ओंकार की परमेश्वर के चौथे चरण 'निर्विशेष' के साथ एकता- परमात्मा के नामात्मक ओंकार का जो मात्रारहित व बोलने में न आने वाला निराकार स्वरूप है, वही मन-वाणी का अविषय होने से व्यवहार में न लाया जा सकने वाला, प्रपंच से अतीत, कल्याणमय व अद्वितीय- निर्गुण-निराकार रूप चौथा पाद है। जिस प्रकार तीन मात्राओं की पहले बताये अनुसार तीन पादों के साथ समता है, उसी प्रकार ओंकार के निराकार स्वरूप की परब्रह्म परमात्मा के निर्गुण-निराकार व निर्विशेष रूप चौथे पाद से समता है।

इस प्रकरण में उन असीम पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के चार पादों की कल्पना करके उनके स्थूल, सूक्ष्म और कारण- इन तीनों सगुण रूपों की और निर्गुण-निराकार रूप की एकता दिखाने के लिये तथा उनकी सर्वभुवन- सामर्थ्यरूप जो शक्ति है, वह सर्वथा अभिन्न है- यह भाव दिखाने का प्रयास किया गया है।

जिस प्रकार ओंकार की तीन मात्राओं की तीन पादों के साथ समता है, उसी प्रकार ओंकार के निराकार स्वरूप की परब्रह्म परमात्मा के निर्गुण व निराकार चौथे पाद के साथ समता है। इस प्रकरण में पूर्ण परमात्मा के चार पादों की कल्पना उनके स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों गुण- रूपों को तथा निर्गुण-निराकार स्वरूप की एकता दिखाने के लिये की गई है।

आठवें मंत्र में वर्णित ब्रह्म या आत्मा की मात्राएँ अनेक अर्थों में प्रकट होती हैं। ॐ में तीन मात्राएं अ-उ-म् हैं। विश्व त्रिआयामी (थ्री डायमेंशनल) है। सापेक्षवाद (थियोरी ऑफ रिलेटिविटी) के अनुसार समय (time) आयतन (space) तथा भार (mass) यह तीन आयाम है । समय की भूत, वर्तमान व भविष्य तीन मात्राएं हैं। आयतन में लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई यह तीन आयाम हैं। गुण रूप में भी सत्, रज, तम है। इस प्रकार यह ब्रह्म तीन मात्राओं में व्यक्त है, यह कथन प्रमाणित होता है।

- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

8. श्वेताश्वतरोपनिषद्

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा के अन्तर्गत है। इसमें कुल छः अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में जगत् का मूल कारण जानने की जिज्ञासा का वर्णन है। इस अध्याय के नौवें मंत्र में जीवात्मा, परमात्मा तथा प्रकृति इन तीनों के स्वरूप का वर्णन किया गया है। इस मंत्र में बताया गया है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। जीव अल्पज्ञ व अल्प शक्तिवाला है, ये दोनों ही अजन्मा हैं। इसके सिवा एक तीसरी शक्ति भी अजन्मा है, जिसे प्रकृति कहते हैं। यद्यपि ये तीनों ही अजन्मा व अनादि हैं, फिर भी ईश्वर शेष दो से विलक्षण है। इस एक को जानने से सबका ज्ञान हो जाता है। मनुष्य भोक्ता (जीवात्मा), भोग्य (जड़) और ईश्वर (इन दोनों के प्रेरक) को जानकर सब कुछ जान लेता है। फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता। यही मुण्डकोपनिषद् के प्रथम मुण्डक के तीसरे मंत्र में उठाये गये प्रश्न **'किसके जान लेने पर सब कुछ जाना हुआ हो जाता है'** (**कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति**) का उत्तर है। इसी अध्याय के पन्द्रहवें मंत्र में सदाचार व सत्यभाषण की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि जो साधक विषयों से विरक्त होकर सदाचार, सत्यभाषण तथा तपस्या द्वारा साधन करते हुए उनका निरंतर ध्यान करता है, वही परमपिता परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

ध्यान-योग किस प्रकार करें ?:- इस उपनिषद् के दूसरे अध्याय के पहले पांच मंत्रों में परमात्मा से प्रार्थना करने का प्रकार बताया गया है। छठे मंत्र में ध्यान की स्थिति का वर्णन करके सातवें में उस ध्यान में लग जाने का उपदेश दिया है। ध्यान - योग का साधन करने वालों को किस प्रकार बैठकर कैसे ध्यान करना चाहिये, इस जिज्ञासा पर ऋषि कहते हैं- जो ध्यान का साधन करता है उस साधक को चाहिये कि वह सिर, गले और छाती को ऊँचा उठाये रखे, शरीर को स्थिर तथा सीधा रखे क्योंकि इसके बिना आलस्य, निद्रा तथा विघ्न आते हैं। इसके बाद समस्त इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर उनका मन के द्वारा हृदय में निरोध कर लेना चाहिये। फिर ऊँ कार रूप का जप और परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। (देखें गीता 6/12,13,14)

योग मार्ग की सिद्धियाँ :- दसवें मंत्र में कैसे स्थान व कैसी भूमि पर बैठ कर साधना करनी चाहिये, यह बताया गया है। बारहवें व तेरहवें मंत्र में योग मार्ग की प्रारम्भिक सिद्धियों का वर्णन है। यथा - ध्यान योग का साधन करते-करते पृथ्वी, जल, आकाश, तेज और वायु इन पाँच महाभूतों पर अधिकार हो जाता है, उस समय योगी के शरीर में न बुढ़ापा आता है, न रोग होता है, और न ही उसकी मृत्यु होती है।

अर्थात् उसकी इच्छा के बिना उसका शरीर समाप्त नहीं हो सकता। उसको इच्छा–मृत्यु प्राप्त होती है, उसका शरीर हल्का हो जाता है, शरीर में भारीपन या आलस्य का भाव नहीं रहता। भौतिक पदार्थो में उसकी आसक्ति नष्ट हो जाती है। उसके शरीर का वर्ण (रंग) उज्ज्वल हो जाता है। स्वर अत्यन्त स्पष्ट व मधुर हो जाता है। शरीर से बहुत अच्छी गंध निकलकर चारों ओर फैल जाती है।

परमेश्वर की व्यापकता :– उपनिषद् के तीसरे अध्याय में ऋषि परमेश्वर की व्यापकता का वर्णन करते है कि यद्यपि ईश्वर एक है, तथापि उसकी सब जगह आँखें हैं, सब जगह मुख हैं, सब जगह हाथ और पैर हैं। उसका भक्त जहाँ कहीं भी उन्हें बुलाना चाहे, वे पहुँच जाते हैं। जहाँ कहीं भी भक्त भोजन के लिये भोग्य वस्तु समर्पित करता है, उसे वे वहीं भोग लगा लेते हैं। उस परम्–पुरुष परमेश्वर के हजारों सिर, हजारों आंखें और हजारों पैर हैं। अर्थात् अवयवों से रहित होने पर भी सभी अंग, अनन्त और असंख्य हैं। वह परमेश्वर समस्त जगत् को सब ओर से घेर कर सर्वत्र व्याप्त है तथा हृदयाकाश में स्थित है। मनुष्य को उन्हीं की शरण ग्रहण करनी चाहिये। यही मनुष्य के शरीर का अच्छे से अच्छा उपयोग है। भगवान् ने गीता में भी यही उपदेश दिया है। (देखें गीता 13/14)

छठे अध्याय के पन्द्रहवें मंत्र में बताया है कि इस लोक के मध्य में एक ही हंस (परमात्मा) है। वह जल में सन्निहित अग्नि के समान अगोचर है। उसे जानकर साधक मृत्यु रूप बंधनों को पार कर जाता है। इससे भिन्न मोक्ष प्राप्ति का दूसरा मार्ग नहीं है। शान्तिकुंज हरिद्वार के पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने इस मंत्र की वैज्ञानिक व्याख्या की है। उनके अनुसार जल की उत्पत्ति अग्नि से होती है (अग्नेराप:) और अग्नि जल में समाविष्ट है (बड़वानल के रूप में) यह सिद्धान्त विज्ञान सम्मत है। यथा हाईड्रोजन+आक्सीजन+ ताप = पानी)

चेतना की सूक्ष्म इकाई :–चेतना की सूक्ष्म इकाई का वर्णन पांचवें अध्याय के नवें मंत्र में किया गया है। मंत्र के अनुसार एक बाल की नोक के सौवें भाग को पुन: सौ भाग करने पर जो कल्पित भाग बनते हैं, चेतना का स्वरूप उसी के बराबर अतिसूक्ष्म समझना चाहिये, परन्तु सूक्ष्म होने पर भी वह स्थूल वस्तुओं में सर्वत्र व्याप्त रहता है। चेतना की सूक्ष्म इकाई की सूक्ष्मता का अनुमान करने के लिये ऋषि ने यह उदाहरण दिया है। वस्तुत: चेतना और उसकी सूक्ष्मतम इकाई की भी कोई तुलना नहीं है। क्योंकि बाल की नोक के दस हजार भागों में से एक भाग आकाश में जितने स्थान को रोकता है, उतना भी जीवात्मा नहीं रोकता।

परमात्मा को प्राप्त करने के साधन – (कर्मयोग व ज्ञानयोग) – नित्य चेतन व सर्वशक्तिमान् परमात्मा को प्राप्त करने के दो साधन है – एक कर्मयोग व दूसरा ज्ञानयोग । भक्ति तो दोनों में अनुस्यूत (सम्मिलित) है। इसलिये इसका अलग वर्णन नहीं किया गया है।कर्मयोगी अपने कर्त्तव्य कर्मो को आरम्भ करके उनको और अपने सब प्रकार के अहंता, ममता, आसक्ति आदि भावों को परमेश्वर में लगा देता है, अर्थात् उनका समर्पण कर देता है। इससे उन कर्मो के साथ साधक का सम्बन्ध नहीं रहने से उनके फल के प्रति उसकी आसक्ति नहीं रहती। कर्मो के प्रति आसक्ति नहीं रहने से संचित कर्म–संस्कारों का सर्वथा नाश हो जाता है। कर्मो का नाश होने से वह परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। जिसके प्रभाव से यह संसार निरन्तर घूम रहा है, वे धर्म की वृद्धि तथा पाप का नाश करने वाले तथा समस्त जगत् के आधार हैं। यह सम्पूर्ण विश्व उन्हीं की सत्ता से टिका हुआ है। वे हमारे हृदय में विराजमान है। इस प्रकार उन्हें जानकर ज्ञानयोगी परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

9. तैत्तिरीयोपनिषद्

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के अन्तर्गत तैत्तिरीय आरण्यक का अंग है। इसके सातवें, आठवें और नवें अध्याय को तैत्तिरीय उपनिषद् कहते है। इसमें तीन वल्लियाँ क्रमश: (1) शिक्षा वल्ली (2) ब्रह्मानन्द वल्ली तथा (3) भृगु वल्ली हैं। प्रत्येक वल्ली में अनुवाक् (मंत्र) दिये गये हैं।

1. शिक्षा वल्ली

शुद्ध उच्चारण पर बल :– शिक्षा वल्ली के दूसरे अनुवाक में उच्चारण के नियमों का वर्णन किया गया है। इसमें वेद के प्रत्येक शब्द के उच्चारण का सावधानीपूर्वक प्रयोग करने पर बल दिया है। बोलते समय किस वर्ण का प्रयोग किस जगह क्या भाव प्रकट करने के लिये उच्च स्वर से उच्चारण करना चाहिये, किसका मध्य स्वर से तथा किसका निम्न स्वर से उच्चारण करना उचित है, इस बात का ध्यान रखते हुए उच्चारण करने पर बल दिया गया है। मंत्रों में स्वर भेद होने से उनका अर्थ बदल जाता है।

विद्यार्थी द्वारा प्रार्थना :– चतुर्थ अनुवाक के पहले मंत्र में बुद्धि बल और शारीरिक बल की प्राप्ति के लिये ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) द्वारा प्रार्थना की गई है। प्रार्थना है – इन्द्र मुझे मेधा से सम्पन्न करें। अर्थात् परमात्मा मेरे द्वारा पढ़े गये और समझे गये भावों को धारण करने की शक्ति दें। मेरा शरीर रोग रहित हो, मेरी जिह्वा

मधुमती हो, मैं अपने कानों द्वारा कल्याणमय शब्दों को सुनता रहूँ। हे देव, तू सुने हुए उपदेश की रक्षा कर (**श्रुतं मे गोपाय**) अर्थात् ऐसी कृपा कर कि मुझे जो उपदेश सुनने को मिले, मैं उसका स्मरण रखता हुआ, उसके अनुसार अपना जीवन बना सकूँ।

आचार्य द्वारा प्रार्थना :- आचार्य को ब्रह्मचारियों के हितार्थ किस प्रकार हवन करना चाहिये- यह इसी अनुवाक के तीसरे मंत्र में बताया गया है। आचार्य परमात्मा से प्रार्थना करता है कि - उत्तम ब्रह्मचारी विद्याध्ययन के लिये मेरे पास आयें, ब्रह्मचारी इन्द्रिय दमन करने वाले हों, ब्रह्मचारी मनन करने वाले हों। इस प्रकार के मंत्रों का उच्चारण करते हुए आचार्य द्वारा 'स्वाहा' शब्द के साथ आहुतियाँ दी जाती हैं।

चतुर्थ अनुवाक् के चौथे एवं पाँचवें मंत्र में आचार्य को स्वयं के हित के लिये किन मंत्रों द्वारा हवन करना चाहिये, उसका वर्णन है। इसमें आचार्य कहता है, 'लोगों में मैं यशस्वी बनूँ, मुझसे ऐसा कोई आचरण न बने, जो मेरे यश में धब्बा लगाने वाला हो (**यशो जनेऽसानी स्वाहा**)। सम्पत्तिशाली बनूँ। आपके दिव्य स्वरूप में मैं प्रविष्ट हो जाऊँ और आपका दिव्य स्वरूप मुझमें प्रविष्ट हो जाये। आपके दिव्य रूप में ध्यानस्थ होकर मैं अपने आपको विशुद्ध बना लूँ। मेरे पास सब ओर से ब्रह्मचारी आयें और मैं उनको विद्याभ्यास कराकर तथा कल्याण का उपदेश देकर अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहूँ।

स्वाध्याय की अनिवार्यता :- नवम् अनुवाक् में ऋषि ने स्वाध्याय की अनिवार्यता प्रकट की है। अपने कर्त्तव्य कर्म के साथ-साथ व्यक्ति को स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये, क्योंकि शास्त्रों के अध्ययन से ही मनुष्य को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होता है। अतः स्वाध्याय करते हुए सदाचार का पालन करना, सत्यभाषण करना तथा इन्द्रियों को वश में रखने की शिक्षा दी गई है। साथ ही अतिथि की यथायोग्य सेवा करना, सभी के साथ उचित लौकिक व्यवहार करना आदि सद्कर्मो की शिक्षा पर बल दिया है।

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च।
अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च।

दीक्षान्त उपदेश :- आचार्य वेद का भलीभाँति अध्ययन कराकर समावर्तन - संस्कार (दीक्षान्त समारोह) के समय गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके गृहस्थ धर्म का पालन करने की अपने छात्र को शिक्षा देते हैं। आचार्य कहते हैं - पुत्र ! तुम सदा सत्यभाषण करना। आपत्ति पड़ने पर भी झूठ का आश्रय नहीं लेना। स्वाध्याय

अर्थात् वेदों का अध्ययन, संध्यावंदन, गायत्री जप, भगवन्नाम जपकीर्तन आदि में कभी प्रमाद मत करना। सन्तान परम्परा को सुरक्षित रखना, एवं देवकार्य तथा पितृ–कार्य से कभी नहीं चूकना । यथा – **सत्यंवद । धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः** (01/11/01) पुत्र ! तुम माता में देवबुद्धि रखना तथा अतिथि में देवबुद्धि रखना। अर्थात् इन्हें ईश्वर की प्रतिमूर्ति समझकर श्रद्धा व भक्तिपूर्वक सदा इनकी आज्ञा का पालन करते रहना । यथा – **मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव।** (1/11/12)

2. ब्रह्मानन्दवल्ली

पंचकोश :– ब्रह्मानन्दवल्ली में हृदय में स्थित परमात्मा का महत्व समझाते हुए अन्नमय कोश, प्राणमय कोष, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश एवं आनन्दमय कोश इन पंचकोशों के कलेवर का विवेचन है। आनन्द की मीमांसा में लौकिक आनन्द से लेकर क्रमशः उसके श्रेष्ठ स्वरूप के वर्णन के साथ आनन्द की पराकाष्ठा परम–आनन्द (ब्रह्मानन्द) तक की इसमें विवेचना की गई है। परमात्मा के आनन्द स्वरूप को समझने के लिये यह प्रकरण बहुत ही उपयोगी है।

इसमें समझाया गया है कि केवल सम्पत्ति से आनन्द प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसके लिये समग्र व्यक्तित्व ही श्रेष्ठ होना चाहिये। ऋषि कहते हैं कि जो ज्ञान सम्पन्न है तथा कामनाओं से बंधा नहीं है, (**श्रोतियस्य च अकाम हतस्य**) उसी के लिये यह श्रेष्ठतर आनन्द है। अज्ञानी तो छोटे–छोटे हीन सुखों में ही भटक जाता है, श्रेष्ठ आनन्द तक पहुँचता ही नहीं। कामनाओं से युक्त व्यक्ति श्रेष्ठ आनन्द की अनुभूति कर ही नहीं सकता। जगत् में जितने प्रकार के आनन्द हैं, चाहे वे कितने ही बड़े क्यों न हो, उस पूर्ण आनन्दस्वरूप परमात्मा के आनन्द की तुलना में बहुत ही तुच्छ हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में भी कहा है –"समस्त प्राणी इसी (परमात्मा सम्बन्धी) आनन्द के किसी एक अंश को लेकर ही जीते हैं।"

इस आनन्द को जानने वाला ज्ञानी पुरुष सर्वथा निर्भय हो जाता है। वह लोभ व भयजनित संताप से ऊँचा उठ जाता है। इस प्रकार यहां परमात्मा के परम आनन्द स्वरूप को जानने का फल बताया है। पंचकोश की व्याख्या भृगुवल्ली में की गई है।

3. भृगुवल्ली

भृगुवल्ली में भृगु की ब्रह्मज्ञान की जिज्ञासा का समाधान उसके पिता वरुण ने किया है। वरुण ने ब्रह्म के तत्व ज्ञान को समझाकर भृगु को तपश्चर्या द्वारा

स्वयं अनुभव करने का निर्देश दिया है। उसने क्रमशः अन्न, प्राण, मन, विज्ञान एवं आनन्द को ब्रह्म के रूप में अनुभव किया। उपाख्यान इस प्रकार है -

भृगु ऋषि को आत्मज्ञान (पंचकोश की व्याख्या) -

भृगु नाम के एक प्रसिद्ध ऋषि थे, जो वरुण के पुत्र थे। उनके मन में परमात्मा को जानने की उत्कट इच्छा हुई। वे अपने पिता के पास गये। उनके पिता वरुणदेव भी वेद को जानने वाले ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष थे प्रार्थना की - 'भगवन् ! मैं ब्रह्म को जानना चाहता हूँ।' तब वरुण ने कहा - 'अन्न, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, मन और वाणी, ये सभी ब्रह्म की उपलब्धि के द्वार (साधन) हैं।' समस्त प्राणी जिनसे उत्पन्न होते हैं, जिनके आश्रय से जीवन जीते हैं और अन्त में जिसमें लय हो जाते हैं उस ब्रह्म को स्वयं ही तत्वतः जानने की अर्थात् पाने की इच्छा कर। पिता का उपदेश पाकर भृगु तपस्या करने लगे। क्रमशः निम्न सोपानों में वे अपना अनुसंधान करते हैं -

प्रथम सोपान (अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्) - तपस्या के अनन्तर भृगु को बोध हुआ कि अन्न ही ब्रह्म है। सभी प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं, अन्न से ही वे जीवित रहते हैं और मृत्यु आने पर अन्नस्वरूप इस पृथ्वी में ही समा जाते हैं। अतः अन्न ही ब्रह्म है। जब यह बात पिता को बताई तो वरुण ने भृगु को पुनः तपस्या करने के लिये कहा।

द्वितीय सोपान (प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्) - इस बार भृगु को बोध हुआ कि प्राण ही ब्रह्म है। यथार्थ में प्राणी प्राण से ही उत्पन्न होते हैं, बाद में प्राण के कारण जीवित रहते हैं और अन्त में इस लोक से प्रयाण कर प्राण में लीन हो जाते हैं। पिता वरुण इस बार भी सन्तुष्ट नहीं हुए एवं पुनः गवेषणा करने को कहा।

तीसरा सोपान (मनो ब्रह्मेति व्यजानात्) - इस बार भृगु ने साधना के द्वारा यह निश्चय किया कि मन ही ब्रह्म है। पिता द्वारा बताये गये ब्रह्म के सारे लक्षण मन में पाये जाते हैं। पहले की भांति इस बार भी भृगु अपने पिता के पास गये और कहा - 'मन ही ब्रह्म है।' पिताजी ने सोचा कि पुत्र पहले की तुलना में इस बार गहराई में उतरा है किन्तु इसे पुनः तपस्या करनी चाहिये। अतः पुत्र को पुनः साधना करने का आदेश दिया।

चतुर्थ सोपान (विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्) - भृगु ने तपस्या द्वारा यह निश्चय किया कि विज्ञान स्वरूप चेतन जीवात्मा ही ब्रह्म है। यदि जीवात्मा न रहे तो ये मन, इन्द्रियाँ, प्राण आदि कोई भी नहीं रह सकते। जीवात्मा के निकल जाने पर मृत शरीर में मन, इन्द्रिय, प्राण आदि क्रियाशील नहीं रहते। अतः विज्ञान स्वरूप जीवात्मा ही ब्रह्म है। यह सोचकर भृगु पहले की भांति अपने पिता के पास आये

और अपना निर्णय बताया। पिता ने सोचा– इस बार पुत्र ब्रह्म के स्वरूप के और निकट पहुंचा है। इसका चिन्तन स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के जड़ तत्व से ऊपर उठकर चेतन जीवात्मा तक तो पहुंच गया किन्तु ब्रह्म का स्वरूप तो इससे भी विलक्षण है। इसे अभी और तपस्या करने की आवश्यकता है। अतः पुत्र को पुनः गवेषणा करने को कहा।

पंचम् सोपान (आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्) – इस बार भृगु ने गहन चिन्तन किया और निष्कर्ष पर पहुंचे कि आनन्द ही ब्रह्म है। ये आनन्दमय परमात्मा ही सबके अन्तरात्मा में हैं। अन्न, प्राण, मन, विज्ञान आदि में ब्रह्म के आंशिक लक्षण पाये जाते हैं लेकिन ब्रह्म के पूर्ण लक्षण तो आनन्द में ही घटित होते हैं। इस प्रकार भृगु ऋषि ब्रह्म ज्ञान से पूर्ण हुए। भृगु ऋषि द्वारा अनुभूत तथा देव वरुण द्वारा वर्णित यह ब्रह्मविद्या परमव्योम (व्यापक आकाश) में प्रतिष्ठित है।

ऋषि यहाँ पर यह स्पष्ट करते हैं कि श्रेष्ठतम ब्रह्मविद्या किसी व्यक्ति विशेष के आश्रित नहीं है। भृगु की तरह कोई भी साधक अपनी साधना द्वारा उसका बोध प्राप्त कर सकता है। साथ ही यह भी कि ज्ञान पुस्तकों में नहीं है, अनुभव द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वही यथार्थ ज्ञान है। ज्ञान प्राप्त करने की अपने यहां यही परम्परा रही है। ज्ञान पहले अनुभव हुआ है और बाद में लिखा गया है। यहां शिक्षा प्राप्त करने की प्राचीन एवं ठोस शिक्षा पद्धति पर भी प्रकाश डाला गया है।

अन्न का महत्व :– भृगुवल्ली के सातवें, आठवें व नवें अनुवाक् में अन्न की गरिमा बताई गई है। अन्न ही प्राण है और प्राण ही अन्न है। शरीर और प्राण का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होने से अन्न में ही अन्न स्थित है। ठीक वैसे ही जैसे पृथ्वी में आकाश और आकाश में पृथ्वी स्थित है। इस सम्बन्ध में पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य का कहना है कि आकाश में पृथ्वी तो प्रत्यक्ष दिखती है। पृथ्वी में आकाश तत्व समझने के लिये परमाणु संरचना समझनी होगी। परमाणु का केन्द्र नाभिक होता है, और उसके आस–पास इलेक्ट्रॉन घूमते हैं। नाभिक तथा इलेक्ट्रोनों के बीच जो स्थान खाली होता है वह स्थान ही आकाश है। इस प्रकार हर ठोस पदार्थ में पर्याप्त आकाश होता है।)

उपनिषद् का ऋषि कहता है कि जो मनुष्य इस रहस्य को समझ लेता है वह शरीर और प्राण का ठीक–ठीक उपयोग कर सकता है। वरुण ने अन्नादि का दुरुपयोग न करके उसके सुनियोजन का लाभ भृगु को समझाया। वरुण कहते हैं कि व्यक्ति को व्रत लेना चाहिये कि – (1) मैं कभी अन्न की निन्दा नहीं करूँगा (2) मैं कभी अन्न का दुरुपयोग नहीं करुँगा । (3)अन्न का परित्याग (झूठन)

नहीं करुंगा। अर्थात् अन्न का आदर करुंगा। (4) मैं अन्न-भण्डार को बढ़ाने में योगदान दूँगा।

10. छान्दोग्य उपनिषद्

सामवेद के तलवकार शाखा के अन्तर्गत छांदोग्य ब्राह्मण के अंश को इस उपनिषद के रूप में मान्यता दी गई है। इस ब्राह्मण में कुल 10 अध्याय हैं जिसमें से अन्तिम आठ अध्याय उपनिषद् रूप में लिये गये हैं। इस उपनिषद् के आठ अध्यायों में से पहले पांच में उपासनाओं की प्रधानता है और अन्तिम तीन में ज्ञान की।

इसमें उपासना और ज्ञान दोनों विषयों का विवेचन है। सुगमता से समझने के लिये जगह-जगह आख्याएँ दी गई हैं। इससे विषय को समझने में मदद तो मिलती ही है, साथ में शिक्षा भी मिलती है।

आपद् धर्म - आपद् धर्म उस धर्म को कहते हैं, जो प्राणों को बचाने का कोई दूसरा उपाय न रहने पर किया जाता है, जैसा कि उषस्तिकी ने किया। एक बार कुरु देश में जहाँ उषस्तिकी रहता था, अतिवृष्टि के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि कई दिनों तक उसे निराहार रहना पड़ा। जब प्राण-संकट हुआ, उस समय महावत की झूठी उड़द खानी पड़ी। महावत जब झूठा जल देने लगा तो उषस्तिकी ने यह कह कर मना कर दिया कि यह जल तो झूठा है। इस पर महावत ने शंका की कि क्या झूठे उड़द की दाल खाने से दोष नहीं लगा? तो वे बोले - **न वा अजीविष्यमिमा न खादन्निति होवाच कामो म उद्पानमिति।।** (1-10-14) ''अवश्य ही इस उड़द को न खाने से मैं जीवित न रहता। पर पीने का जल तो मुझे सर्वत्र मिल जाता है।'' इस प्रकार यहां यह आदर्श उपस्थित किया गया है कि मनुष्य को आचार सम्बन्धी नियमों की उपेक्षा तभी करनी चाहिए, जब प्राण रक्षा का कोई दूसरा उपाय न हो। शायद इसलिये कहा है - **'आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति'।**

रैक्व (गाड़ी खींचने वाले) से शिक्षा प्राप्त करना :- सनातन शिष्टाचार के अनुसार उपदेश देने का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही था। किन्तु यदि उत्कृष्ट विद्या किसी अन्य के पास भी हो तो वह ली जा सकती है, ऐसी परम्परा थी। यथा - राजा जानश्रुति ने विद्या प्राप्ति के लिये गाड़ी वाले रैक्व का पहले तिरस्कार तक सहन किया और बाद में उसे प्रसन्न करके उससे विद्या ग्रहण की, यद्यपि वह ब्राह्मण नहीं था।

सत्यवचन का महत्व :- सत्यकाम जाबाल ने जब अपनी माँ से पूछा कि माँ मेरा गोत्र क्या है? मैं ब्रह्मचारी बनकर गुरुकुल में रहकर शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ। माता ने जवाब दिया कि बेटा - मैं उस समय अतिथियों की सेवा में अत्यधिक

व्यस्त रहने के कारण तुम्हारे पिता से गोत्र के सम्बन्ध में पूछ नहीं सकी। बाद में तुम्हारे पिता दिवंगत हो गये। अतः मैं नहीं जानती कि तुम्हारा गोत्र क्या है? मैं जाबाला नाम की हूँ और तुम सत्यकाम हो, अतः आचार्य से कहना, 'मैं सत्यकाम जाबाल हूँ।' सत्यकाम गौतम ऋषि के पास गये और उन्हें सत्य-सत्य बता दिया। गौतम ऋषि ने कहा- तुमने सत्य वचनों का परित्याग नहीं किया है अतः मैं तुझे शिष्य बनाऊँगा। अर्थात् गोत्र की जानकारी न होते हुए भी पात्रता के आधार पर शिष्य बनाने की परम्परा उस समय थी।

गौ-सेवा से ब्रह्मज्ञान :- गाय की सेवा से कितना बड़ा चमत्कार होता है, यह इस वृत्तान्त से स्पष्ट होता है। जब सत्यकाम जाबाल को उसके गुरु गौतम ऋषि ने कहा कि ये लो चार सौ गायें और जब तक ये सहस्र गायें न हो जायें, वन में इन्हें चराते रहना। सत्यकाम जब तक सहस्र गायें नहीं हुईं वन में भ्रमण करते रहे। सहस्र गायें होने पर जब वह वापस लौटने लगा तो मार्ग में ही क्रमशः वृषभ, अग्निदेव, हंस और मद्गु (जल पक्षी) से उसे ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हुआ। तदनन्तर बालक अपने गुरु के पास पहुँचा। गुरु ने उसे देखते ही कहा- 'वत्स! तुम्हारा मुख ब्रह्मवेत्ता के समान चमक रहा है। तुम्हें किसने शिक्षा दी?' सत्यकाम ने कहा- 'मानवेतर प्राणियों ने। किन्तु मैं चाहता हूँ कि आप मुझे उपदेश दें। क्योंकि गुरु से प्राप्त ज्ञान ही श्रेयस (श्रेष्ठता) की ओर ले जाता है।' तब ऋषि ने उसे ज्ञान की शिक्षा दी।

इस सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि - थोड़ी देर के लिये हम इन रूपकों को (यथा - वृषभ, अग्नि, हंस, मृद्गु ने क्या सिखाया) हटा दें और केवल केन्द्रीय तत्व की ओर ध्यान दें तो तत्कालीन विचार का हमें सूत्र मिलता है कि 'सारी ध्वनियाँ हमारे अन्दर हैं'। इस सत्य का गहराई से विचार करने पर हम यही तत्व पायेंगे कि यह वाणी वास्तव में हृदय में से ही उठी है और शिष्य सारे समय यही समझता रहा कि वह सत्य के सम्बन्ध में उपदेश सुन रहा है। इन वाणियों को बाह्य जगत से आती हुई समझा, लेकिन वह सदा उसके अन्दर थीं।

सनत्कुमार - नारद संवाद :- उपनिषद् के सप्तम् अध्याय में सनत्कुमार और नारद का संवाद है। देव ऋषि नारद आत्मज्ञान की जिज्ञासा से सनत्कुमार के पास जाते हैं। सनत्कुमार नारद से पूछते हैं - पहले तुम मुझे यह बताओ कि कौन-कौन सी विद्यायें तुम जानते हो? नारद कहते हैं -'मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, व्याकरण, श्राद्ध, कल्प, गणित, नीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र और संगीत विद्या- ये सब जानता हूँ। अर्थात् ऐसी कोई विद्या नहीं है जो नारद नहीं जानते। फिर भी उन्हें शान्ति नहीं है। नारद कहते हैं, 'भगवन्! मैं केवल शास्त्रज्ञ हूँ, आत्मज्ञ

नहीं। मैंने सुना है कि आत्मवेत्ता शोक को पार कर लेता है। भगवन्! मुझे शोक से पार करें। संसार का बड़े से बड़ा ऐश्वर्य प्राप्त होने पर भी आत्म-ज्ञान के बिना शान्ति नहीं मिलती। बिना भगवान् का साक्षात्कार किये दु:खों से छुटकारा पाना आकाश को चमड़े से लपेट लेने की तरह असम्भव है।

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवा:। तदा देवमविज्ञाय दु:खस्यान्तो भविष्यति।।

इस प्रकरण से यह विदित होता है कि केवल शास्त्र पढकर पंडित होना और मंत्रों में ही पारंगत होना पर्याप्त नहीं है। देवर्षि नारद को भी उनकी विद्या शान्ति न दे सकी तो हम जैसे साधारण जीवों की तो बात ही क्या है? यहाँ उन लोगों को ऋषि संदेश देते हैं जो केवल रटे हुए ज्ञान के आधार पर श्रेय प्राप्त करने का प्रत्यन्न करते हैं।

विद्याददाति विनयम् - श्वेतकेतु बारह वर्ष की आयु में उपनयन कराकर चौबीस वर्ष की आयु पूर्ण होने पर सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कर अपने को बड़ा बुद्धिमान मानते हुए अनम्रभाव से घर लौटा। उससे पिता ने कहा- 'सौम्य! तू जो ऐसा महामना, पांडित्य का अभिमानी और अविनीत है, क्या तू यह जानता है कि किसके द्वारा अश्रुत श्रुत हो जाता है, अमत मत हो जाता है और अविज्ञात ज्ञात हो जाता है?' इस प्रकरण में बताया गया है कि किस प्रकार पिता ने अपने पुत्र के अहंकार को समाप्त किया एवं उसे अपने ज्ञान, बुद्धि व विद्या से विनयी बनाया।

कैकयकुमार अश्वपति से ब्रह्मज्ञान :- अपनी विद्वता का दम्भ नहीं करते हुए स्वयं की कमियाँ अपने प्रशंसकों के बीच भी स्वीकार करके योग्य पुरुषों के सान्निध्य का लाभ प्राप्त किया जा सकता है, जैसा कि अरुण के पुत्र उद्दालक के प्रसंग से स्पष्ट है।

उपमन्यु के पुत्र औपमन्यव (प्राचीनशाल), पुलुष के पुत्र पौलुषि, भल्लवि के पुत्र भाल्लवि, शर्कराक्ष के पुत्र शार्कराक्ष्य और अश्वतराश्व के पुत्र बुडिल- ये पांचों शास्त्रों एवं सदाचार से युक्त थे। "हमारी आत्मा कौन है? ब्रह्म क्या है?" (**आत्मा किं ब्रह्मेति**) यह जानने के लिये अरुण के पुत्र उद्दालक के पास गये। उद्दालक (आरुणि) ने उन महागृहस्थों और परमज्ञानियों को देखकर निश्चय किया कि मैं इन्हें पूर्णरूप से आश्वस्त नहीं कर सकता। अत: उनको अन्य उपदेशक बताकर स्वयं भी ज्ञान प्राप्त करने के लिये उनके साथ गये। ये अन्य उपदेशक कैकय के कुमार 'अश्वपति' थे। अश्वपति जो एक क्षत्रिय था, से आरुणि सहित पाँचों गृहस्थ ब्राह्मणों ने आत्मा और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त किया।

इन्द्र व विरोचन को प्रजापति का उपदेश – आठवें अध्याय में इन्द्र व विरोचन के प्रजापति के साथ संवाद में बताया गया है कि किस प्रकार ब्रह्म तत्व के साक्षात्कार के लिये इन्द्र को पात्रता अर्जित करनी पड़ी? इन्द्र ने सौ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया, कठोर तपस्या की तब जाकर प्रजापति द्वारा इन्द्र को ब्रह्मज्ञान दिया गया। जबकि विरोचन पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये बिना वापस लौट आया। इससे विरोचन न तो अपना भला कर पाया और न ही अपनी जाति का।

11. बृहदारण्यकोपनिषद्

शुक्ल यजुर्वेद की काण्व शाखा के वाजसनेयि शतपथ ब्राह्मण के अन्तर्गत यह उपनिषद् है। यह बृहत् है एवं अरण्य (वन) में विकसित होने के कारण इसे बृहदारण्यक कहा गया है। इसमें कुल छः अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय में अनेक खण्ड हैं, जिन्हें ब्राह्मण कहा गया है।

प्रथम अध्याय के प्रथम ब्राह्मण में अश्वमेध यज्ञ का वर्णन किया गया है। अश्व शब्द शक्ति व गति का परिचायक है। यह ब्रह्माण्ड गतिशील है। जो शक्ति इसे गतिशील किये हुए है उसे 'अश्व' कहा गया है।। 'मेध' शब्द यज्ञ का पर्यायवाची है। चौथे ब्राह्मण में ब्रह्म को सर्वरूप कहकर उसके द्वारा चार वर्णो का उल्लेख किया गया है।

याज्ञवल्क्य – मैत्रेयी संवाद :– दूसरे अध्याय के प्रथम ब्राह्मण में डींग हाँकने वाले (ज्ञानाभिमानी) गार्ग्य वालाकि एवं ज्ञानी राजा अजातशत्रु के संवाद द्वारा ब्रह्म और आत्म तत्व को स्पष्ट किया गया है। इसी अध्याय के चौथे ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद है। याज्ञवल्क्य के दो पत्नियाँ थीं – मैत्रेयी और कात्यायिनी। मैत्रेयी विदुषी महिला थी। याज्ञवल्क्य की इच्छा संन्यास लेने की हुई तो दोनों पत्नियों को सम्पत्ति बाँटने का प्रस्ताव किया। मैत्रेयी बोली – 'हे भगवन्! धन–धान्य से पूरित इस सम्पूर्ण धरती की यदि मैं स्वामिनी बन जाऊँ तो क्या मैं अमर पद पा सकूँगी? जिस धन व ऐश्वर्य से मैं अमरत्व प्राप्त नहीं कर सकती, उसे ग्रहण करके मैं क्या करूँगी? भगवन्! मुझे तो अमरत्व प्राप्त करने का उपाय बताइये।' वस्तुतः यही विवेक और वैराग्य का सच्चा स्वरूप है। जिसके हृदय में यह वृत्ति जाग्रत होगी वही परमार्थ तत्व को ग्रहण करेगा अर्थात् परमार्थ कार्य में अपने जीवन को लगायेगा। मैत्रेयी की जिज्ञासा देखकर याज्ञवल्क्य ने उसे ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया।

जनक के दरबार में पाञ्चाल देश के विद्वानों एवं याज्ञवल्क्य के बीच शास्त्रार्थ :- तीसरे अध्याय में याज्ञवल्क्य व पांचाल और कुरुप्रदेश के विद्वानों के शास्त्रार्थ का उल्लेख है। विदेहराज जनक ने अश्वमेध यज्ञ किया, जिसमें पाञ्चाल और कुरुप्रदेशों के बहुत से विद्वान एकत्रित हुए। राजा को यह जानने की इच्छा हुई कि इन विद्वानों में सर्वोत्कृष्ट कौन है? इस निमित्त उसने अपनी गौशाला की एक सहस्र गायों के सींगों में स्वर्ण मढ़वा दिया। उन्होंने यह घोषणा की कि जो ब्रह्मज्ञानी हो, वह मेरी गौ शाला में बँधी गायें ले जाये। उपस्थित ब्राह्मणों में किसी का साहस नहीं हुआ। याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य को आज्ञा दी कि इन गौओं को खोलकर अपने आश्रम में ले जाओ। उपस्थित ब्राह्मणों ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि क्या तुम ही श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी हो? इस पर याज्ञवल्क्य ने जो उत्तर दिया उसमें जरा भी अभिमान नहीं था। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया -''उपस्थित ब्रह्मज्ञानियों को तो मेरा नमन है। मुझे तो केवल गायों की आकांक्षा है।'' इसके बाद कई ब्राह्मणों ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किये और सभी को याज्ञवल्क्य ने सन्तुष्ट किया। इस प्रकरण में विदुषी गार्गी - याज्ञवल्क्य का संवाद प्रसिद्ध है।

याज्ञवल्क्य - गार्गी संवाद :-

याज्ञवल्क्य से वचक्नु की पुत्री गार्गी ने पूछा - याज्ञवल्क्य ! यह जो कुछ है, सब जल में ओत -प्रोत है, किन्तु जल किसमें ओत -प्रोत है?

याज्ञवल्क्य - वायु में।

गार्गी - वायु किसमें ओत-प्रोत है?

याज्ञवल्क्य - अन्तरिक्ष में।

गार्गी - अन्तरिक्ष लोक किसमें ओत-प्रोत है?

याज्ञवल्क्य :- गन्धर्व लोक में।

गार्गी - गन्धर्व लोक किसमें ओत-प्रोत है?

याज्ञवल्क्य - आदित्य लोक में।

गार्गी - आदित्य लोक किसमें ओत-प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य - चन्द्र लोक में।

गार्गी - चन्द्रलोक किसमें ओत-प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य - नक्षत्र लोक में।

गार्गी - नक्षत्र लोक किसमें ओत-प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य - देव लोक में।

गार्गी - देवलोक किसमें ओत-प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य – इन्द्रलोक में।
गार्गी – इन्द्रलोक किसमें ओत–प्रोत है ?
याज्ञवल्क्य – प्रजापति लोक में।
गार्गी – प्रजापति लोक किसमें ओत–प्रोत है ?
याज्ञवल्क्य – ब्रह्मलोक में।
गार्गी – ब्रह्मलोक किसमें ओत–प्रोत है? इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा – अति प्रश्न मत कर गार्गी। जिस देवता के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिये, तू उसके सम्बन्ध में प्रश्न कर रही है। तब वचक्नु की पुत्री गार्गी चुप हो गई।

अन्त में गार्गी ने उपस्थित ब्राह्मणों से कहा– अब मैं इनसे दो प्रश्न पूछूँगी। यदि मेरे प्रश्नों का ये उत्तर दे देते हैं तो आप में से कोई भी इन्हें ब्रह्म सम्बन्धी वाद में नहीं जीत सकेगा।
गार्गी बोली – जो द्युलोक से ऊपर हैं, जो पृथ्वी से नीचे हैं और जो स्वयं भी द्यु–लोक और पृथ्वी हैं तथा जिन्हें भूत – वर्तमान व भविष्य कहते हैं वे किसमें ओत–प्रोत हैं?
याज्ञवल्क्य ने कहा – वे सब आकाश में ओत–प्रोत हैं।
गार्गी दूसरा प्रश्न पूछती है – किन्तु आकाश किसमें ओत–प्रोत है?
याज्ञवल्क्य – इस तत्व को ब्रह्म देवता अक्षर कहते हैं। वह न मोटा है, न पतला, न छोटा है, न बड़ा, न द्रव है, न छाया है, न अन्धकार है, न वायु है, न रस है, न गंध है, न नेत्र है, न कान है, न वाणी है, न मन है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न काया है, उसमें न भीतर है, न बाहर है, वह कुछ भी नहीं खाता है, उसे कोई भी नहीं खाता। हे गार्गी ! इस अक्षर के ही शासन में सूर्य और चन्द्रमा विशेष रूप धारण किये हुए स्थित हैं। इस अक्षर के शासन में द्युलोक और पृथ्वी विशेष रूप धारण किये हुए स्थित रहते हैं। इस अक्षर के ही प्रशासन से निमेष, मुहूर्त, दिन–रात, पक्ष, मास, ऋतु, संवत्सर विशेष रूप धारण किये हुए स्थित रहते हैं। यह अक्षर दृष्टि का विषय नहीं किन्तु स्वयं द्रष्टा है। श्रवण का विषय नहीं, स्वयं श्रोता है। हे गार्गी! इस अक्षर में ही आकाश ओत–प्रोत है।
गार्गी ने कहा – पूज्य ब्राह्मणगण! आप इन्हें नमस्कार करें। याज्ञवल्क्य ही परमज्ञानी व परम ब्रह्मवेत्ता हैं। यह निर्णय सुनाकर गार्गी चुप हो गई।
विदग्ध का मान मर्दन – किन्तु शकल पुत्र शाकल्य, जिसका दूसरा नाम विदग्ध था, से नहीं रहा गया। उसने याज्ञवल्क्य से पूछा – संसार में देवता कुल कितने हैं, जिनकी मनुष्य को पूजा करनी चाहिये? याज्ञवल्क्य ने कहा– 'विदग्ध ! इस संसार

में 3003, 303, 33, 6, 3, 2 और 1.5 देवता माने गये हैं। किन्तु वास्तव में देवता 33 ही हैं। बाकी सब उनकी महिमा हैं। ये 33 देवता इस प्रकार हैं – 8 वसुगण, 11 रुद्रगण, 12 आदित्यगण, एक इन्द्र, एक प्रजापति।

याज्ञवल्क्य का उत्तर सुनकर भी विदग्ध चुप नहीं हुए और इधर-उधर के प्रश्न पूछते रहे। अन्त में याज्ञवल्क्य ने विदग्ध से एक प्रश्न पूछा जिसका उत्तर वे नहीं दे सके। भय के कारण उसका मुख सूखने लगा, ललाट से पसीना छूटने लगा और पैर कांपने लगे।

जनक – याज्ञवल्क्य संवाद :- चौथे अध्याय में जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद है। जनक याज्ञवल्क्य से कई बार प्रश्न पूछते हैं और प्रत्येक प्रश्न का उत्तर उपासना का फल सुनने पर याज्ञवल्क्य को दक्षिणा स्वरूप एक हजार गायें देने का अनुरोध करते हैं। इस पर याज्ञवल्क्य इन्कार करते हुए कहते हैं कि शिष्य को पूर्ण शिक्षण दिये बिना दक्षिणा के रूप में उसका धन ग्रहण नहीं करना चाहिये। अतः शिक्षा पूर्ण होने पर ही मैं दक्षिणा ग्रहण करूँगा।

'द' का उपदेश :- पांचवें अध्याय में एक रोचक आख्यान है। देवता, मनुष्य और असुर प्रजापति के पास शिष्य भाव से जाते हैं और उपदेश की प्रार्थना करते हैं। प्रजापति उन तीनों को एक ही अक्षर 'द' का उपदेश करते हैं। इस एक अक्षर 'द' से तीनों को अपने लिये अनुकूल उपदेश प्राप्त हो जाता है। भोग प्रधान देवता समझते हैं कि पिता ने हमें 'दमन' (इन्द्रिय-संयम) का उपदेश किया है। क्रूर प्रकृति के असुर समझते हैं – प्रजापति ने हमें 'दया' करने का आदेश दिया है और मनुष्य समझते हैं कि पिता ने हमें 'दान' करने की आज्ञा दी है। इस प्रकार अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार उपदेश पाकर वे वापस जाते हैं।

देव दनुज मानव सभी लहै परम कल्याण।
पालै जो 'द' अर्थ को दमन, दया अरु दान।।

इससे यह शिक्षा मिलती है कि व्यक्तिगत जीवन में यदि देवत्व का उदय हो तो उससे उत्पन्न श्रेष्ठता के अहंकार से बचने के लिये 'दमन' का सहारा लें। जब मनुष्योचित भाव जागे तो संकीर्ण स्वार्थों से बचने के लिये 'दान' करें और जब आसुरी भाव जागे तो क्रूरता से बचने के लिये 'दया' का आश्रय लें।

प्रजनन-प्रक्रिया – छठे अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण में प्राणि जगत् की आधारभूत प्रजनन प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है। यह सृष्टि यज्ञमय है, इसलिये सृष्टि-चक्र को गतिशील रखने वाली प्रजनन प्रक्रिया भी यज्ञीय कर्मानुशासन का अंग है – इसी भाव को इसमें व्यक्त किया गया है। साथ ही इस अध्याय में प्राण की श्रेष्ठता,

पञ्चाग्नि विद्या, मंश कर्म (विशिष्ट हवन पद्धति) आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

उपनिषद् मानव सभ्यता के प्रसून है

वाल्ट व्हिटमैन ने कहा था – "उपनिषद् वस्तुत: सभी युगों और सभी देशों के विचार हैं।" उपनिषदों में उन प्रश्नों को लिया गया है, जो मनुष्य के मन में उस समय उठते हैं जब वह गम्भीरता से चिन्तन करने लगता है और उपनिषद उनको ऐसे उत्तर देने का प्रयास करता है, जिन उत्तरों को हमारा मन आज स्वीकार करना चाहता है। जब हम उन्हें पढ़ते हैं तो इन चरम प्रश्नों के उत्तर मिलने लगते हैं। उपनिषद के विचारकों के सम्मुख मनुष्य की चरम मुक्ति, ज्ञान की पूर्णता और सत्य के साक्षात्कार का आदर्श था। कहते हैं कि जर्मन दार्शनिक शोपनहॉवर की मेज पर उपनिषदों की एक लेटिन प्रति रहती थी और वे सोने से पहले उसमें से ही अपनी प्रार्थनाएँ किया करते थे। शोपेनहॉवर कहा करते थे कि 'समस्त संसार में उपनिषदों जैसा कल्याणकारी और आत्मा को उन्नत करने वाला कोई और ग्रन्थ नहीं है। वे सर्वोच्च प्रतिभा के प्रसून है और देर-सवेर ये लोगों की आस्था के आधार बनकर रहेंगे।'

अर्थ :- उपनिषद् का अर्थ है निकट बैठना। अर्थात् शिष्यगण गुरु से विद्या सीखने के लिये वनों के शान्त वातावरण में स्थापित आश्रमों में उनके निकट बैठते थे। उपनिषद को वेदान्त भी कहते हैं। वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है 'वेदस्य अन्त:' अर्थात् वेदों का उपसंहार। वेद की शिक्षा का प्रधान अन्तिम उद्देश्य और अभिप्राय उपनिषदों में ही मिलता है, इसलिये भी उपनिषदों को वेदान्त कहा जाता है। संहितायें व ब्राह्मण वेद का कर्मकाण्ड भाग है, जबकि उपनिषद् वेद का ज्ञानकाण्ड भाग है।

विषयवस्तु :- उपनिषदों में धर्म के उन मूल तत्वों की व्याख्या मिलती है जो व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि व परमेष्ठी के लिये कल्याणकारक है। यथा – बृहदारण्यक उपनिषद् अश्वमेध यज्ञ के एक विवरण से प्रारम्भ होता है और उसकी व्याख्या समाधि के रूप में करता है, जो कि अश्व की जगह सम्पूर्ण विश्व को समर्पित करता हुआ संसार त्याग द्वारा लौकिक प्रभुता की जगह आत्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करता है। प्रत्येक होम में वह 'स्वाहा' कहता है, जिसका अभिप्राय स्वयं के हनन अर्थात् अहम् के त्याग से है। छान्दोग्य उपनिषद् में बताया गया है कि उपनिषद के ऋषि जाति के नियमों से बँधे नहीं हैं। सत्यकाम जाबाल, यद्यपि अपने पिता का नाम नहीं बता पाता है, फिर भी उसे आध्यात्मिक दीक्षा दी जाती है। यह कथा इस

बात का प्रमाण है कि उपनिषदों के रचयिता परम्परा के कड़े आदेशों से अधिक मान्यता व्यक्ति के गुणों को देते थे।

छान्दोग्य उपनिषद् में श्वेतकेतु यह स्वीकार करते हैं कि वे सभी वेदों का अध्ययन कर चुके हैं, परन्तु अभी उन्हें वह ज्ञान नहीं– ''जिसके द्वारा अनसुना सुना हुआ हो जाता है, असोचा सोचा हुआ हो जाता है, न समझा हुआ समझा जाता है।'' नारदमुनि सनत्कुमार से कहते हैं कि उन्होंने वेद से लेकर नाग विद्या तक सभी तरह का ज्ञान प्राप्त किया है, पर अभी वे सन्तुष्ट नहीं हैं, क्योंकि उन्हें आत्मज्ञान नहीं हुआ है। अर्थात् व्यवहार में लाये बिना केवल रटा हुआ ज्ञान अधूरा ज्ञान है।

मुण्डकोपनिषद् में ब्रह्म का अन्वेषण करने के लिये ऋषि प्रश्न उठाता है –''वह क्या है, जिसके जान लेने से हर चीज जान ली जाती है ?'' केन उपनिषद् की कथा बताती है कि – व्यक्ति के अन्दर जो शक्ति है वह उसमें निहित ब्रह्म तत्व के कारण है। अतः उसे अपनी शक्ति पर अहंकार नहीं करना चाहिये। जब देवताओं को इस बात का पता चला कि ब्रह्म की शक्ति ही अग्नि, वायु आदि देवताओं को संभाले हुए है तब उनका अहंकार तिरोहित हो गया।

सृष्टि के विकास के सम्बन्ध में उपनिषद् भौतिक जगत् की सबसे प्रासंगिक स्थिति आकाश के प्रसार में देखता है, जिसकी मुख्य विशेषता कम्पन है। आकाश से वायु उत्पन्न होती है, वायु से तेज (अग्नि) उत्पन्न होता है जिसका प्रकट रूप प्रकाश व ताप है। इसके बाद जल की उत्पत्ति होती है और उसके बाद पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जगत् का विकास सूक्ष्म आकाश के उत्तरोत्तर स्थूल होते जाने की प्रक्रिया है। सभी भौतिक पदार्थ इन पांच तत्वों के मेल से बने हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् में शिष्य (वरुण) अपने पिता (भृगु) के पास जाकर प्रार्थना करता है कि उसे ब्रह्म का स्वरूप समझायें। पिता द्वारा तात्विक परिभाषा बताकर उसे यह कहा जाता है कि अन्तर्वस्तु वह स्वयं अपने चिन्तन (अनुसंधान) से प्राप्त करे। अपनी साधना द्वारा वरुण पहले भूतद्रव्य (अन्न) को मूल तत्व के रूप में देखता है, बाद में प्राण को जगत् का आधार मानता है। इसके बाद वह चेतन मन को आदि तत्व मानता है। क्रमशः इसके बाद वह बौद्धिक चेतना (विज्ञान) को ब्रह्म मानता हुआ अन्त में इस सत्य पर पहुँचता है कि आनन्द (ब्रह्म) परिपूर्ण जीवन का आदि तत्व है। यहाँ आकर उसकी खोज पूर्ण हो जाती है। केवल इसलिये नहीं कि उसकी शंकाओं का समाधान हो जाता है बल्कि इसलिये कि वह स्वयंसिद्ध सत्य के दर्शन कर लेता है। निम्नतर रूपों में छिपी सर्वोच्च एकता

(अन्न से प्रारम्भ क्रमशः मन, प्राण, बुद्धि एवं आनन्द रूपी पंचकोश) को वह अनुभव करता है। इस प्रसंग का अन्त इस घोषणा से होता है कि ब्रह्म ही सत्य है, ब्रह्म ही ज्ञान है और वह अनन्त है।

जगत् अर्थहीन संयोग का परिणाम नहीं है बल्कि एक प्रयोजन है जो युग–युगान्तरों से कार्य कर रहा है। यह एक ऐसा मत है जिसकी आधुनिक विज्ञान भी पुष्टि करता है। किस तरह असंख्य शताब्दियों में जीवन का आविर्भाव हुआ और विकसित होता गया, जिससे उसमें पशु चेतना जागी और फिर किस तरह उसका भी विकास होते–होते मनुष्य अस्तित्व में आया। इसकी व्याख्या उपनिषद् करते हैं।

ईशावास्योपनिषद् सत्य को स्वर्ण की थाली से ढका बताता है और ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वह उस (मोह रूपी) आवरण को हटा ले और हमें सत्य को देखने दे। श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार हम ईश्वर की उपासना (भक्ति) द्वारा विश्व माया (स्वर्ण के ढक्कन) से निवृत्ति पा सकते हैं।

अविद्या स्वार्थ को जन्म देती है और हृदय में एक गांठ बन जाती है। अपने हृदय की गहराइयों में स्थित आत्मा का यदि हम दर्शन करना चाहते हैं तो पहले उस गांठ को खोलना होगा। प्रश्नोपनिषद् हमें बताता है कि जब तक हम अपने भीतर भी कुटिलता, असत्य और भ्रान्ति (माया) को दूर नहीं करेंगे, तब तक हम ब्रह्म के निकट नहीं पहुँच सकेंगे।

उपनिषद्कार कहता है कि हम ईश्वर को ईश्वर तुल्य होकर ही जान सकते हैं। हमें अपने में धार्मिक प्रवृति विकसित करनी चाहिये। ईश्वर का साक्षात्कार केवल उन्हें होता है जो ईश्वर पर विश्वास करते हैं। दृष्टि की निर्मलता के लिये हममें बालकों का सा स्वभाव चाहिये। व्यक्ति को पाण्डित्य का अभिमान नहीं रखना चाहिये।

माण्डूक्य उपनिषद् में प्रणव (ओम्) पर ध्यान केन्द्रित करने की सलाह दी गई है। यह कहा गया है कि परमात्मा की अनुभूति केवल उन्हीं को होती है जिन्हें परमात्मा इसके लिये चुन लेता है अर्थात् ईश्वरीय कृपा से ही यह सम्भव है। ईश्वर का दर्शन सतत् प्रयास और ईश्वर कृपा का फल है।

उपनिषद सदाचार तथा मनुष्य के नैतिक गुणों पर जोर देते हैं। मनुष्य अपने कर्मों के लिये स्वयं उत्तरदायी है। दुष्कर्म सत्य से हमारे अलगाव का परिणाम है। जब तक हम दुष्कर्मों से नाता नहीं तोड़ेंगे, मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। भागवत में भगवान् कहते हैं कि जो व्यक्ति ऐसे लोगों को जिन्हें देखभाल की जरूरत है, देखभाल नहीं करता है और केवल ईश्वर की पूजा करता है, उसकी पूजा बेकार है।

उपनिषदों में जीवन की यज्ञ से तुलना की गई है। जीवन एक यज्ञ है। जिसमें तप, दान, साधुता, अहिंसा और सत्यवादिता ही दक्षिणा है। सभी सद्‌गुणों को तीन 'द' कारों : (1) दम (आत्मनिग्रह) (2) दान (समर्पण) (3) दया, में सम्मिलित कर प्रजापति अपनी सृष्टि के तीन वर्गों क्रमशः (1) देव (2) मनुष्य और (3) असुर को उपदेश देते हैं। देवों में इच्छायें (काम) प्रबल होती है, मनुष्य में 'लोभ' प्रबल होता है और असुर में 'क्रोध' अधिक होता है। इन तीन आदेशों के पालन से देवता 'कामनाओं' से, मनुष्य 'लोभ' से और असुर 'क्रोध' के प्रभाव से मुक्त हो जाते हैं। महात्मा बुद्ध जब काम, लोभ व रोष की भयानक अग्नियों को, जो हमारे हृदयों में जल रही हैं, बुझाने के लिये कहते हैं तो वे उपनिषदों द्वारा निर्दिष्ट सद्‌गुणों पर ही जोर देते हैं।

डॉ. राधाकृष्णन् का कहना है – ''हम भारतीय यदि अपने राष्ट्रीय अस्तित्व और स्वरूप को कायम रखना चाहते हैं तो हमारे लिये उपनिषदों का अध्ययन आवश्यक है। हमारे अतीत में बहुत कुछ ऐसा है जो जीवनदायी और ऊपर उठाने वाला है। अतीत को यदि भविष्य के लिये प्रेरणादायी बनाना है, तो हमें इसका विवेकपूर्ण एवं समग्रता से अध्ययन करना होगा।''

उपनिषदों का पाश्चात्य विद्वानों पर प्रभाव

पॉल डायसन नामक विद्वान ने 'उपनिषद् दर्शन' (Philosophy of the Upnisads) नामक अपने ग्रन्थ में लिखा, 'उपनिषदों के भीतर जो दार्शनिक कल्पना है वह भारत में तो अद्वितीय है ही, सम्भवतः सम्पूर्ण विश्व में अतुलनीय है।' डायसन ने यह भी कहा कि कांट और शोपेनहावर के विचारों की उपनिषदों ने पहले ही कल्पना कर ली थी। उपनिषदों का अध्ययन करने के बाद पाश्चात्य पण्डितों को कहना पड़ा – 'जिस देश में उपनिषदों के गंभीर सत्य-समूह का प्रचार था, उस देश में ईसाई धर्म के प्रचार का प्रयत्न व्यर्थ होगा और निकट भविष्य में यूरोपीय विचारधारा उपनिषदों के द्वारा पूर्ण रूप से प्रभावित हो जायेगी। इस सम्बन्ध में शोपेनहावर ने कहा था – 'भारत में हमारे धर्म की जड़ कभी नहीं गड़ेगी, बल्कि भारतीय प्रज्ञा की धारा यूरोप में प्रवाहित होगी एवं हमारे ज्ञान व विचार में आमूल-चूल परिवर्तन ला देगी।'

उनकी यह भविष्यवाणी सत्य हुई। स्वामी विवेकानन्द की अमेरिकी शिष्या 'सारा बुल' ने अपने एक पत्र में लिखा था कि 'जर्मनी का दार्शनिक सम्प्रदाय, इंग्लैण्ड के प्राच्य पंडित तथा हमारे अपने देश के एमरसन आदि साक्षी दे रहे हैं कि पाश्चात्य विचार सचमुच ही वेदान्त से अनुप्राणित हैं।' शाहजहां के

ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह को जब उपनिषदों की महिमा का पता चला तो उन्होंने काशी के पंडितों की सहायता से पचास उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया। 1657 ई. में यह अनुवाद पूरा हुआ और 1659 में वह अपने भाई औरंगजेब द्वारा मारा गया। दाराशिकोह ने फारसी अनुवाद की भूमिका में लिखा है–''आत्म विद्या के मैंने बहुत से ग्रंथ पढ़े पर परमात्मा के खोज की प्यास नहीं बुझी। हृदय में ऐसी अनेक शंकायें और समस्याएँ उठती थीं, जिनका समाधान ईश्वरीय ज्ञान के अतिरिक्त और किसी प्रकार सम्भव नहीं था। मैंने 'कुरान', 'तौरेत', 'इञ्जील', 'जबुर' आदि ग्रंथ पढ़े पर उससे भी मन की प्यास न बुझी। तब हिन्दुओं की ईश्वरीय पुस्तकें पढ़ीं। इनमें से उपनिषदों का ज्ञान ऐसा है जिससे आत्मा को शाश्वत शान्ति तथा सच्चे आनन्द की प्राप्ति होती है।''

वेदान्त दर्शन की महिमा पर मुग्ध होने वाले विदेशी विद्वानों में सबसे पहले अरबदेशीय विद्वान 'अलबरुनी' थे। वे ग्याहरवीं शताब्दी में भारत आये। यहाँ आकर संस्कृत भाषा का अध्ययन किया और उपनिषदों की साररूपा 'गीता' पर लट्टू हो गये।

इसी तरह वेबर, प्रो.जी आर्क, ह्यूम, शेलिंग आदि अनेक विदेशी विद्वानों ने उपनिषदों की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। ह्यूम ने तो यहाँ तक लिखा है कि – सुकरात, अरस्तू, अफलातून आदि कितने ही दार्शनिकों के ग्रन्थ मैंने पढ़े हैं, पर जैसी शान्तिमयी आत्मविद्या मैंने उपनिषदों में पायी, वैसी कहीं और देखने को नहीं मिली।

i|jk.kk d vk/kkj ij fyf[kr fucU/k uhy unh d mn~xe dh [kkst dk vk/kkj cuk

1962 में नील नदी के उद्गम की खोज करने वाले जॉन स्पीकी ''जर्नल ऑफ दी डिस्कवरी ऑफ दि सोर्स ऑफ दि नाइल'' में पृ.सं. 13 पर लिखते हैं कि नील नदी की खोज पर जाने से पहले कर्नल रिग्बी ने पुराणों के आधार पर लिखित कर्नल विल्फोर्ड का एक निबन्ध मानचित्र सहित मुझे दिया। वे यह भी लिखते हैं कि ''यह आश्चर्य की बात है कि हिन्दुओं को नील नदी के उद्गम का ज्ञान है। इसलिये यह बात स्पष्ट है कि प्राचीन हिन्दुओं का अफ्रीका के विभिन्न भागों से सम्बन्ध था।'' वे यह भी स्वीकार करते हैं कि ''नील नदी सम्बन्धी हमारे सारे ज्ञान का केन्द्र पुराण (हिन्दू ग्रंथ) हैं।''

आर्ष साहित्य के ऋषि एवं ऋषिकाएँ

ऋषि

1. वेदव्यास
2. महर्षि वाल्मीकि
3. आचार्य वसिष्ठ
4. महर्षि विश्वामित्र
5. महर्षि अत्रि
6. महर्षि गृत्समद्
7. महर्षि वामदेव
8. महर्षि भरद्वाज
9. महर्षि भृगु
10. महर्षि याज्ञवल्क्य
11. महर्षि अगस्त्य
12. महर्षि अंगिरा
13. महर्षि शौनक
14. आदि शंकराचार्य
15. मनु
16. मण्डन मिश्र
17. कुमारिल भट्ट
18. महामुनि मार्कण्डेय
19. महर्षि पराशर
20. आचार्य वृहस्पति

ऋषिकाएँ

1. देव सम्राज्ञी शची
2. वाचक्नवी गार्गी
3. ब्रह्मवादिनी अपाला
4. ब्रह्मवादिनी घोषा
5. ब्रह्मवादिनी वाक्
6. ब्रह्मवादिनी सूर्या

आर्ष साहित्य में वर्णित ऋषि एवं ऋषिकायें वास्तव में आर्ष साहित्य के लेखक व कवि हैं।

भगवान् नारायण के नाभि–कमल से ब्रह्माजी आविर्भूत होकर सृष्टिवर्द्धन के कार्य में प्रवृत्त होते हैं। इसी प्रक्रिया में उनके मानसी संकल्प से नौ ऋषियों का प्रादुर्भाव होता है। ये शक्ति, सामर्थ्य, तप, अध्यात्म, ज्ञान आदि सभी गुणों में ब्रह्माजी के समान हैं। अपनी प्रजा का पालन करने के कारण इन्हे प्रजापति कहते हैं। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, विश्वामित्र, भरद्वाज, गौतम, जमदग्नि आदि ऋषियों को अपनी तपस्या के दौरान वेद की ऋचाओं का दर्शन हुआ। इस कारण वे 'मंत्रद्रष्टा' कहलाये। इसका अर्थ है कि वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि ने मंत्रों की रचना ही नहीं की, अपितु अपने अन्तःकरण में मंत्रशक्ति के स्वरूप का दर्शन भी किया एवं अपने शिष्यों में उसे प्रसारित किया। इस परम्परा में ऋषियों के साथ ऋषिकाओं का भी योगदान रहा है। श्रुति द्वारा शिक्षण होने से वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाता है।

इनके आश्रम नदियों के पास, जंगल अथवा पर्वतों की शान्त जगहों पर हुआ करते थे, जहां सिंह आदि क्रूर प्राणी भी अपनी स्वाभाविक हिंसक वृत्ति छोड़कर मैत्रीभाव का आश्रय लिया करते थे। यदि ये ऋषि एवं ऋषिकाएँ नहीं होते तो हमें वेद प्राप्त ही न होते और न ही इतनी उन्नत संस्कृति का निर्माण होता। इस प्रकार ऋषियों एवं ऋषिकाओं का हम पर महान उपकार है।

हमें अन्य कई महापुरुषों के जीवन चरित्र अपनी पाठ्यपुस्तकों आदि में पढ़ने को उपलब्ध होते हैं किन्तु जिनके कारण हमारी संस्कृति समृद्ध हुई हैं, ऐसे मंत्रद्रष्टा ऋषि– ऋषिकाओं की जानकारी प्रायः नहीं मिलती। इस प्रकरण में ऐसे महान् ऋषि एवं ऋषिकाओं के जीवन चरित्र का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

1. वेदव्यास

भारतीय संस्कृति के प्राणतत्व वेद ही हैं। भारतीय धर्म, दर्शन, अध्यात्म, आचार–विचार, रीति– रिवाज, कला–विज्ञान ये सब वेद से ही अनुप्राणित हैं। जीवन और साहित्य की कोई ऐसी विधा नहीं, जिसके बीज वैदिक वाङ्मय में न मिलें। वेद का कोई अन्त नहीं है –

अनन्ताः वै वेदाः। वस्तुतः ईश्वरीय ज्ञान की कोई सीमा हो भी नहीं सकती।

वेद का सम्पूर्ण ज्ञान पहले एक ही था। वेदव्यास जी ने उसके चार भाग किये। महाभारत में इस तथ्य का उल्लेख है कि जिन्होंने निज तप के बल से वेद का चार भागों में विस्तार किया, शरीर से कृष्ण वर्ण होने के कारण कृष्ण द्वैपायन कहलाये। भगवान वेदव्यास ने ही वेद को चार भागों में विभक्त कर अपने चार प्रमुख शिष्यों को वैदिक संहिताओं का अध्ययन कराया। उन्होंने अपने प्रमुख शिष्य पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनी को सामवेद तथा सुमन्तु को अथर्ववेद संहिता का सर्वप्रथम अध्ययन कराया। महाभारत युद्ध के पश्चात् वेदव्यास जी ने तीन वर्ष के सतत् परिश्रम के उपरान्त श्रेष्ठ काव्यात्मक इतिहास 'महाभारत' की रचना की। यह महाभारत, पंचमवेद कहलाता है और इसे व्यास ने अपने पंचम शिष्य लोमहर्षण को पढ़ाया था।

भगवान वेदव्यास ने वेद को चार भागों में विभक्त क्यों किया? इसका उत्तर श्रीमद्भागवत में मिलता है –

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः।। (भागवत्1/3/21)

अर्थात् महर्षि पराशर द्वारा सत्यवती से उत्पन्न वेदव्यास ने मानव की अल्पबुद्धि देखकर (अर्थ बोध की सुगमता की दृष्टि से) वेदरूपी वृक्ष की चार शाखायें कर दीं।

महर्षि वेदव्यास भारतीय ज्ञान गंगा के भगीरथ माने जाते हैं। उन्होंने भारतीय साहित्य के आदि युग में हिमालय के बद्रिकाश्रम में अखण्ड समाधि लगाकर अध्यात्म, धर्मनीति व पुराण की त्रिपथगा का पहले स्वयं साक्षात्कार किया। साहित्य साधना द्वारा देश के आर्ष- **वाङ्मय** को पावन बनाया तथा लोक साहित्य को गति प्रदान की। श्रीमद्भागवत, महाभारत, ब्रह्मसूत्र एवं अष्टादश पुराण आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं। महाभारत के बारे में कहा गया है कि जीवन के चतुर्विध पुरुषार्थो से सम्बन्ध रखने वाला जो कुछ ज्ञान महाभारत में है वही अन्यत्र है और जो उसमें नहीं है वह कहीं और भी नहीं मिलेगा। (**यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।**) जो महाभारत में नहीं है वह भारत में भी नहीं है। (**यन्न भारते तन्न भारते**) (महा. आदि 62/53)

व्यास जी का जन्म यमुना के किसी द्वीप में हुआ था, इसलिये द्वैपायन तथा कृष्ण वर्ण शरीर के कारण 'कृष्णद्वैपायन' कहलाये। बदरीवन में निवास के कारण इन्हें 'बादरायण' तथा वेदों का विस्तार करने के कारण 'वेदव्यास' कहते हैं। भारतीय जनजीवन में वेदव्यास अजर-अमर रूप में प्रतिष्ठित हैं। हम जिन सप्त चिरंजीवियों का स्मरण करते हैं, उसमें व्यास जी का अत्यन्त उच्च स्थान है यथा -

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः।।

संस्कार (शिक्षाएँ) :- 'व्यास स्मृति' में व्यास जी ने सोलह संस्कारों का वर्णन किया है। संस्कार करने से अन्तःकरण शुद्ध रहता है। संस्कार मनुष्य को अज्ञान से दूर रखता है तथा ज्ञान-विज्ञान से संयुक्त करता है। संस्कारों के यथोचित रूप से मानव पूर्ण सुसंस्कृत बनता है।

दान-धर्म :- इस बारे में व्यास जी कहते हैं - जो धन सत्पात्रों को दान में दिया जाता है और जो कुछ अपने भोजन आदि में काम लिया जाता है, उसी को मैं उस व्यक्ति का वास्तविक धन या सम्पत्ति मानता हूँ। शेष सम्पत्ति तो किसी और की है, जिसकी वह केवल रखवाली करता है। व्यास जी बताते हैं कि केवल धन दान करने वाला ही दानी नहीं कहलाता बल्कि सम्मानपूर्वक व देश-काल के अनुरूप दान करने वाला सच्चा दाता कहलाता है।

ब्रह्ममुहूर्त में जागरण :- वेदव्यास कहते हैं कि सूर्योदय से चार घड़ी (लगभग 1.5 घण्टा) पूर्व का समय ब्रह्म-मुहूर्त कहलाता है। इस समय सोना निषिद्ध है, क्योंकि इस समय की निद्रा कई प्रकार की शारीरिक व मानसिक व्याधियों को जन्म देती है। यह समय शरीर व मन को अत्यन्त स्फूर्ति व बल प्रदान करता है। अतः ब्रह्ममुहूर्त में उठकर दिन-भर के कार्यों की सूची बना लेनी चाहिये।

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय धर्मार्थावनुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्वार्थमेव च।। (लघु व्यास 1/1-2)

प्रातः स्नान की महिमा :- प्रातःकालीन स्नान का महत्व बताते हुए व्यास जी कहते हैं - प्रातः स्नान करने से ही व्यक्ति शुद्ध होकर पूजा-पाठ एवं अन्य सत्-कर्म करने का अधिकारी होता है। प्रातःकाल स्नान करने से अलक्ष्मी, दुर्भाग्य, दुःस्वप्न तथा बुरे विचारों के साथ सभी पापों का विनाश हो जाता है।

प्रातः स्नानेन पूयन्ते सर्वपापान्न संशयः।
न हि स्नानं विना पुंसां प्रशस्त्यं कर्मसु स्मृतम्।। (लघुव्यास 1/7)

2. महर्षि वाल्मीकि

रामायण के उत्तरकाण्ड में ऋषि वाल्मीकि अपना परिचय स्वयं देते हैं कि वे प्रचेता के दसवें पुत्र हैं। राजा पृथु के वंश में चौथी-पांचवीं पीढ़ी में बर्हिराजा के पुत्र प्रचेता थे। प्रचेता के दस पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र वाल्मीकि थे। इनका बचपन का नाम रत्नाकर था। ऐसी कथा आती है कि सबसे छोटे होने व लाड़-प्यार के कारण रत्नाकर की संगति बिगड़ने पर संस्कार बिगड़ गया। एक बार सप्तऋषि भ्रमण करते हुए उस मार्ग से निकल रहे थे, जहाँ रत्नाकर लूट-पाट करता था। उन ऋषियों को रत्नाकर ने रोका और कहा कि पास में जो कुछ भी है, रख दो। अत्रि ऋषि ने कहा 'हम तो साधु हैं, फिर भी जो कुछ भी है वह तुम्हारा ही है, पर यह काम तुम क्यों कर रहे हो ?' दस्यु ने कहा 'अपना तथा बाल बच्चों का पेट पालने के लिये।' ऋषि ने पूछा कि तुम्हारी कमाई पर जो जिन्दा रहना चाहते हैं क्या वे तुम्हारे पाप में तथा उसके लिये मिलने वाले दण्ड में शामिल होंगे? ' दस्यु ने कहा 'क्यों नहीं? अवश्य होंगे।' इस पर अत्रि ने कहा -'हम यहाँ रुके हैं, हमारा विश्वास करो और घर जाकर यही प्रश्न पूछकर आओ।' ऋषि की बात पर दस्यु को विश्वास नहीं हुआ। उसने ऋषियों को पेड़ से बाँधा तथा घर जाकर परिवार वालों से बात-चीत की। पत्नी ने कहा -'हमारा जीवन चलाने की जिम्मेदारी आपकी है। हम आपकी कमाई के साझेदार हैं, पाप के नहीं।' बच्चों ने भी यही बात दोहराई। दस्यु की आँखें खुल गई। वह वापस आया और ऋषियों के पाँवों में गिर पड़ा।

ऋषि ने उसे राम का नाम जपने को कहा। राम का उच्चारण नहीं होने से उसे मरा-मरा शब्द का जल्दी-जल्दी उच्चारण करने को कहा। नाम जप में अध्यात्म में शब्द का महत्व कम व एकाग्रता का महत्व अधिक होता है। वाल्मीकि एकाग्रता से मरा-मरा कहते गये। धीरे-धीरे खाना-पीना भी छूट गया। केवल वायु भक्षण कर जहाँ बैठे थे वहीं जप चलता रहा। यहाँ तक कि दीमकों ने साँप जैसी बाम्बी उनके शरीर पर बना ली, पर वाल्मीकि डटे रहे।

कुछ वर्ष बाद अपने शिष्य का हाल देखने अत्रि ऋषि फिर उधर आये तो देखा कि पुरुष के आकार का बाँबी का घर बना हैं और अन्दर से मरा-मरा की ध्वनि आ रही है। अत्रि ऋषि ने शिष्य को जगाया। दीमकों के घर को संस्कृत में वल्मीक कहते है, अतः अत्रि ऋषि ने उनका नाम वाल्मीकि रख दिया। अयोध्या और नैमिषारण्य के बीच में उनका आश्रम था। लोक-अपवाद के कारण राम ने सीता को वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़ा था।

वाल्मीकि तपः सिद्ध हो गये तब नारद जी घूमते-फिरते उनके पास पहुँचे। वाल्मीकि ने उनका सम्मान किया और पूछा कि इस समय इस धरती पर मनुष्य के रूप में सबसे श्रेष्ठ व गुणवान व्यक्ति कौन है? उत्तर में नारद जी ने बताया कि इस समय लोक प्रसिद्ध भगवान् श्री रामचन्द्र जी सबसे श्रेष्ठ व गुणवान मनुष्य हैं। नारद जी इस तरह से वाल्मीकि के गुरु हुए। उन्होंने ही उनको रामचरित्र सुनाया। सुनकर वाल्मीकि जी बड़े प्रसन्न हुए और अपने आश्रम में आकर श्री रामचरित्र पर विचार करने लगे। उनका मन संसार चिन्तन से मुक्त होकर श्री रामचन्द्र जी के चिन्तन में लग गया। वे श्री रामचन्द्र जी के चिन्तन में बड़े आनन्द से रहने लगे। इतने में ही एक छोटी सी घटना घटित हो गई। जब वे अपने शिष्य भरद्वाज के साथ तमसा नदी में स्नान करने गये, तब उन्होंने देखा कि एक व्याध ने क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से एक को मार दिया है। देखने में यह एक छोटी घटना थी, परन्तु वाल्मीकि के पवित्र हृदय पर इतना आघात कर गई कि वे शोकाकुल हो गये और उनके मुँह से अचानक यह श्लोक निकल पड़ा -

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।। (वा.रा.1.2.15)

'हाय-हाय! अरे ओ बहेलिये! तुमको इस संसार में बहुत समय तक प्रतिष्ठा प्राप्त न हो, क्योंकि तुमने संसार-सुख में निमग्न इन पक्षियों में से एक को मार दिया।'

वाल्मीकि जी के जीवन में इस प्रकार के दुःख की तीव्रानुभूति प्रथम बार ही हुई थी। उसी प्रकार छन्दबद्ध होकर उनकी वाणी निकलने की यह घटना भी

प्रथम ही थी। उन्हें स्वयं पर व स्वयं के मुख से निकली शापवाणी पर आश्चर्य होने लगा। हर घटना के पीछे नियति का कोई न कोई आशय छिपा रहता है। उनके अन्दर का कवि जाग रहा था। जब कवि के हृदय की करुणा जागती है तो वह सर्वोत्तम कला की सृष्टि करता है। रामायण का जन्म भी वाल्मीकि की इस करुणा से हुआ न कि राम की प्रशंसा या रावण के द्वेष से। प्रथम सीता के प्रति और बाद में क्रौंच युगल के प्रति वाल्मीकि में करुणा उत्पन्न हुई। इस करुणा बीज का ही रामायण–रूपी मधुर फल आज हमारे सामने है।

इसी मानसिक स्थिति में वाल्मीकि की भेंट नारद जी से हुई। वाल्मीकि ने नारद जी से इस घटना के पीछे का रहस्य एवं आगे का कर्त्तव्य पूछा। नारद जी ने कहा –"काव्य की धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही है, अतः काव्य रचना करो।" वाल्मीकि द्वारा यह पूछे जाने पर कि ऐसा कौन पुरुष वर्तमान काल में है जिसका चरित्र काव्यबद्ध किया जाये, नारद ने कहा– 'लोक शिक्षण के लिये सर्वोत्तम चरित्र राम का ही है।' इसके बाद वाल्मीकि जी रामायण की रचना में लग गये। प्रथम कवि संसार में वाल्मीकि ही हुए हैं। ऋग्वेद के कई सूक्तों के दृष्टा वाल्मीकि हैं। स्कन्द पुराण के अनुसार वाल्मीकि जन्मान्तर से व्याध थे।

प्रसिद्ध शब्दकोश निर्माता फादर कामिल बुल्के ने प्रयाग विश्वविद्यालय से 'रामकथा – उत्पत्ति और विकास' विषय पर शोध प्रबन्ध लिखकर पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की है। डॉ. बुल्के का स्पष्ट निष्कर्ष है कि वाल्मीकि विश्व के आदिकवि हैं।

सीता त्याग के कारण वाल्मीकि राम पर रुष्ट थे। पर जब उन्हें काव्य की प्रेरणा हुई तो उन्होंने नारद जी के कथनानुसार समाज का मार्गदर्शन व उत्तम चरित्र के नाते 'पौलस्त्यवध' नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में राम का अभियान तथा सीता के महान् चरित्र का वर्णन है।

वाल्मीकि के राम ऐतिहासिक पुरुष थे :– भारत सरकार द्वारा रामसेतु को तोड़ने सम्बन्धी किये गये प्रयास के समय राम की ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिह्न लगाये गये थे। वाल्मीकि के राम ऐतिहासिक पुरुष थे– यह जानना सुधी पाठकों के लिए आवश्यक है। राम मनुष्य के रूप में इस पृथ्वी पर आये। वे हम लोगों के बीच हम जैसे खेले–कूदे, हँसे–रोये तथा अपने पौरुष–पराक्रम का यहाँ प्रदर्शन किया। एक सामान्य जीवन जीने वाले व्यक्ति ने असामान्य कार्य करके दिखाए। गुणों की असामान्यता का प्रभाव इतना अधिक था कि इस देश के अधिकांश विद्वानों ने उन्हें भगवान् की श्रेणी में रख दिया। वाल्मीकि रामायण में राम का सम्पूर्ण वर्णन मनुष्य

जैसा है। अनेक स्थानों पर उनकी दुर्बलताएँ व दोष भी दिखाये गये हैं। डॉ. बुल्के के अनुसार कथा के ऐतिहासिक होने का यही सबसे बड़ा प्रमाण है अन्यथा भगवान् मानकर केवल प्रशंसा ही की गई होती। राम को काल्पनिक चरित्र मानने वाले देशी व विदेशी विद्वानों के मत का डॉ. बुल्के ने खण्डन किया है।

राम ने स्वयं रावण वध के बाद एकत्र समूह को बताया कि –'मैं मनुष्य हूँ और दशरथ का पुत्र हूँ। हम देखते हैं कि भारत का भूगोल, यहाँ की पारिवारिक – सामाजिक मान्यताएँ, यहाँ का साहित्य आदि सभी पर राम की गहरी छाप है। किसी काल्पनिक कथा का ऐसा प्रभाव नहीं हो सकता।

भारत के पत्थर, पेड़, नदियाँ, यहाँ तक समुद्र की लहरें, रामसेतु भी राम की गौरवगाथा कहते हुए प्रतीत होते हैं। मनुष्य झुठलाया जा सकता है, किन्तु भूगोल नहीं। चित्रकूट, पंचवटी, रामेश्वरम् आदि स्थान राम से पूर्व कोई प्रसिद्ध स्थान नहीं थे। राम को अस्वीकार करते ही हमें भारत के भूगोल को भी अस्वीकार करना पड़ेगा। भारत सरकार की पुरातत्वीय खोजों ने भी अयोध्या में दशरथ की राजधानी होने व राम जन्म की पुष्टि की है। (देखें दै.हिन्दु. 16 अप्रैल 1980) तमिलनाडु के प्रसिद्ध विद्वान श्रीनिवास शास्त्री पाठकों से अनुरोध करते हैं, 'व्यक्ति मनुष्य रहकर भगवान कैसे बन सकता है, इस दृष्टि से राम के जीवन को देखें।'

3. आचार्य वसिष्ठ

आचार्य वसिष्ठ को अपनी साधना के क्रम में भगवद्–विग्रह रूप वैदिक ऋचाओं का साक्षात् दर्शन हुआ था, इसलिये उनको मंत्रदृष्टा कहते हैं। उन्हें वेदों के अनेक सूक्तों एवं मंत्रों के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। विशेष रूप से ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के आप दृष्टा कहे जाते हैं।

देवी अरुन्धती उनकी पत्नी हैं जो पतिव्रताओं की आदर्श हैं। अखण्ड सौभाग्य और श्रेष्ठ दाम्पत्य के लिये महर्षि वसिष्ठ व अरुन्धती की आराधना की जाती है।

वसिष्ठ जन्म की अनेक कथाएँ हैं। कहीं ये ब्रह्माजी के मानस पुत्र, कहीं मित्रावरुण के पुत्र, कहीं आग्नेयपुत्र और कहीं प्राणतत्व से उद्भूत कहे गए हैं। जब इनके पिता ब्रह्माजी ने इन्हें सृष्टि करने की और भूमण्डल में आकर सूर्यवंशी राजाओं का पौरोहित्य करने की आज्ञा दी, तब महर्षि वसिष्ठ ने इस कार्य को सहर्ष स्वीकार कर लिया। इन्होंने सदैव अपने आप को सर्वभूतहित में लगाए रखा। अपने पूर्वजों के असफल होने पर राजा भगीरथ को जब निराशा हुई, तब इन्हीं की

कृपा से राजा भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर लाने में सफल हुए। जब राजा दिलीप संतान न होने के कारण दु:खी थे, महर्षि वसिष्ठ के उपदेश से नन्दिनी की सेवा के फलस्वरूप उन्हें राजा रघु जैसा प्रतापी पुत्र प्राप्त हुआ। राजा दशरथ से पुत्रेष्टि यज्ञ करवाकर उन्होंने भगवान् राम को इस धराधाम पर अवतीर्ण कराया तथा राम को अपने शिष्य के रूप में प्राप्त किया। इन्होंने राम को जो उपदेश दिया वह ग्रन्थ के रूप में '**योगवासिष्ठ**' के नाम से प्रसिद्ध है।

महर्षि विश्वामित्र का क्षात्रबल इनके ब्रह्मतेज के सामने अस्तित्वहीन हो गया था। क्रोध तो आपमें लेशमात्र भी नहीं था। जिस समय विश्वामित्र ने इनके सौ पुत्रों का संहार किया, उस समय भी आप विरक्त बने रहे। सामर्थ्य होते हुए भी इन्होंने विश्वामित्र के अनिष्ट का चिन्तन नहीं किया, बल्कि क्षमाधर्म का ही पालन किया।

आपकी गौ-सेवा व गौभक्ति सभी गौ भक्तों के लिये आदर्श रही है। कामधेनु की पुत्री नन्दिनी नामक गौ आपके आश्रम की शोभा थी। अनन्त शक्ति सम्पन्न नन्दिनी के प्रभाव से दुर्लभ पदार्थ भी उन्हें सदा सुलभ रहता था। ऋग्वेद में बताया गया है कि ऋषि वसिष्ठ हजार गायों के अधिपति और विद्या तथा कर्म में महान् थे।

महर्षि वसिष्ठ जहाँ अपरिग्रह, त्याग व वैराग्य के उपासक थे वहीं आप युद्धनीति व अस्त्रविद्या के भी महान् आचार्य थे। दशराज युद्ध में एक तरफ राजा सुदास की सेना, जिसका नेतृत्व महर्षि वसिष्ठ कर रहे थे, दूसरी तरफ दस राजाओं की सेना, जो महर्षि विश्वामित्र की शक्ति से सम्पन्न थी, के परस्पर युद्ध में दशराज (दस राजाओं की) सेना को हारना पड़ा। यह महर्षि वसिष्ठ जी के रणकौशल का ही परिणाम था।

उपदेश :-

1. ऋग्वेद के सप्तम् मण्डल के प्रथम सूक्त में कुल 25 मंत्र है। जिसमें महर्षि वसिष्ठ द्वारा अग्निदेव से शुद्ध बुद्धि की कामना, वाणी में परिष्कार, योगक्षेम, सुख-शान्ति और दीर्घायु की कामना की गई है।
2. ऋग्वेद के सप्तम् मण्डल के 41 वें सूक्त में सात ऋचाएँ हैं जिसमें महर्षि वसिष्ठ ने देवताओं से सभी प्रकार के रोगों से मुक्ति की प्रार्थना की है।
3. ऋग्वेद के सप्तम् मण्डल के 53 वें सूक्त (तीन मंत्र) तथा 54 वें सूक्त का प्रथम मंत्र वास्तु- देवता के लिये हैं - 'हे वास्तुदेवता! इस वास्तु क्षेत्र में या गृह में निवास करने वाले हमारे स्त्री-पुत्रादि, परिवार-परिजनों के लिये

कल्याणकारक हों तथा हमारे अधीनस्थ गौ, अश्व आदि सभी चतुष्पद प्राणियों का आप कल्याण करें।'

4. **महामृत्युञ्जय मंत्र** महर्षि वसिष्ठ ने ही हमें दिया है। आचार्य शौनक ने इस मंत्र के विषय में बताया है कि इसका नियमपूर्वक व्रत तथा पायस के हवन से दीर्घायु प्राप्त होती है, मृत्यु दूर हो जाती है, तथा सब प्रकार का सुख प्राप्त होता है।
5. ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के 101वें सूक्त को 'पर्जन्य-सूक्त' कहते हैं। इसमें छः ऋचायें हैं। आचार्य शौनक के अनुसार सूर्याभिमुख होकर छः ऋचाओं के पाठ से शीघ्र अनावृष्टि दूर हो जाती है, यथेच्छ वर्षा होती है, जिससे सभी वनस्पतियों व औषधियों का प्रादुर्भाव होता है। सभी प्रकार का दुर्भिक्ष दूर हो जाता है तथा सर्वत्र सुख शान्ति प्राप्त होती है।
6. ऋग्वेद के सप्तम् मण्डल के अन्तिम 104 वें सूक्त में महर्षि वसिष्ठ ने इन्द्र देवता से सब प्रकार से रक्षा करने की प्रार्थना की है। न केवल दुष्टों से बल्कि काम, क्रोध, लोभ, आदि जो बुराइयाँ हैं, उनसे भी दूर रखने की प्रार्थना की है।
7. सत्य, अहिंसा, मैत्री, सदाचार, लोक कल्याण, पवित्रता, उदारता, माता-पिता और गौ भक्ति का उपदेश अनेक मंत्रों में दिया गया है। साथ ही महर्षि ने अभिलाषा की है कि हम लोग सत्य के पथ का अनुसरण करते हुए सौ वर्षों तक जीवित रहें, सौ वर्ष तक कल्याण ही कल्याण देखें।

   पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्। (ऋक्. 7/66/16) (शुक्ल.यजु.36/24)

4. महर्षि विश्वामित्र

पुरुषार्थ, लगन, उद्यम और तप की गरिमा के रूप में विश्वामित्र के समान शायद ही कोई ऋषि हुए हैं। इन्होंने अपने पुरुषार्थ तथा तपस्या के बल से क्षत्रियत्व से ब्रह्मत्व प्राप्त किया। राजर्षि से ब्रह्मऋषि बने।

ऋग्वेद के दस मण्डलों में तृतीय मण्डल, जिसमें 62 सूक्त (मंत्रों का समूह) हैं, के दृष्टा ऋषि विश्वामित्र ही हैं। इसलिये तृतीय मण्डल वैश्वामित्र-मण्डल कहलाता है। इसी मण्डल में ब्रह्म-गायत्री का मूल मंत्र, उपलब्ध है। ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के 62 वें सूक्त का दसवां मंत्र गायत्री मंत्र के नाम से विख्यात है। विश्वामित्र की कृपा व उनकी साधना से जगत् को यह मंत्र प्राप्त हुआ। यह मंत्र सभी वेद मंत्रों का मूल मंत्र है- बीज है। इसी से सभी मंत्रों का प्रादुर्भाव हुआ है। इसलिये गायत्री को 'वेदमाता' कहा जाता है।

विश्वामित्रकल्प, विश्वामित्रसंहिता तथा विश्वामित्रस्मृति आदि इनके मुख्य ग्रन्थ हैं। इनमें भी गायत्री आराधना का वर्णन दिया गया है और यह निर्देश दिया गया है कि केवल इस मंत्र के जप कर लेने से सभी मंत्रों का जप सिद्ध हो जाता है। महामुनि विश्वामित्र को गायत्रीमाता सिद्ध थी और इन पर माता की पूर्ण कृपा थी। इन्होंने नवीन सृष्टि तथा त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग आदि भेजने तथा ब्रह्मऋषि पद प्राप्त करने सम्बन्धी जो भी असम्भव कार्य किये, उन सबके पीछे गायत्री जप एवं संध्योपासना का ही प्रभाव था। भगवान् राम इन्हें अपना गुरु मान कर इनकी सेवा करते थे। महर्षि ने सभी शास्त्रों तथा धनुर्विद्या के आचार्य श्रीराम को बला तथा अतिबला विद्या प्रदान की, सभी शास्त्रों का ज्ञान प्रदान किया तथा भगवान् राम की चिन्मय लीलाओं के वे मूल प्रेरक रहे तथा लीला सहचर भी बने।

महर्षि वसिष्ठ से जब वे परास्त हो गये, तब उन्होंने तपोबल का आश्रय लिया। काम, क्रोध के वशीभूत होने का उन्हें पश्चात्ताप हुआ और अन्त में सर्वस्व त्याग कर वे अनासक्त पथ के पथिक बन गये। ब्रह्माजी स्वयं उपस्थित हुए और उन्हें ब्रह्मऋषि का पद प्रदान किया। महर्षि वशिष्ठ ने उनकी महिमा का वर्णन किया व उन्हें गले लगाया।

महर्षि विश्वामित्र की दारुण परीक्षा से ही सत्यवादी हरिश्चन्द्र की सत्यता में निखार आया। उस वृत्तांत में महर्षि अत्यन्त निष्ठुर से प्रतीत होते हैं किन्तु महर्षि ने हरिश्चन्द्र को सत्य धर्म की रक्षा का आदर्श बनाने तथा उनकी कीर्ति को अखण्ड बनाने के लिये ही उनकी कठोर परीक्षा ली थी। अन्त में उन्होंने उनका राज्य लौटा दिया, रोहिताश्व को जीवित कर दिया तथा महर्षि की परीक्षा रूपी कृपा से हरिश्चन्द्र राजा से राजर्षि हो गये।

शास्त्रों के अनुसार कुशिक वंश में उत्पन्न चन्द्रवंशी महाराज गाधि को पुत्र रूप में विश्वामित्र प्राप्त हुए। आगे चलकर महर्षि विश्वामित्र के अनेक पुत्र व पौत्र हुए। गाधि की पुत्री सत्यवती के पुत्र रूप में जमदग्नि पैदा हुए और उन्हीं के पुत्र परशुराम हुए।

5. महर्षि अत्रि

ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल के दृष्टा ऋषि अत्रि हैं। इसलिये यह मण्डल आत्रेय मण्डल कहलाता है। महर्षि अत्रि वैदिक मंत्रद्रष्टा हैं। ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं। महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूयाजी हैं, जो कर्दम प्रजापति और देवहुति की पुत्री हैं। देवी अनसूया पतिव्रताओं का आदर्श और दिव्य तेज से सम्पन्न हैं। भगवान राम स्वयं अत्रि के आश्रम पर पधारे थे। माता अनसूया ने सीता को

पतिव्रत का उपदेश दिया। अत्रिदम्पती सदाचारपरायण होकर चित्रकूट के तपोवन में रहते थे। अत्रि पत्नी अनसूया के तपोबल से ही भागीरथी गंगा की एक धारा चित्रकूट में प्रविष्ट हुई और 'मंदाकिनी' नाम से प्रसिद्ध हुई।

सृष्टि के प्रारम्भ में जब इस दम्पती को ब्रह्मा जी ने सृष्टिवर्धन की आज्ञा दी तो उन्होंने उस ओर उन्मुख न होकर तपस्या का आश्रय लिया। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु व महेश ने इन्हें दर्शन दिया और दम्पती की प्रार्थना पर इनका पुत्र बनना स्वीकार किया। विष्णु के अंश से महायोगी दत्तात्रेय, ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा तथा शंकर के अंश से महामुनि दुर्वासा, पुत्र के रूप में अत्रि दम्पती को प्राप्त हुए।

महर्षि अत्रि प्रजापति पद पर रहे और प्रजा की व्यवस्था का भार उन पर रहा। अतः प्रजा कैसे सुखी रहे, और किस प्रकार धर्माचरण से वह सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त हो, इस पद्धति को बताने के लिये उन्होंने वैदिक मंत्रों को प्रकाशित किया। धर्माचरण, सदाचार और कर्त्तव्य की शिक्षा देने के लिये 'अत्रिस्मृति' तथा 'अत्रिसंहिता' नामक ग्रन्थों का निर्माण किया। 'अत्रिस्मृति' में ऋषि ने कहा है कि न्यास में रखी हुई वस्तु, अर्थात् धरोहर में रखी वस्तु का जो अपहरण करता है वह दूसरे जन्म में संतानरहित होता है।

प्रत्येक मांगलिक कार्य में, शुभ संस्कारों व पूजा अनुष्ठानों में स्वस्ति-प्राप्ति, अभ्युदय प्राप्ति, भगवत कृपा तथा अमंगल के विनाश के लिये सस्वर पाठ होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि महर्षि अत्रि की भावना अत्यन्त ही कल्याणकारी थी। अत्रिस्मृति के 9वें अध्याय में महर्षि अत्रि ने कहा है कि यदि द्वेष भाव से वैरपूर्वक भी भगवान का स्मरण किया जाये तो उद्धार होने में कोई संदेह नहीं। इस प्रकार महर्षि अत्रि ने अपने द्वारा द्रष्ट मंत्रों में, अपने धर्मसूत्रों में और अपने आचरण से यही बात बताई है कि व्यक्ति को सत्कर्म का ही अनुष्ठान करना चाहिये।

6. महर्षि गृत्समद्

महर्षि गृत्समद् ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के दृष्टा ऋषि हैं। आप अंगिरस गोत्रीय 'शुनहोत्र' ऋषि के पुत्र हैं इसलिए इनका पैतृक नाम 'शौनकहोत्र' था। इनके द्वारा द्रष्ट ऋग्वेद का द्वितीय मण्डल, जिसमें कुल 43 सूक्त हैं, गार्त्समद-मण्डल कहलाता है।

महर्षि गृत्समद् में तपस्या का महान बल था, वे यथेच्छ रूप बनाकर देवताओं की सहायता करते थे। एक बार महर्षि गृत्समद् का एक महान् यज्ञ सम्पादित हो रहा था। देवताओं के राजा इन्द्र स्वयं उस यज्ञ में सम्मिलित हुए।

असुर इन्द्र से द्वेष रखते थे। असुरों में द्युनि तथा चामुरि नामक दो महाबलशाली असुर थे, वे इन्द्र पर घात लगाने के लिये अवसर ढूँढा करते थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि इन्द्र गृत्समद् के यज्ञ में गए हुए हैं तो वे बड़ी शीघ्रता से असुरों को लेकर वहाँ जा पहुँचे, जहाँ यज्ञ हो रहा था। असुरों को दूर से आता देख महर्षि गृत्समद् ने इन्द्र की रक्षा के लिये अपनी तपस्या व योग बल से स्वयं को इन्द्र के रूप में परिवर्तित कर लिया और क्षण भर में वे उनके सामने से अदृश्य हो गये। इन्द्र रूपधारी मुनि कभी अन्तरिक्ष में दिखाई पड़ते, तो कभी द्युलोक में। मुनि ने उन्हें खूब भटकाया और अन्त में बताया कि मैं वास्तविक इन्द्र नहीं हूँ, वह तो यज्ञस्थल में है। गृत्समद् ने उन दोनों असुरों के समक्ष इन्द्र की वीरता, शौर्य तथा प्रभुत्व का ऐसा वर्णन किया कि द्युनि तथा चामुरि नामक उन महादैत्यों का मनोबल समाप्त हो गया। उसी समय इन्द्र ने उपस्थित होकर उन दोनों महादैत्यों का वध कर डाला।

महर्षि गृत्समद् का ऐसा अद्भुत तपोबल देखकर इन्द्र उन पर प्रसन्न हुए और उन्हें अपना अत्यन्त प्रिय सखा बना लिया। उन्हें अक्षय तप, वाक्सिद्धि, अद्भुत पराक्रम, मंत्र शक्ति तथा अखण्ड भक्ति का वरदान दिया। गृत्समद् द्वारा की गई वह स्तुति जो उन्होंने दैत्यों के समक्ष की थी, ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के 12 वें सूक्त में है। यह सूक्त 'सजनीय सूक्त' कहलाता है। इस सूक्त में कुल 15 मंत्र हैं। गृत्समद हैहय क्षत्रिय राजा वीतहव्य के पुत्र थे। एक बार काशीराज प्रतर्दन के भय से वीतहव्य राजा महर्षि भृगु के आश्रम में जा छिपे। इन्हें खोजते हुए प्रतर्दन भी वहाँ जा पहुँचे। पहुँचने पर भृगु ने उन्हें कहा कि 'मेरे आश्रम में क्षत्रिय नहीं रहता।' तपोधन ऋषियों के वचन झूठे नहीं होते। अतः भृगु के उस वचन मात्र से क्षत्रिय राजा वीतहव्य ब्राह्मण हो गये। इनके पुत्र गृत्समद भी क्षत्रिय से मंत्रदृष्टा परमर्षि तथा भृगुवंशी हो गये।

7. महर्षि वामदेव

महर्षि वामदेव ऋग्वेद के चौथे मण्डल के मंत्रदृष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेद में ऋषि ने स्वयं अपना परिचय दिया है जिससे स्पष्ट होता है कि इन्हें गर्भ में ही आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान का साक्षात्कार हो गया था। ऋग्वेद की एक ऋचा का इन्हें माता के गर्भ में ही दर्शन हो गया था। इसलिये उन्होंने अपनी माता के उदर में ही कहा था –

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येन्नोजवसा निरदीयम्।।

(ऋक्. 4/27/1)

'अहो! कितने आनन्द और आश्चर्य की बात है कि गर्भ में रहते-रहते ही मैंने इस अन्तःकरण और इन्द्रिय रूप देवताओं के अनेक जन्मों का रहस्य भली-भाँति जान लिया। अर्थात् मैं इस बात को जान गया कि ये जन्मादि वास्तव में इन अन्तःकरण और इन्द्रियों के ही होते है,आत्मा के नहीं। इस रहस्य को समझने से पहले मैंने स्वयं को सैकड़ों लोहे के समान कठोर शरीर रूपी पिंजरों में अवरुद्ध कर रखा था। उसमें मेरी दृढ़ अहंता हो गई थी, उससे छूटना मेरे लिये कठिन हो रहा था। अब मैं बाज पक्षी की भाँति ज्ञान रूपी बल के वेग से उन सब को तोड़कर उनसे अलग हो गया हूँ। अब उस शरीर-रूपी पिंजरे से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।' इस ऋचा में गर्भस्थ वामदेव ने यह उपदेश दिया है कि देह आदि में आसक्ति नहीं करनी चाहिये। जैसे पक्षी घोंसले से भिन्न है, वैसे ही यह आत्मतत्व भी शरीर से सर्वथा भिन्न है।

महर्षि वामदेव गौतम के पुत्र हैं। गायत्री मंत्र के 24 अक्षरों के पृथक-पृथक ऋषि हैं। उनमें पाँचवें अक्षर के ऋषि वामदेव ही हैं। रामायण में वर्णन आया है कि महर्षि वामदेव राजर्षि दशरथ के प्रधान ऋत्विक् और कुल पुरोहित रहे हैं।

महर्षि वामदेव ने विश्वामित्र द्वारा द्रष्ट 'संयात सूक्तों' का प्रचार किया है। इनके यज्ञ में स्वयं इन्द्र उपस्थित होकर इनके यज्ञ की रक्षा करते थे।

8. महर्षि भरद्वाज

ऋग्वेद के छठे मण्डल के दृष्टा भरद्वाज ऋषि कहे गये हैं। अथर्ववेद में भी भरद्वाज के मंत्र मिलते हैं। भरद्वाज के पिता बृहस्पति और माता ममता थीं।

ऋषि भरद्वाज के पुत्रों में 10 ऋषि ऋग्वेद के मंत्रदृष्टा थे। एक पुत्री जिसका नाम 'रात्रि' था वह भी 'रात्रि सूक्त' की मंत्रदृष्टा मानी गई है। ऋषिका 'कशिपा' भी भरद्वाज की पुत्री है। इस प्रकार भरद्वाज की 12 संतानें मंत्रदृष्टा ऋषियों की कोटि में सम्मिलित थी। भरद्वाज ने इन्द्र से आयुर्वेद सीखा था। आयुर्वेद के गहन अध्ययन के आधार पर भरद्वाज ने 'आयुर्वेद संहिता' की रचना की।

भरद्वाज ने भृगु से धर्मशास्त्र का उपदेश प्राप्त किया था। इसके आधार पर उन्होंने भरद्वाज स्मृति की रचना की। महाभारत के शान्ति पर्व के अनुसार ऋषि भरद्वाज ने धनुर्वेद पर प्रवचन किया था। कौटिल्य ने अपने से पूर्व में हुए अर्थशास्त्र के रचनाकारों में ऋषि भरद्वाज को ससम्मान स्वीकारा है।

ऋषि भरद्वाज ने 'यंत्र सर्वस्व' नामक वृहद् ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ का कुछ भाग स्वामी ब्रह्ममुनि ने 'विमान शास्त्र' के नाम से प्रकाशित कराया

है। इस ग्रन्थ में उच्च और निम्न स्तर पर विचरने वाले विमानों के लिये विविध धातुओं का वर्णन है।

ऋषि भरद्वाज एक साथ व्याकरणशास्त्र, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, आयुर्वेद और भौतिकविज्ञानवेत्ता थे। भरद्वाज ने सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन किया। तैत्तिरीय आरण्यक में एक आख्यायिका है- भरद्वाज ऋषि ने तीन आयु पर्यन्त (बाल्य, यौवन व वृद्ध) ब्रह्मचर्य का ही अनुष्ठान किया। जब वे जीर्ण हो गये तब इन्द्र ने उनके पास आकर कहा- 'भरद्वाज! चौथी आयु तुम्हें दूँ तो तुम उस आयु में क्या करोगे?' भरद्वाज ने कहा –'मैं वेदों का अन्त देख लेना चाहता हूँ, अतः जितना भी जीवन मुझे दिया जायेगा, मैं उसमें ब्रह्मचर्य का ही अनुष्ठान करता रहूँगा और वेद का ही अध्ययन करुँगा।' इन्द्र ने भरद्वाज को तीन पर्वत दिखाये, जिनका कहीं ओर-छोर नहीं था। इन्द्र ने कहा –'ये ही तीन वेद हैं। इनका अन्त तुम कैसे प्राप्त कर सकते हो?' इसके बाद इन्द्र ने तीनों में से एक-एक मुट्ठी भरद्वाज को देकर कहा –'मानव समाज के लिये इतना ही पर्याप्त है। वेद तो अनन्त हैं।' '**अनन्ताः वै वेदाः**।'

कहते हैं कि इन्द्र के द्वारा प्रदत्त यह तीन मुट्ठी ही वेदत्रयी (ऋक्, यजु, साम) के रूप में प्रकट हुई। द्वापर युग की समाप्ति तक तीन वेद ही कहलाते थे। कलियुग में वेदव्यास जी ने यज्ञानुष्ठान आदि के उपयोग को दृष्टिगत रखकर वेद के चार विभाग कर दिये। ये विभाग ही आजकल ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के नाम से प्रसिद्ध हैं। आयुर्वेद के प्रयोग में वे परम निपुण थे। इसलिये उन्होंने ऋषियों में सबसे अधिक आयु प्राप्त की। वनवास के समय श्रीराम इनके आश्रम में आये थे। यह समय त्रेता-द्वापर का संधि काल था।

भरद्वाज की शिक्षाएँ :-

1. भरद्वाज ऋषि कहते हैं – 'हम झुकें नहीं। हम सामर्थ्यवान के आगे भी नहीं झुकें। दृढ़ व्यक्ति के सामने भी न झुकें। क्रूर-दुष्ट-हिंसक व्यक्ति के सामने भी हमारा सिर नहीं झुके।
2. जीभ से ऐसी वाणी बोलनी चाहिये कि सुनने वाला बुद्धिमान बने।
   '**जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ**।'
3. हमारी विद्या ऐसी हो जिससे हम कपटी दुष्टों का सामना करें, जो युद्ध में संरक्षण दे, इच्छित धन को प्राप्त कराए और हमारी बुद्धि को निन्दित मार्ग से रोके।

4. हमारी सरस्वती, हमारी विद्या इतनी समर्थ हो कि वह सभी प्रकार के मानवों का पोषण करे। हे सरस्वति! सभी कपटी दुष्टों का नाश कर।
5. हे सरस्वति ! तू युद्ध में हम सब का रक्षण कर। हे सरस्वति ! तू हम सब की बुद्धियों की सुरक्षा कर।
6. ऋषि का आदेश है – '**श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः**'
   अरे, ओ! ज्ञान को प्रत्यक्ष करने वालों! प्रजाजनों को उस उत्तम ज्ञान को सुनाओ और जो दास हैं, सेवक हैं, उनको श्रेष्ठ नागरिक बनाओ। **दासान्यार्याणि करः (ऋक्. 6/22/10)**
   यहाँ चौथे वर्ण सहित सम्पूर्ण समाज को शिक्षित करने का उपदेश दिया गया है।

9. महर्षि भृगु

एक बार मुनियों की यह जानने की इच्छा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव इन तीनों में श्रेष्ठ कौन है ? किन्तु ऐसे महान् देवों की परीक्षा लेने का सामर्थ्य किसमें है? उसी मुनि मण्डली में महर्षि भृगु भी विद्यमान थे। सभी की दृष्टि महर्षि भृगु पर टिक गयी। महर्षि भृगु त्रिदेवों के परीक्षक बन गये। सर्वप्रथम भृगु अपने पिता ब्रह्माजी के पास गये। उन्हें प्रणाम नहीं किया। मर्यादा का उल्लंघन देखकर ब्रह्मा रुष्ट हो गये। भृगु ने देखा कि इनमें क्रोध का प्रवेश है। वहां से लौटकर वे महादेव के पास गये। वहाँ भी ऋषि को संतोष नहीं हुआ। अब वे विष्णु के पास गये। देखा कि नारायण शेष–शय्या पर शयन कर रहे हैं। माता लक्ष्मी उनके चरणों में बैठी हैं। भगवान् के पास जाकर महामुनि ने उनके वक्षस्थल पर तीव्र वेग से लात मारी। इस पर भगवान् जाग पड़े और मुस्कुराने लगे। भृगु जी ने देखा कि यह तो क्रोध का अवसर था, परीक्षा के लिये मैंने यह कृत्य किया था, लेकिन यहाँ तो कुछ भी असर नहीं है। भगवान् नारायण ने प्रसन्नतापूर्वक मुनि को प्रणाम किया और कहने लगे – 'मुनिवर ! आपके पैर में चोट तो नहीं आई। ब्राह्मण देवता! आपने मुझ पर बड़ी कृपा की। आपका यह चरण चिह्न मेरे वक्षस्थल पर सदा के लिये अंकित हो जायेगा।' भगवान् विष्णु की ऐसी सहृदयता देखकर भृगु ने यह निश्चय किया कि देवों के देव भगवान् नारायण ही हैं।

महर्षि भृगु ब्रह्माजी के नौ मानस पुत्रों में एक हैं। सप्तऋषियों में इनकी गणना है। महर्षि च्यवन इन्हीं के पुत्र हैं। प्रजापति दक्ष की कन्या ख्याति देवी इनकी पत्नी हैं। महर्षि भृगु के वंशज भार्गव कहलाए। महर्षि भृगु तथा उनके वंशधर अनेक मंत्रों के दृष्टा हैं।

10. महर्षि याज्ञवल्क्य

वैदिक मंत्रदृष्टा ऋषियों में महर्षि याज्ञवल्क्य का स्थान सर्वोपरि है। वे महान् अध्यात्मवेत्ता, योगी, ज्ञानी, धर्मात्मा तथा श्रीरामकथा के प्रमुख प्रवक्ता हैं। सूर्य की इन्हें प्रत्यक्ष कृपा प्राप्त थी। पुराणों में इन्हें ब्रह्माजी का अवतार माना गया है। श्रीमद्भागवत (12/6/164) में आया है कि ये देवरात के पुत्र थे।

याज्ञवल्क्य महर्षि वैशम्पायन के शिष्य थे। वैशम्पायन अपने शिष्य याज्ञवल्क्य से बहुत स्नेह रखते थे और इनकी भी गुरु में अनन्य श्रद्धा थी। एक बार गुरुजी से उनका कुछ विवाद हो गया, इससे गुरुजी नाराज हो गये और कहने लगे – 'मैंने तुम्हें यजुर्वेद के जिन मंत्रों का उपदेश दिया है, उन्हें तुम उगल दो'। निराश हो याज्ञवल्क्य जी ने वेदमंत्रविद्या मूर्त रूप में उगल दी जिन्हें वैशम्पायन जी के अन्य शिष्यों ने तित्तिर (तीतर पक्षी) बनकर श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर लिया। वे वेदमंत्र अन्य शिष्यों को प्राप्त हो गये। यजुर्वेद की वही शाखा 'तैत्तिरीय शाखा' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

याज्ञवल्क्य अब वेदज्ञानशून्य हो गये थे। गुरुजी रुष्ट थे। अब क्या करें? तब उन्होंने भगवान् सूर्य–नारायण की शरण ली। उन्होंने सूर्यदेव से प्रार्थना की, 'हे भगवन्! हे प्रभो! मुझे यजुर्वेद की ऐसी प्राप्ति हो, जैसी अब तक किसी को न हुई हो।' भगवान् सूर्य ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया और अश्व रूप धारण कर यजुर्वेद के उन मंत्रों का उपदेश किया जो अभी तक किसी को प्राप्त नहीं हुए थे। अश्वरूप सूर्य से प्राप्त होने के कारण शुक्लयजुर्वेद की एक शाखा 'वाजसनेय' के नाम से प्रसिद्ध हो गई। इस प्रकार शुक्लयजुर्वेद हमें महर्षि याज्ञवल्क्य से ही प्राप्त हुआ है। पूजा, अनुष्ठानों, संस्कारों आदि में इसी संहिता के मंत्र गाये जाते हैं। रुद्राष्टाध्यायी नाम से जिन मंत्रों द्वारा भगवान् शिव (रुद्र) की उपासना होती है, वे इसी संहिता में विद्यमान हैं। इतना ही नहीं, 'इस संहिता का भाग 'शतपथ ब्राह्मण' के नाम से प्रसिद्ध है और 'बृहदारण्यक उपनिषद्' भी हमें महर्षि याज्ञवल्क्य से प्राप्त हुआ है। विदेहराज जनक जैसे अध्यात्मवेत्ताओं के ये गुरु रहे हैं। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' ग्रन्थ की आपने रचना की।

गार्गी, मैत्रेयी और कात्यायनी के साथ आपका ज्ञान–विज्ञान सम्बन्धी जो विचारमन्थन हुआ, वह बहुत ही मार्मिक तथा कल्याणकारी है, उपनिषदों व पुराणों में उल्लेखित है। ब्रह्मविद्या के तत्वदर्शी होने के साथ ही महर्षि याज्ञवल्क्य उच्च कोटि के भक्त थे। प्रयाग में इन्होंने ऋषियों के समाज में महर्षि भरद्वाज जी को दिव्य रामचरित्र सुनाया था।

11. महर्षि अगस्त्य

ब्रह्मतेज के मूर्तिमान स्वरूप महामुनि अगस्त्य जी का पावन चरित्र अत्यन्त उदात्त तथा दिव्य है। ऋग्वेद का कथन है कि 'मित्र' तथा 'वरुण' नामक देवताओं का अमोघ तेज एक दिव्य यज्ञीय कलश में पुञ्जीभूत हुआ और उसी कलश के मध्यभाग से दिव्य तेज सम्पन्न महर्षि अगस्त्य का प्रादुर्भाव हुआ। महर्षि अगस्त्य की धर्मपत्नी लोपामुद्रा हैं जो स्वयं श्रीविद्या की आचार्य तथा महान् पतिव्रता नारी हैं। आगम ग्रन्थों में इस दम्पती की देवी साधना का विस्तार से वर्णन आया है।

महर्षि अगस्त्य महातेजा तथा महातपा ऋषि थे। समुद्र में रहने वाले राक्षसों से घबराकर जब देवता लोग इनकी शरण में आये और अपना दुःख कह सुनाया तो ये सारा समुद्र ही पी गये। जिससे सारे राक्षसों का विनाश हो गया। एक बार विंध्याचल सूर्य का मार्ग रोककर खड़ा हो गया, जिससे सूर्य का आवागमन बन्द हो गया। सूर्य इनकी शरण में आये तो इन्होंने विन्ध्य पर्वत को स्थिर कर दिया और कहा –'जब तक मैं दक्षिण देश से न लौटूँ तुम ऐसे ही झुके रहो'। ऐसा ही हुआ। विन्ध्याचल नीचे हो गया। फिर अगस्त्यजी लौटे ही नहीं, अतः विन्ध्य पर्वत उसी रूप में स्थिर रह गया।

इस प्रकार बहुत से असम्भव कार्य ऋषि अगस्त्य ने अपनी मंत्र शक्ति से सहज ही कर दिखाये और समाज का कल्याण किया। भगवान् राम वनगमन के समय इनके आश्रम में पधारे थे। महामुनि सुतीक्ष्ण इनके शिष्य थे। 'अगस्त्य संहिता' आदि अनेक ग्रन्थों की इन्होंने रचना की जो तान्त्रिक साधना के लिये महान् उपयोगी हैं।

ऋषि अगस्त्य ने अपनी तपस्या से अनेक ऋचाओं के स्वरूपों का दर्शन किया था, इसलिये ये मंत्रदृष्टा ऋषि कहलाते हैं। ऋग्वेद के अनेक मंत्र इनके द्वारा द्रष्ट हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 165 सूक्त से 191 सूक्त तक के दृष्टा ऋषि अगस्त्यजी हैं। इनके पुत्र दृढ़च्युत तथा दृढ़च्युत के पुत्र इध्मवाह भी नवम् मण्डल के 25 तथा 26 वें सूक्त के दृष्टा ऋषि हैं। महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा आज भी पूज्य हैं तथा नक्षत्र मण्डल में विद्यमान हैं।

ऋषि अगस्त्य की उपरोक्त घटनायें इनकी इच्छाशक्ति व संकल्प का प्रतीक हैं, जिनसे उन्होंने बहुत से असम्भव कार्यों को सम्भव कर दिखाया।

12. महर्षि अंगिरा

पुराणों में बताया गया है कि महर्षि अंगिरा ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं तथा ये गुणों में ब्रह्माजी के ही समान हैं। इन्हें प्रजापति भी कहा गया है तथा सप्तऋषियों में

वसिष्ठ, विश्वामित्र व मरीचि आदि के साथ इनकी गणना होती है। इनकी पत्नी दक्ष–प्रजापति की पुत्री 'स्मृति' थी जिससे इनके वंश का विस्तार हुआ।

इनकी तपस्या और उपासना इतनी तीव्र थी कि इनका तेज और प्रभाव अग्नि की अपेक्षा बहुत बढ़ गया। उस समय अग्निदेव भी जल में रहकर तपस्या कर रहे थे। जब अग्निदेव ने देखा कि अंगिरा के तपोबल के सामने मेरी तपस्या कमजोर पड़ रही है तो वे दुःखी हो अंगिरा के पास गये और कहने लगे –'आप प्रथम अग्नि हैं, मैं आपके तेज के सामने न्यून होने से द्वितीय अग्नि हूँ। मेरा तेज आपके सामने फीका है, मुझे आज्ञा दीजिये' तब महर्षि अंगिरा ने सम्मानपूर्वक उन्हें देवताओं को हवि पहुँचाने का काम सौंपा साथ ही पुत्र के रूप में अग्नि का वरण किया। बाद में अग्निदेव ही बृहस्पति के नाम से अंगिरा के पुत्र रूप में प्रसिद्ध हुए। इनकी 'अंगिरा स्मृति' में सुन्दर उपदेश तथा धर्माचरण की शिक्षा है।

सम्पूर्ण ऋग्वेद में महर्षि अंगिरा तथा उनके वंशधरों तथा शिष्यों का जितना उल्लेख है, उतना अन्य किसी ऋषि के सम्बन्ध में नहीं है। विद्वानों का यह अभिमत है कि महर्षि अंगिरा से सम्बन्धित वंश और गोत्रकार ऋषि प्रथम, द्वितीय व तृतीय आदि अनेक मण्डलों के कतिपय सूक्तों के दृष्टा ऋषि हैं।

ऋषि ने अंगिरा स्मृति (58) में बताया है कि जो व्यक्ति निन्दनीय कर्म करता है, उससे उसका जो पापफल बनता है, वह पाप उसके अन्न का आश्रय पाकर टिका रहता है। इसलिये ऐसे दुराचारी का जो व्यक्ति अन्न ग्रहण करता है, वह भी पापाचारी बन जाता है। अतः ऐसे लोगों का अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार महर्षि अंगिरा ने अपनी स्मृति के 120 वें मंत्र में बताया है कि निन्द्य कर्म चाहे अज्ञान या प्रमाद से हो जाए तो भी वह मनुष्य को जला ही डालता है। अतः व्यवहार में बहुत सावधानी रखनी चाहिए।

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा दहते कर्म नेतरत। (अंगिरा. 120)

13. महर्षि शौनक

मुण्डकोपनिषद् तथा परब्रह्मोपनिषद् में इन्हें महाशाल विश्वविद्यालय का कुलपति कहा गया है। ब्रह्मपुराण, हरिवंशपुराण एवं वायुपुराण के अनुसार ये महर्षि गृत्समद के पुत्र हैं एवं चातुर्वर्ण्य के विशेष प्रवर्तक हुए हैं। ये अथर्ववेद के दृष्टा ऋषि हैं। इनकी मुख्य संहिता को शौनक संहिता कहते हैं। ऋग्वेद के दूसरे मण्डल के दृष्टा भी आप ही हैं। इनके रचित ग्रन्थ भी बहुत हैं। यथा – चरणव्यूह, वृहद्देवता, अथर्ववेद के 72 परिशिष्ट, छन्दोऽनुक्रमणी, ऋष्यनुक्रमणी, शौनक स्मृति, आयुष्यहोम, पादविधान, आदि।

मत्स्य पुराण के अनुसार वास्तुशास्त्र के भी आप प्रमुख प्रणेता हैं। वंश पुराण में इन्हें कात्यायन का गुरु बताया गया है। इसके अतिरिक्त शौनकीय कल्प, शौनकीय शिक्षा आदि भी इनके ग्रन्थ हैं।

भागवत में 'शतानीक' को याज्ञवल्क्य का शिष्य कहा गया है। उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान याज्ञवल्क्य से प्राप्त किया था, किन्तु कर्मकाण्ड तथा शास्त्र का ज्ञान महर्षि शौनक से ही प्राप्त किया था। भागवत में वे कहते हैं कि सत्संग यदि भगवत्चर्चा से अथवा भक्तों की चर्चा से युक्त हो तभी आप यह कथा कहें। अन्य बातों से कोई लाभ नहीं अन्यथा आयु का व्यर्थ अपव्यय होता है। वे श्रीभगवान् की कथा श्रवण कीर्तन से रहित कान-मुँह को साँप का बिल और जीभ को मेंढक की जीभ कहते हैं।

महर्षि शौनक नैमिषारण्यवासी 88 हजार ऋषियों के कुलपति थे। भविष्य पुराण के अनुसार ये सभी 88 हजार ऋषियों को लेकर म्लेच्छ-आक्रांत (विदेशी हमलों से आक्रांत) होकर नैमिषारण्य को छोड़कर बदरीकाश्रम में जाकर कथा-श्रवण का प्रबन्ध करते थे। महाभारत वन पर्व के दूसरे अध्याय में इन्हें सांख्ययोग-कुशल भी कहा गया है। वहाँ ये युधिष्ठिर से कहते हैं कि आसक्ति के कारण दुःख, भय, शोक-हर्ष सभी उपद्रव आ घेरते हैं। अतः राग को छोड़कर विरक्त बनना चाहिए। राग से तृष्णा उत्पन्न होकर प्राणान्तक (प्राण-लेवा) रोग बन जाती है। अर्थ भी घोर अनर्थकारी है। इससे दर्प (घमण्ड), अनीति, कार्पण्य आदि अनेक दोष प्रकट होते हैं। अतः तृष्णा आदि का त्यागकर संतोष का आश्रय लेना चाहिए।

वस्तुतः शौनक, जैमिनी, व्यास आदि ऋषियों ने स्वाध्याय के द्वारा लोक-रक्षा, धर्म-रक्षा, सदाचार एवं चरित्र-रक्षा के लिये अपना सारा जीवन ही लगा दिया था। अतः हमारे लिये आज भी ये प्रेरणापुरुष हैं।

14. आदि शंकराचार्य

आदि शंकराचार्य के सम्बन्ध में एक श्लोक प्रसिद्ध है -

अष्टवर्षे चतुर्वेदी षोडसे सर्वभाष्यकृत्।
चतुर्विंशे दिग्विजयी द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्।।

अर्थात् आचार्य शंकर को आठ वर्ष की अवस्था में ही समस्त वेद-वेदांगों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो गया था, सोलह वर्ष की अवस्था में वे वेद-वेदांगों के भाष्य लिख चुके थे और चौबीस वर्ष की अवस्था में हिन्दू धर्म की विजय पताका फहरा दी व वेद -विरोधियों को परास्त कर दिया। बत्तीसवें वर्ष में समस्त विश्व में वैदिक धर्म की स्थापना करके चारों दिशाओं में चार विशाल मठों की स्थापना करके ब्रह्मसायुज्य (मोक्ष) को प्राप्त हो गये।

आचार्य शंकर दिव्य लक्षणों से युक्त थे। उनके प्रखर तर्कों के सामने कोई भी विरोधी टिक नहीं पाता था। मात्र आठ वर्ष की आयु में किसी सामान्य व्यक्ति को समस्त वेद-वेदांगों का ज्ञान कैसे सम्भव है? वे दिव्य व अद्‌भुत प्रतिभा से युक्त साक्षात् भगवान् शंकर के अवतार माने गये हैं (शंकरः शंकरः साक्षात्)। वेदांत सूत्र में वे वेदों को भगवान् से भी श्रेष्ठ बताते हैं। वे कहते हैं कि भगवान् कैसे हैं, उनकी क्या विशेषताएँ हैं तथा उनकी प्राप्ति कैसे होगी, यह वेद ही बताते हैं। अन्यथा कोई भी व्यक्ति अपने आप को भगवान् बताकर भ्रम में डाल सकता है। अतः विद्वान पुरुष को निरन्तर सत्संग, वेदादि साहित्य के स्वाध्याय तथा तदनुकूल धर्म का आचरण कर शीघ्र से शीघ्र आत्मोन्नति, राष्ट्रकल्याण, विश्वकल्याण करते कराते विशुद्ध भगवत्-तत्व को प्राप्त कर लेना चाहिए, इसी में मानव जीवन की सफलता है। मण्डन मिश्र व उनकी पत्नी भारती के साथ इनका शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है।

शंकराचार्य ने जिस समय अवतार लिया, उस समय भारत की स्थिति विचित्र थी। चार्वाक्, जैन, बौद्ध आदि वेद को न मानने वाले तथा कई तांत्रिक व विचित्र मत वाले परस्पर झगड़ते थे। बौद्धों का प्रभाव बढ़ गया था तथा सनातन धर्म लुप्तप्राय हो गया था। उस समय आचार्य ने अल्प आयु में ही परिश्रम करके शास्त्रार्थ कर वेद-धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की। हिन्दू धर्म के संरक्षण व प्रचार के लिये चारों दिशाओं में क्रमशः द्वारिका, पुरी, श्रृंगेरी, जोशीमठ चार धर्मपीठ स्थापित किये। उस समय धार्मिक व सामाजिक अव्यवस्था से छिन्न-भिन्न होते हिन्दू धर्म को न केवल बचाया बल्कि भारत राष्ट्र की एकता को भी स्थापित किया।

15. मनु

लोकपितामह ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु होते हैं। ब्रह्माजी के वर्तमान दिवस का नाम है श्वेतवाराहकल्प। इसमें वर्तमान में सातवें मनु का समय चल रहा है, जिनका नाम है श्राद्धदेव। श्राद्धदेव विवस्वान् के पुत्र हैं। श्राद्धदेव के दस पुत्र हुए, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम इक्ष्वाकु था, जो भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध वंश प्रवर्तक हुए हैं।

गीता में अर्जुन से श्रीभगवान् ने कहा था कि प्राचीन काल में मैंने इस योग का उपदेश विवस्वान् को दिया था। विवस्वान ने इसे मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को दिया था। गीता में जिन मनु महाराज का उल्लेख किया है वे ही श्राद्धदेव हैं।

मनु महाराज अपने समय के समाज व्यवस्थापक हुए हैं। आज लाखों वर्ष बीत जाने पर भी इनकी बनाई व्यवस्था सर्वमान्य है जिसमें सैकड़ों विषय हैं, तथापि वर्ण व्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था अद्वितीय हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चारों

पुरुषार्थ इनकी व्यवस्था के ही अंग हैं। मानव जीवन को परिष्कृत करने के उद्देश्य से आपने सोलह संस्कारों का विधान किया और गृहस्थ के पंचमहायज्ञों (स्वाध्याय, पितृतर्पण, हवन, प्राणि सेवा, और अतिथि सेवा) का विधान किया जो विश्व में शांति के प्रसार व भाईचारे का मूलमंत्र है। मानव समाज को आदर्श रूप देने के लिये मनु ने एक शास्त्र (धर्मशास्त्र) की रचना की, जिसका एक संस्करण 'मानव धर्मसूत्र' के रूप में अब भी प्रचलित है। उसी सूत्र के उपदेशों को भृगु ने (नारद स्मृति के अनुसार सुमति भार्गव ने) लगभग ढाई हजार अनुष्टुप् छन्दों का रूप देकर उन्हें बारह अध्यायों में विभक्त कर एक ग्रन्थ की रचना की, जो मनुस्मृति के नाम से प्रसिद्ध है।

मनु सदाचार को बहुत महत्व देते हैं। यही 'सदाचार' वाल्मीकि के महाकाव्य रामायण का 'चरित्र' है और व्यासजी के इतिहास ग्रन्थ महाभारत का 'धर्म' है। प्रत्येक मनुष्य को मनु की मेधा का कृतज्ञ होना चाहिये। मनु की व्यवस्था को यदि विश्व के सभी राष्ट्र अपना लें तो उनमें युद्ध व परस्पर संघर्ष समाप्त हो जाये। वास्तव में मनु का शासन विधान ही इतना अच्छा है। जर्मनी के दार्शनिक नीत्शे ने ठीक ही कहा है- 'मनु का धर्मशास्त्र बाइबिल से भी कहीं ऊँचे दर्जे का है।' विश्व में वैदिक सभ्यता का प्रचार-प्रसार करने एवं मानव समाज के लिये सुन्दर व्यवस्था देने के लिये मनु का स्थान महत्वपूर्ण है। मनु को विश्व का प्रथम संविधान-निर्माता कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

16. मण्डन मिश्र

आचार्य मण्डन मिश्र मण्डला के निवासी थे। आप संस्कृत के पंडित तथा चारों वेदों के मर्मज्ञ थे। कुमारिल भट्ट आपके गुरु थे।

कुमारिल भट्ट वैदिक धर्म के अनन्य भक्त थे। बौद्धकाल में वेदों की गिरी हुई दशा को देखकर वे बहुत दु:खी थे। अत: बुद्ध के मत का खण्डन करने के लिये उन्होंने बौद्ध धर्म का अध्ययन करना उचित समझा। इस उद्देश्य से वे बौद्ध धर्माचार्य के पास अध्ययन करने के लिये गये एवं बौद्ध गुरु का शिष्यत्व ग्रहण किया।

आचार्य शंकर जब बौद्धों को परास्त करने के लिये दिग्विजय यात्रा में निकले तब उन्हें ज्ञात हुआ कि वेदों के प्रकाण्ड पंडित विद्वान कुमारिल भट्ट हैं, अत: वे उन्हें खोजते हुए प्रयाग पहुंचे। उस समय कुमारिल भट्ट प्रयाग में आत्मदाह के लिये बैठे थे।

शंकराचार्य ने उन्हें बहुत रोका, पर वे नहीं माने। उन्होंने कहा कि जिन बौद्ध गुरुओं से हमने शिक्षा ली थी, उन्हें ही हमने शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया, अतः मुझे अत्यन्त ग्लानि हो रही है जिससे मैंने आत्मदाह करने का निर्णय लिया है। कुमारिल भट्ट ने शंकराचार्य से कहा कि आप मेरे शिष्य मण्डन मिश्र के पास जायें, वे आपका निश्चय ही सहयोग करेंगे।

शंकराचार्य मण्डला पहुंचे, रास्ते में कुँए पर कुछ स्त्रियाँ पानी भर रही थीं। उन्होंने मण्डन मिश्र के घर का पता पूछा। स्त्रियों ने कहा कि जिस घर के दरवाजे पर पिंजरे में बैठे हुए तोते वेदों का पाठ कर रहे हों, उसे आप मण्डन मिश्र का घर समझें। आचार्य जब वहाँ पहुँचे तो वहाँ पर वास्तव में ऐसा दृश्य था। पक्षियों को वेद मंत्र बोलते हुए देखकर आचार्य शंकर दंग रह गये।

मण्डन मिश्र अपने आंगन में यज्ञ कर रहे थे। आचार्य शंकर उनके पास पहुँचे। एक सप्ताह वहाँ रहे। शास्त्रार्थ द्वारा उन्हें अपना शिष्य बनाया। आचार्य ने उन्हें वैदिक धर्म के प्रचार के लिये आज्ञा दी। कहते हैं कि मण्डन मिश्र की पत्नी बहुत विदुषी थी, जिसने शंकर को परास्त कर दिया था।

मण्डन मिश्र ने आचार्य शंकर का साथ दिया। उनके सहयोग से शंकराचार्य ने पूरे भारत में समस्त वेद विरोधियों को परास्त कर वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार किया। मण्डन मिश्र की पत्नी ने भी इस कार्य में बहुत सहयोग किया। उन्हीं के नाम पर श्रृंगेरी मठ के सभी आचार्य आज भी उनके नाम के साथ 'भारती' शब्द का प्रयोग करते हैं। भारती देवी की भव्य प्रतिमा श्रृंगेरी मठ में आज भी विद्यमान हैं।

17. कुमारिल भट्ट

बौद्ध अनुयायियों ने गौतम बुद्ध के उच्च आदर्श और आदेशों को भुला दिया था और उनमें अनेक तरह की बुराइयाँ व कुरीतियाँ घर कर गई थीं। वे लोग वेदों का विरोध और निन्दा करते थे। वेदों की भूमि पर वेद अपमानित हो रहे थे। सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू जनता का अस्तित्व संकट में था।

ऐसे संकटकाल में कुमारिल भट्ट का जन्म जयमंगल नामक ग्राम में हुआ। उनके पिता का नाम यज्ञेश्वर भट्ट तथा माता का नाम चन्द्रकणी था। वे यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। कुमारिल भट्ट वैदिक धर्म के अनन्य भक्त थे तथा उस युग में वेदों की गिरी हुई दशा देखकर उन्हें बहुत दुःख होता था। वे वेदों का पुनः उद्धार करना चाहते थे। वे बौद्धमत का खण्डन करना चाहते थे, पर उन्हें बौद्धमत व उसके ग्रन्थों की अच्छी जानकारी न थी। इसलिये वे एक बौद्ध धर्माचार्य श्रीनिकेतन के पास गये, उनके शिष्य बने तथा बौद्धधर्म का अध्ययन किया। अध्ययन के

दौरान उन्हें लगा कि ये लोग धूर्त और पाखण्डी हैं। ये अपने पाखण्ड में सारे संसार को डुबा देना चाहते हैं, किन्तु मैं यथाशक्ति इन पाखण्डियों से समाज को मुक्त करूँगा। इस संकल्प के साथ वे वैदिक धर्म का प्रचार करने लगे।

इसी प्रचार कार्य के सिलसिले में वे चम्पा नगरी में पहुँचे। वहाँ 'सुधन्वा' नामक राजा बौद्ध था जबकि उनकी रानी वैदिक सिद्धान्तों को मानती थी। रानी के माध्यम से कुमारिल भट्ट ने महाराज सुधन्वा से भेंट की व शास्त्रार्थ के लिये उन्हें राजी किया। राजा की आज्ञा से शास्त्रार्थ के लिये विराट सभा का आयोजन किया गया। बड़े-बड़े बौद्ध विद्वानों को बुलाया गया। एक ओर बौद्ध धर्माचार्यों का दल तथा दूसरी ओर आचार्य कुमारिल भट्ट सदल विराजमान थे। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। दोनों ओर से खण्डन-मण्डन होने लगा। बौद्ध आचार्यों ने वेद विरुद्ध जितने भी तर्क सुनाये, कुमारिल भट्ट ने उन सभी का खण्डन कर दिया। कुमारिल भट्ट ने वेदों की सत्यता, नित्यता, न्यायप्रियता, सद्गुण आदि का उपदेश दिया। राजा और दर्शक कुमारिल भट्ट की सत्यता तथा विद्वता पर मोहित हो गये। इस सभा में बौद्ध आचार्यों की समस्त युक्तियाँ थोथी व व्यर्थ सिद्ध हुईं। इसके बाद राजा सुधन्वा कुमारिल भट्ट के शिष्य हो गये। बौद्धों को जब तक परास्त नहीं किया, कुमारिल भट्ट ने विश्राम नहीं किया। उनके प्रयत्न से भारत भूमि पर वेदों का पुनः प्रचार व सम्मान हुआ। वे अपने जीवन के 63 वर्षों में इसी ध्येय की प्राप्ति में लगे रहे।

कुमारिल का अग्नि प्रवेश :- शास्त्रों के मतानुसार कुमारिल ने गुरुद्रोह जैसा भारी पाप किया। कुमारिल ने बौद्ध आचार्यों से जो शिक्षा पाई थी, उसी के सहारे उन्होंने बौद्धों को परास्त किया। कुमारिल ने सोचा मैंने धोखा देकर बौद्ध गुरु से शिक्षा प्राप्त की थी इसलिये यह गुरुद्रोह है। उनका लक्ष्य भी पूरा हो गया था। अतः कुमारिल ने इस पाप के लिये प्रायश्चित करने का निश्चय किया। गुरुद्रोह के लिये तुषानल (भूसी की आग) में जल जाने का शास्त्रों में विधान है।

शंकराचार्य दक्षिण में बौद्धों को परास्त करने का उद्योग कर रहे थे। उन्होंने कुमारिल की बड़ी प्रशंसा सुनी थी। वे कुमारिल से विचार-विमर्श करना चाहते थे। अतः कुमारिल से भेंट करने आचार्य प्रयाग पहुँचे। जब आचार्य शंकर ने सुना कि कुमारिल त्रिवेणी के तट पर तुषाग्नि में भस्म हो रहे हैं तो वे दौड़े हुए त्रिवेणी के तीर की ओर गये। उन्होंने देखा कि धधकती चिता में आचार्य कुमारिल भट्ट शांत मुद्रा में बैठे हैं। शंकराचार्य ने तत्काल अपना परिचय दिया। शंकराचार्य को देखकर कुमारिल बहुत प्रसन्न हुए। कुमारिल ने शंकराचार्य से कहा -''मैं तो अपना कार्य कर चुका हूँ। अब आप अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये मेरे प्रधान

शिष्य मण्डन मिश्र से मिलिये'' साथ ही यह भी कहा – ''जब तक मेरा शरीर भस्म न हो जाय, तब तक आप मेरे सामने ही खड़े रहिये। आप धन्य हैं। आपने वेदों के उद्धार का झण्डा उठाया है।''

बौद्धकाल में वेदों की शिक्षा रसातल में पहुँच चुकी थी। पर धन्य हैं कुमारिल, जिन्होंने अपने अपूर्व पाण्डित्य से वेदों का पुनः उद्धार किया।

18. महामुनि मार्कण्डेय

महामुनि मार्कण्डेय कालजयी महात्मा हैं। ये भृगुकुल में उत्पन्न महर्षि मृकण्डु के पुत्र हैं। मृकण्डु के पुत्र होने से ही आप मार्कण्डेय कहलाये।

अभिवादन (चरण स्पर्श) एक महान गुण :– धर्मशास्त्रों ने अभिवादन करने को महान् धर्म और सदाचार का मुख्य लक्षण बताया है। मनुस्मृति में अभिवादनशील व्यक्ति को दीर्घ आयु, सद्विद्या, यश व बल प्राप्त करने वाला बताया है –

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।। (मनु॰ 2/121)

स्वयं महर्षि मार्कण्डेय अभिवादनशीलता के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। उनमें विनय, नम्रता, शिष्टाचार, मर्यादा, श्रेष्ठजन, वृद्ध तथा गुरुजनों के प्रति आदर व सेवा भाव आदि सद्गुण स्वभाव से ही भरे हुए थे। नित्य अभिवादन करने से जो उन्हें आशीर्वाद प्राप्त हुआ, उसी से वे अजर-अमर हो गये। अपने इस आचरण से मार्कण्डेय जी ने यह सन्देश दिया है कि अपने माता-पिता, गुरु तथा श्रेष्ठजनों को सदा प्रणाम करना चाहिये और विनीत भाव से उनसे आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिये। इससे दीर्घायु और वह जीवन में सफलता प्राप्त होती है।

आशीर्वाद से दीर्घायु प्राप्त होती है :– जब मार्कण्डेय जी पाँच वर्ष के थे, एक दिन वे अपने पिता की गोद में खेल रहे थे। उसी समय एक ऋषि वहाँ आ पहुँचे और बालक के विशिष्ट लक्षणों को देखकर महर्षि मृकण्डु से कहा –'मुनि! आपका यह बालक सामान्य बालक नहीं है, यह दैवी गुणों से सम्पन्न है और इससे संसार का महान् कल्याण होने वाला है। किन्तु इस बालक में एक विशेष लक्षण है, जिससे सूचित होता है कि आज के दिन से छह महीने होते ही इसकी मृत्यु हो जायेगी। इसलिये आप इसके लिये जो हितकर कार्य हों, वह कीजिये।'

महात्माओं की बात झूठी नहीं होती, यह सोचकर मृकण्डुजी सोच में पड़ गये। बालक की मृत्यु कैसे टले? उपाय सोचने लगे। आशीर्वाद से आयु को बढ़ाया जा सकता है, यह सोचकर अपने बेटे को उपदेश दिया कि 'बेटे ! तुम जिस किसी द्विज को देखो, उसके चरण स्पर्श अवश्य करना।' बालक मार्कण्डेय ने

आज्ञा का निष्ठापूर्वक पालन किया। अब जो भी श्रेष्ठजन उन्हें मिलते, मार्कण्डेय जी बड़ी भक्ति व विनयपूर्वक प्रणाम करते। इस प्रकार छह माह बीतने में केवल तीन दिन ही शेष थे। इसी बीच तीर्थ यात्रा करते हुए सप्तऋषि वहाँ से निकले। मार्कण्डेय जी ने श्रद्धा व भक्तिपूर्वक बड़े ही विनीत भाव से महर्षियों के चरण स्पर्श किये और सभी ने बारी–बारी से उसे दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया। महर्षि वसिष्ठ ने जब बालक की ओर ध्यान से देखा तो कहने लगे –'अरे! यह महान् आश्चर्य है कि हम लोगों ने इस बालक को दीर्घायु होने का आशीर्वाद दे दिया। इस बालक की तो केवल तीन दिन की आयु ही शेष रह गई है। अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि हमारी बात झूठी न निकले। अतः इस बालक के चिरंजीवी होने की कोई युक्ति निकालनी चाहिये।'

इसके बाद सप्तऋषिगण बालक को लेकर शीघ्र ही ब्रह्मा जी के पास गये और उन्हें प्रणाम किया। बालक ने भी ब्रह्माजी को प्रणाम किया। ब्रह्माजी ने भी बालक को दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया। सप्तऋषियों ने ब्रह्माजी से कहा–'प्रभो! आपने भी इसे दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया है। अतः आपका व हमारा वचन सत्य बना रहे, ऐसा उपाय करें।'

उनकी बात सुनकर ब्रह्माजी मुस्कुरा उठे और कहने लगे –'मुनिवरों ! आप लोग चिन्तित न हों। इस बालक ने अपने विनय और अभिवादन से काल को जीत लिया है।' तब ब्रह्माजी ने बालक को अजर–अमर और जरामुक्त होने का आशीर्वाद दिया। ऋषिगण बालक को आश्रम में पहुँचाकर पुनः तीर्थ यात्रा को निकले।

इस दृष्टान्त से यह शिक्षा मिलती है कि हमें सदैव बड़ों का सम्मान व श्रद्धापूर्वक उनका चरण स्पर्श करना चाहिये। मार्कण्डेय पुराण आपकी ही रचना है। दुर्गासप्तशती इसी पुराण का एक भाग है।

19. महर्षि पराशर

महर्षि पराशर महर्षि वसिष्ठ के पौत्र, महात्मा शक्ति के पुत्र, कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के पिता तथा महाज्ञानी शुकदेव जी के पितामह थे। इस प्रकार महर्षि पराशर की पितृ–परम्परा में वसिष्ठ जैसे महान् धर्मात्मा महापुरुष हुए हैं जो भगवान् राम के गुरु रहे। उनकी वंश परम्परा में भगवान् वेदव्यास तथा परमयोगी शुकदेव आदि महात्माओं का भी आविर्भाव हुआ। महर्षि पराशर रचित 'विष्णु पुराण' साक्षात् धर्मशास्त्र है। इसी प्रकार महर्षि पराशर द्वारा विदेहराज जनक को उपदिष्ट एक गीता है, जो महाभारत के शान्तिपर्व (अ.290–298) में उल्लेखित है। वह पराशर–गीता कहलाती है। राजा जनक द्वारा पूछे जाने पर कि कल्याण प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय क्या है ? महर्षि पराशर सदाचार और धर्माचरण को ही परम्–कल्याण का मार्ग बताते हैं।

महर्षि पराशर युगदृष्टा ऋषि थे। उन्होंने सतयुग, त्रेतायुग तथा कलियुग की धर्म व्यवस्था समझाकर प्राणियों के लिये सहज-साध्य रूप से धर्म की मर्यादा निर्दिष्ट की है।

पराशरस्मृति में ऋषि कहते हैं कि सतयुग में लोगों में ब्राह्मणों के प्रति बहुत श्रद्धा थी, अत: दान देने वाले बड़ी श्रद्धा से दान लेने वालों के घर पर जाकर ब्राह्मण की पूजा कर उन्हें दान देते थे। त्रेतायुग में दान लेने वालों को घर बुलाकर आदरपूर्वक दान देते थे, द्वापरयुग में ब्राह्मण द्वारा याचना करने पर दान देते थे, किन्तु कलियुग में तो सेवा कराकर दान दिया जाता है। (पराशर 1/28-29)

गर्भपात महापाप :- महर्षि पराशर का कहना है कि जो पाप ब्रह्महत्या से लगता है, उससे दुगुना पाप गर्भपात से लगता है। इस पाप का कोई प्रायश्चित भी नहीं है। (पराशर. 4/20) वर्तमान सन्दर्भ में भ्रूण-हत्या पर पराशर जी का यह उपदेश अनुकरणीय है।

दया व करुणा :- महर्षि पराशर समस्त प्राणियों पर करुणा व दया की बात करते हैं। इन्होंने प्राणियों का वध न करने का परामर्श दिया है और बताया है कि किसी भी जन्तु, पशु-पक्षी, कीट- पतंग, स्त्री, बाल, वृद्ध आदि की हिंसा करने से महापाप लगता है।

संसर्गजनित पाप :- पापी के साथ एक आसन पर बैठने से, उनके साथ शयन करने से, उनके साथ गमन करने से संसर्गजनित पाप लिप्त हो जाते हैं। जैसी संगति वैसी गति। पराशर जी कहते हैं कि व्यक्ति की संगति (मित्र बनाना) हमेशा सोच-समझ कर करनी चाहिये।

निवृत्ति के लिये गौ-सेवा :- महर्षि बताते हैं कि पाप से निवृत्ति के लिये गौ-व्रत का पालन करना चाहिये। गौओं की सेवा करनी चाहिये, जैसे गाय प्रसन्न रहे, वैसा ही प्रयत्न करना चाहिये, इससे सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं (परा.12/72) तथा जीवन में अनिष्ट नहीं होता।

गौ में सभी तीर्थ स्थित हैं :- बृहत्पराशर स्मृति (5/34-41) में बताया गया है कि गौओं के सींगों के मूल में ब्रह्मा और दोनों सींगों के बीच भगवान् नारायण का निवास है। सींग के शीर्षभाग में भगवान् शिव का निवास है। सभी देवता गौ के शरीर में निवास करते हैं। गौ के ललाट के अग्र भाग में देवी पार्वती तथा नाक के मध्य में कुमार कार्तिकेय का निवास है। गौ की दाहिनी आँख में सूर्य तथा बाईं आँख में चन्द्रमा का वास है। दाँतों में आठों वसु और जिह्वा में भगवान् वरुण प्रतिष्ठित हैं। गौ की हुँकार में भगवती सरस्वती निवास करती हैं और गालों में यम व यक्ष निवास करते हैं। गौ के रोमों में ऋषिगणों का निवास है। गौ-मूत्र में गंगा के

पवित्र जल का निवास है तथा गोमय (गोबर) में यमुना तथा सभी देवता स्थित हैं। अट्ठाईस करोड़ देवता गाय के रोम-कूपों में स्थित हैं। इस प्रकार गाय के शरीर में सभी देवताओं का वास समझकर जो व्यक्ति उस पर क्रोध या प्रताड़ना नहीं करता वह महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करता है और स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

एवं यो वर्तते गोषु ताडनक्रोधवर्जितः।
महतीं श्रियमाप्नोति स्वर्गलोके महीयते।। (बृहत्पराशर स्मृति 5/41)

गौ-महिमा :- गोमाता की अनन्त महिमा है तथा उसकी सेवा की भी महिमा उतनी ही अनन्त है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को गौ-सेवा करनी चाहिये। महर्षि का कहना है- स्पर्श कर लेने मात्र से ही गौएँ मनुष्य के समस्त पापों को नष्ट कर देती है। गौओं के समान कोई धन नहीं है। गाय को देखने पर उसे छूते हुए उन्हें प्रणाम करें और उनकी प्रदक्षिणा करें। इस प्रकार जो करता है मानो उसने समस्त सप्तद्वीपवती पृथिवी की ही परिक्रमा कर ली।

संस्प्रशन् गां नमस्कृत्य कुर्यात् तां च प्रदक्षिणम्।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा।।

20. आचार्य बृहस्पति

आचार्य बृहस्पति देवताओं के गुरु हैं। भीष्मपितामह का कहना है कि बृहस्पति के समान वक्तृत्वशक्ति सम्पन्न और कोई नहीं है। वे महर्षि अंगिरा के पुत्र हैं। नक्षत्रमण्डल में स्थित होकर वे ग्रह के रूप में अन्तरिक्ष में स्थित हैं। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार बृहस्पति सब प्रकार से शुभ व मंगल करने वाले हैं। इनके द्वारा दिये गये उपदेश बड़े ही कल्याणकारी और अभ्युदय को प्राप्त कराने वाले हैं। महाभारत आचार्य बृहस्पति के उपदेशों से भरा पड़ा है। धर्मराज युधिष्ठिर को धर्म का रहस्य बताते हुए आचार्य बृहस्पति कहते हैं- 'जो बात अपने को अच्छी न लगे वह दूसरों के प्रति भी नहीं करनी चाहिये। यही धर्म का सार है।'

बृहस्पति-स्मृति में ऐसे अनेक उपदेश हैं। इसमें 81 श्लोक हैं। मुख्य रूप से यह स्मृति भूमिदान व गोदान की महिमा से सम्बन्धित है और इन्द्र तथा बृहस्पति के संवाद के रूप में है। देवराज इन्द्र आचार्य से प्रश्न करते हैं तथा बृहस्पति उन प्रश्नों का समाधान करते हैं।

भूमिदान सबसे बड़ा दान :- आचार्य बृहस्पति देवराज इन्द्र से कहते हैं- 'राजन्! जो भूमि दान देता है, उसके द्वारा सुवर्ण, रजत, वस्त्र, मणि और रत्न आदि सब कुछ दान दे दिया गया, ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि ये सब पृथ्वी से ही प्राप्त होते हैं।

सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिरत्नं च वासव।
सर्वमेव भवेद्दत्तं वसुधां यः प्रयच्छति।। (बृहस्पति. 5)

जो व्यक्ति जोती–बोई और उपजी हुई खेती से भरी भूमि का दान करता है, वह जब तक लोकों में सूर्य का प्रकाश रहेगा, तब तक स्वर्ग में प्रतिष्ठित रहेगा। (वृहस्पति. 6)

गोचर्म भूमि :- बृहस्पति संहिता –7 में कहा गया है कि अपनी आजीविका के परवश हुआ व्यक्ति जो कुछ भी पाप करता है, वह सब 'गोचर्म' के बराबर भूमि दान कर देने से नष्ट हो जाता है।

गोचर्म भूमि का परिमाण:- आचार्य बृहस्पति ने गोचर्म भूमि का परिमाण बताया है कि –दस निवर्तन विस्तार वाली भूमि गोचर्म–भूमि कहलाती है। एक निवर्तन =3000 दण्ड–हाथ। अर्थात् लगभग 1¼ कि.मी. की भूमि को गो–चर्म भूमि कहते हैं। गोचर्म भूमि का एक और परिमाप देते हुए कहा गया है कि – बछड़े–बछड़ियों सहित एक हजार गायें जितनी भूमि में आराम से इधर–उधर टहल सकें, घूम–फिर सकें उतनी लम्बी–चौड़ी भूमि को गौ–चर्म भूमि कहते हैं।

तीन अतिदान :- गोदान, भूमिदान और विद्यादान – ये तीन दान महादानों से भी बड़े अतिदान कहे गये हैं। अतिदान करने वाले का सब प्रकार के पापों से उद्धार हो जाता है। ये दाता को तार देते हैं। (वृह.18–19)

पूर्त–धर्म की महिमा – निःस्वार्थ भाव से कुँआ, बावड़ी, तालाब, देवालय, अनाथालय, चिकित्सालय, धर्मशाला, विद्यालय आदि बनवाना तथा उनका जीर्णोद्धार करवाना, छायादार व फलदार वृक्ष लगाना, मार्ग आदि बनाना – ये सभी लोकोपकार एवं जनहित के कार्य करना और करवाना पूर्त–धर्म कहलाता है।

आचार्य बृहस्पति ने पूर्त–कर्म की विशेष महिमा बताई है और कहा है कि जो पूर्त –धर्म का कार्य करता है वह अपने कुल का उद्धार कर देता है। आचार्य बृहस्पति कहते हैं– हे इन्द्र! जिसके बनाये हुए तालाब कुँओं आदि में गर्मी के दिनों में भी पानी बना रहता है, सूखता नहीं है, उसे कभी कठोर व विषम दुःख प्राप्त नहीं होता। अर्थात् वह सर्वदा सुखी रहता है।

भूमि हरण से महापाप :- भूमि दान करने से जितने महान् पुण्य की प्राप्ति होती है, उतने ही पाप की प्राप्ति भूमि हरण करने वाले को होती है। बृहस्पति संहिता (39) में कहा गया है कि भूमिहर्ता (भू–माफिया) यदि करोड़ों गौ–दान भी करें तब भी वह शुद्ध नहीं होता। अर्थात् इस पाप का प्रायश्चित नहीं है।

गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुध्यति।।

वैदिक ऋषिकाएँ

1. देव साम्राज्ञी शची

शची देवराज इन्द्र की पत्नी हैं। ये स्वयंवर की अधिष्ठात्री देवी हैं। प्राचीन काल में जब स्वयंवर होता था, तो पहले शची का आह्वान और विधिवत् पूजन किया जाता था, जिससे स्वयंवर सभा में कोई विघ्न या बाधा पहुँचने की संभावना नहीं रहती थी। ऋग्वेद में कई सूक्त हैं, जो शची द्वारा प्रकाश में लाये गये हैं।

शची देवी पतिव्रता स्त्रियों में श्रेष्ठ मानी गई हैं। वह भोग विलासमय स्वर्ग की रानी होकर भी सतीत्व साधना में रत रहती थी। उनके मन में पति के विलासी जीवन का कोई प्रभाव नहीं था। शची का जन्म दानव कुल में हुआ था, तथापि वह अपने त्याग–तपस्या और संयम आदि गुणों के कारण देवताओं में सदा वन्दनीय रही। शची के पिता का नाम 'पुलोमा' था। वह दानव कुल का सम्मानित वीर था। इसीलिए शची को 'पौलोमी' और 'पुलोमजा' भी कहते हैं।

बाल्यकाल में शची ने भगवान् शंकर को प्रसन्न करने के लिये घोर तपस्या की थी। उन्हीं के वरदान से वे देवराज इन्द्र की पत्नी व स्वर्गलोक की रानी बनीं।

2. वाचक्नवी गार्गी

वैदिक साहित्य जगत् में ब्रह्मवादिनी विदुषी गार्गी का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। इनके पिता का नाम वचक्नु होने के कारण इनका नाम वाचक्नवी पड़ा। गर्ग गोत्र में उत्पन्न होने के कारण लोग इन्हें गार्गी कहते थे। बृहदारण्यक उपनिषद् में इनके शास्त्रार्थ का प्रसंग बड़ा रोचक है। गार्गी भारतवर्ष की स्त्रियों में रत्न थी। उनकी जैसी विदुषी एवं तपस्विनी स्त्रियों पर देश को गर्व है।

3. ब्रह्मवादिनी अपाला

ब्रह्मवादिनी अपाला अत्रि मुनि के वंश में उत्पन्न हुई थी। अपाला को कुष्ठ रोग हो गया था। इससे उनके पति ने उसे घर से निकाल दिया था। उन्होंने कुष्ठ मुक्ति के लिये इन्द्र की आराधना की। इन्द्र ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया जिससे अपाला का कुष्ठ रोग मिट गया तथा उसके पिता के खेत हरे–भरे हो गये। अपाला व उसके पिता के पुनः अच्छे दिन प्रारम्भ हुए। इसी के अनन्तर ब्रह्मवादिनी अपाला ने वैदिक ऋचाओं का संकलन किया। ऋग्वेद के अष्टम् मण्डल के 91 वें सूक्त की एक से सात तक की ऋचायें इन्हीं की संकलित है।

4. ब्रह्मवादिनी घोषा

घोषा कक्षीवान् ऋषि की कन्या थी। बचपन में इन्हें कुष्ठ रोग हो गया था। इससे इनका विवाह नहीं हो पाया। अश्विनीकुमारों की चिकित्सा से जब इनका रोग नष्ट हो गया, तब इनका विवाह हुआ। वे परम विदुषी और ब्रह्मवादिनी थीं। इन्होंने ब्रह्मचारिणी कन्या के कर्तव्यों का उल्लेख किया। इन्होंने कहा – 'हे अश्विनीकुमारों! आपके अनुग्रह से आज घोषा परम सौभाग्यवती हुई है। आपके आशीर्वाद से घोषा के स्वामी के भले के लिये आकाश से प्रचुर वर्षा करें। आपकी कृपा–दृष्टि से घोषा के भावी पति शत्रु हिंसा से सुरक्षित रहें। युवा व सुन्दर पति को पाकर घोषा का यौवन चिरकाल तक अक्षुण्ण बना रहे।'

'हे अश्विनीकुमारों ! पिता जैसे संतान को शिक्षा देते हैं, वैसे ही आप मुझे सत्–शिक्षा दें। मैं बुद्धिमान बनूँ। आपका आशीर्वाद मुझे दुर्गति से बचाये। आपके आशीर्वाद से मेरे पुत्र–पौत्र –प्रपौत्र आदि प्रतिष्ठित होकर जीवन यापन करें। पति के घर में मैं पति व परिवार की प्रिय पात्र बनूं।'

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 39 से 41 सूक्त में यह आख्यान मिलता है।

5. ब्रह्मवादिनी वाक्

वाक् अम्भ्रण ऋषि की कन्या थी। वे ब्रह्मज्ञानी थी। उन्होंने भगवती देवी के साथ अभिन्नता प्राप्त कर ली थी। ऋग्वेद संहिता के दशम् मण्डल के 125 वें सूक्त में 'देवी सूक्त' नाम से जो आठ मंत्र हैं, वे इन्हीं के रचे हुए हैं। चण्डी पाठ के साथ इन आठ मंत्रों के पाठ का बड़ा महत्व है। इन मंत्रों में स्पष्टतया अद्वैतवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित है। मंत्रों का सारांश इस प्रकार है :–

'मैं सच्चिदानन्दमयी सर्वात्मा देवी रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वदेव–गणों के रूप में विचरती हूँ। मैं ही मित्र तथा वरुण को, इन्द्र और अग्नि को तथा दोनों अश्विनीकुमारों को धारण करती हूँ।' मैं प्रपंच रूप से अनेक भावों में स्थित हूँ तथा सम्पूर्ण भूत–प्राणियों में मेरा ही प्रवेश है। जो अन्न खाता है मेरी ही शक्ति से, जो देखता है – साँस लेता है, मेरी ही शक्ति से, सब कर्म करने में समर्थ होता है वह भी मेरी ही शक्ति से। मैं जिस–जिस पुरुष की रक्षा करना चाहती हूँ, उस–उस को शक्तिशाली बना देती हूँ। उसी को उत्तम मेधाशक्ति से युक्त बना देती हूं। मैं ही शरणागतजनों की रक्षा करती हूँ तथा अन्तर्यामी रूप से पृथ्वी और आकाश के भीतर व्याप्त रहती हूँ। मैं पृथ्वी तथा आकाश से परे हूँ।'

6. ब्रह्मवादिनी सूर्या

ऋग्वेद के दशम् मण्डल के 85 वें सूक्त की 47 ऋचायें इनकी हैं। यह सूक्त विवाह सम्बन्धी हैं। आरम्भ की ऋचाओं में सूर्यकन्या सूर्या के विवाह का वर्णन है। इन ऋचाओं में सूर्या के बड़े ही सुन्दर उपदेश हैं।

'हे बहू ! इस घर में गृहस्वामिनी बनने के लिये तू जागृत हो। अपने पति के साथ दोनों स्त्री-पुरुष वृद्धावस्था तक साथ रहें।' अर्थात् चिरायु रहें। पति व परिवार का कल्याण चाहने वाली स्त्री को स्वच्छ रहना चाहिये। अस्वच्छ रहने से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं, शरीर कुरूप हो जाता है तथा शरीर की कान्ति नष्ट हो जाती है।

'हे परमात्मा ! तू इस वधू को सुपुत्रवती तथा सौभाग्यवती बनाना। तू अपने अच्छे व्यवहार से श्वसुर-सास की, ननद और देवरों की साम्राज्ञी हो।' अर्थात् अपने व्यवहार एवं सेवा से सबको प्रसन्न कर ले।

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।। (ऋक् 10/85/46)

आर्ष साहित्य में दानवीर

1.	महादानी दैत्यराज बलि	6.	दैत्यराज विरोचन
2.	मयूरध्वज	7.	महादानी महाराज रघु
3.	महाराजा शिवि	8.	दानवीर कर्ण
4.	दधीचि का देहदान	9.	जटायु का प्राणदान
5.	सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र	10.	राजऋषि रंतिदेव की अतिथि सेवा

हिन्दू संस्कृति में भोग की अपेक्षा त्याग का स्थान सदैव गरिमामय रहा है। अपने लिये तो पशु–पक्षी भी जीते हैं, औरों के लिये जीना ही मानव मात्र का जीवन लक्ष्य है। वैदिक सनातन धर्म का मूल आदर्श 'दान' है। वेद भगवान ने हमें निर्देश दिया, 'हे मनुष्यों! अपने पौरुष से सैकड़ों हाथों से धनार्जन करो और हजारों हाथों से उसे बाँट दो।'

दान आत्मा का दिव्य गुण है। व्यक्ति जो कुछ अर्जित करता है, समाज के अनेक प्राणियों का उसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग रहता है। इस प्रकार प्राप्त धन पर हमारा अकेले का अधिकार नहीं है। उपनिषद में स्पष्ट कहा गया – 'rsu R;Drsu Hkq×thFkk:' अर्थात् तुम प्राप्त धन सम्पति का त्यागपूर्वक उपभोग करो। जितना अपने निर्वाह के लिये आवश्यक है, उससे अधिक को अपना मानो ही मत।

अनादि काल से त्यागपूर्ण जीवन को ही उत्तम माना गया है। हमारे आर्ष साहित्य में त्याग के अनेक आदर्श प्रसंग है। शिवि ने एक कबूतर की रक्षा के लिये अपने अंगों के मांस को काटकर दे दिया, महर्षि दधीचि ने देवताओं के हित में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर शरीर की हड्डियाँ दे दी, महाराज बलि ने वामन भगवान् को अपना सर्वस्व दे दिया, महाराजा हरिश्चन्द्र ने सत्य की रक्षा के लिये राज्य को त्यागा तथा स्वयं, पत्नी और पुत्र के साथ काशी के बाजार में बिक गये। महादानी कर्ण, मयूरध्वज, रंतिदेव तथा दैत्यराज विरोचन के त्याग को कौन नहीं जानता? पक्षिराज जटायु का त्याग तो विश्व की अद्भुत घटना है। हमारे पौराणिक इतिहास में इस तरह की घटनायें भरी पड़ी हैं। उनमें से कुछ घटनाओं का वर्णन इस प्रकरण में किया जा रहा है।

(1) महादानी दैत्यराज बलि

पूर्वकाल में 'बलि' नाम के एक महापराक्रमी राजा हुए हैं। उनका जन्म असुर वंश में हुआ था, तथापि वे बड़े न्यायप्रिय और दानी थे। वे महाराजा प्रह्लाद के पौत्र और विरोचन के पुत्र थे। इनके राज्य में सभी प्रजाजन सुखी और सन्तुष्ट थे। चौबीस घण्टों में कभी इनके राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था, इतना विस्तृत इनका राज्य था।

आचार्य शुक्र अपने शिष्य बलि पर अत्यन्त प्रसन्न थे। उन्होंने बलि से 'सर्वजित यज्ञ' कराया, और उस यज्ञ में अग्नि ने प्रकट होकर बलि को रथ, अश्व, धनुष, कवच आदि दिये थे। इन दिव्य आयुधों से बलि ने जब स्वर्ग पर आक्रमण किया, तब देवताओं को अपना घर-बार छोड़कर भाग जाना पड़ा।

सौ अश्वमेध यज्ञ किये बिना जो अपनी शक्ति-बल से अमरावती (स्वर्ग) को अधिकृत कर लेता है, सृष्टि का संचालक (ईश्वर) उसे वहाँ टिकने नहीं देता है। आचार्य शुक्र को अपने शिष्य का वैभव स्थायी करने की चिन्ता हुई। अत: नर्मदा तट पर बलि से अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ कराया गया। निन्यानबे यज्ञ सम्पन्न हुए और अन्तिम सौवाँ यज्ञ प्रारम्भ हुआ।

इसी काल में ऋषि कश्यप व अदिति की प्रार्थना पर भगवान् ने अदिति के गर्भ से वामन रूप में जन्म लिया। ब्राह्मण वेशधारी भगवान् वामन बलि की यज्ञशाला में पहुंचे, जब बलि का अन्तिम सौवां यज्ञ चल रहा था। यज्ञ में तेजस्वी ब्राह्मण को देखकर उपस्थित सभी असुर उठ खड़े हुए। यज्ञशाला में वामन ब्राह्मण का आदर सत्कार किया गया और निवेदन किया - 'महाराज आप निश्चय ही किसी प्रयोजन से पधारे हैं। अत: जो इच्छा हो मांग लें।' वामन ने पहले बलि के कुल-पुरुषों की प्रशंसा की और बाद में कहा - 'विरोचन-नन्दन! मैं अपने लिये अपने पैरों से तीन पद में जितनी भूमि नाप सकूँ, उतनी भूमि आपसे चाहता हूँ।'

बलि हँसे। नन्हे से वामन और नन्हे-नन्हे चरण। बलि को लगा कि भला ये कितनी भूमि माप सकेंगे। बलि ने कहा - 'यह लो! जितनी भूमि चाहिये, उतनी भूमि आपको दी।' भूमि दान करने का संकल्प करने के लिये कमण्डलु उठाया ही था कि शुक्राचार्य ने कहा - 'ठहरो! ये विप्रकुमार नहीं साक्षात् विष्णु हैं। अत: तुम इन्हें भूमि दान मत दो।'

बलि ने कहा -'आपकी बात ठीक हो सकती है, गुरुवर! किन्तु यज्ञ के द्वारा आप जिस यज्ञ- पुरुष की आराधना मुझसे करा रहे हैं, वे ही मेरे समक्ष भिक्षुक बनकर पधारे हैं तो क्या मैं इन्हें अस्वीकार कर दूँ, यह नहीं हो सकता।

सत्–पात्र के आने पर उसे दान न देना, युद्ध में प्राण देने से भी कठिन है। ये कोई भी हों, और कुछ भी करें मैं इन्हें दान से वंचित नहीं करूँगा।'

शुक्राचार्य ने क्रोध में आकर बलि को शाप दिया – 'जाओ! तुम ऐश्वर्यभ्रष्ट हो जाओ।' बलि ने भूमिदान का संकल्प किया और संकल्प करते ही भगवान् ने अपना विराटरूप धारण किया। भगवान् ने एक पग में पूरी पृथ्वी माप ली, दूसरे पग से ब्रह्मलोक को नाप लिया तथा तीसरे पग के लिये भगवान् ने कहा – 'बोल बलि! तीसरा पग मैं कहाँ रखूँ?' बलि ने कहा –'मेरा मस्तक यह रहा, अपना तीसरा पग इस पर रखें भगवन्।' भगवान् ने तीसरा पग उसके मस्तक पर रखा। मस्तक पर पाँव रखते ही बलि को बाध्य होकर पृथ्वी और स्वर्ग को छोड़कर पाताल में जाना पड़ा।

इस कथा में जहाँ एक ओर बलि की दानशीलता की पराकाष्ठा दिखाई गयी है वहीं दूसरी ओर यह भी दिखाया गया है कि पथ –विमुख हुए राजा को भी भगवान् छल या कौशल से उसके अन्याय के लिये दण्डित ही करते हैं।

(2) मयूरध्वज

जिस समय महाराज युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे, उस समय रत्नपुर के महाराजा मयूरध्वज ने भी अपना अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ा था। इधर पाण्डवों के अश्व की रक्षा में कृष्ण व अर्जुन थे तो उधर राजकुमार ताम्रध्वज। मणिपुर में दोनों की मुठभेड़ हो गई। युद्ध में अर्जुन पराजित हुए और ताम्रध्वज दोनों घोड़ों को अपने पिता के पास ले गया। इससे महाराजा मयूरध्वज के मन में हर्ष के बजाय घोर दु:ख हुआ। कारण, वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे।

इधर जब अर्जुन की मूर्च्छा टूटी तो घोड़े के लिये व्यग्र हो उठे। भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण का वेश बनाया और अर्जुन ने उनके शिष्य का। वे दोनों राजा के पास पहुँचे। राजा ने इन्हें प्रणाम किया और पधारने का कारण पूछा। ब्राह्मणवेशधारी श्रीकृष्ण ने कहा – मेरे पुत्र को सिंह ने पकड़ लिया है। मैंने उससे कई बार प्रार्थना की कि वह मेरे पुत्र को छोड़ दे। यहाँ तक कि मैं स्वयं को भी उसको देने के लिये तैयार हो गया। पर उसने एक न मानी। बहुत याचना करने पर शेर ने यह स्वीकार किया कि राजा मयूरध्वज यदि पूर्ण प्रसन्नता के साथ अपने दक्षिण भाग के अंग को अपनी स्त्री व पुत्र के द्वारा चिरवाकर दे सकें तो मैं तुम्हारे पुत्र को छोड़ सकता हूँ।

राजा ने ब्राह्मण स्वरूप श्रीकृष्ण के प्रस्ताव को मान लिया। राजा की पत्नी व पुत्र ने राजा के शरीर के बदले अपनी देह देना चाहा, किन्तु ब्राह्मण देवता नहीं माने। अन्त में दो खम्भों के बीच महाराजा बैठ गये। आरा लेकर रानी तथा

ताम्रध्वज राजा की देह को चीरने लगे। जब राजा मयूरध्वज का सिर चीरा जाने लगा तो उसकी बाँई आँख से आँसू की बूंदें निकलने लगीं। इस पर ब्राह्मण ने कहा कि दु:ख से दी हुई वस्तु हम नहीं लेते। तब मयूरध्वज ने कहा–'आँसू निकलने का कारण यह नहीं है कि मुझे कष्ट हो रहा है, बल्कि बाँए भाग को यह क्लेश हो रहा है कि हम दोनों एक ही साथ जन्मे, पर हमारा दुर्भाग्य जो हम दक्षिण अंग के साथ ब्राह्मण के काम न आ सके। इसी कारण बाँई आँख में आँसू आ गये।'

भगवान् तो अपने भक्त की दानवीरता की परीक्षा लेना चाहते थे। राजा की देह को काटना प्रारम्भ किया ही था कि भगवान् ने अपने आप को प्रकट कर दिया। गदा व चक्रधारी प्रभु ने जैसे ही राजा के शरीर को स्पर्श किया, वह पहले की अपेक्षा अधिक सुन्दर, युवा तथा पुष्ट हो गये। भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुन तीन दिन तक राजा मयूरध्वज के अतिथि रहे तथा बाद में वहाँ से प्रस्थान किया। यह भारतवर्ष की ही परम्परा रही है कि यहाँ के राजा जनता की प्रसन्नता के लिये अपने प्राण तक दे देते थे।

(3) महाराज शिवि

जब–जब किसी व्यक्ति ने कठोर तपस्या की है, स्वर्ग के राजा इन्द्र का आसन डोलने लगता है। कठोर तपस्या के कारण इन्द्रासन क्यों काँपता है ? इसमें क्या रहस्य है? केवल इन्द्रत्व छिन जाना ही कारण नहीं है।

पुराणों में हम पढ़ते हैं कि तपस्या के द्वारा राक्षसों ने संसार में महान् अनर्थ किये हैं तथा अपनी अजेय शक्ति द्वारा त्रिभुवन को कम्पायमान किया है, वहीं बहुत से मनीषियों ने अपने तप द्वारा संसार का कल्याण भी किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि तपस्या सदैव श्रेष्ठ उद्देश्य से ही नहीं की जाती थी। इसलिये इस बात का पता लगाते रहना आवश्यक होता था कि कौन व्यक्ति किस उद्देश्य से तपस्या कर रहा है? इस बात का दायित्व देवराज इन्द्र को सौंपा हुआ था कि वह यह पता लगाते रहें कि कौन व्यक्ति किस उद्देश्य से तपस्या कर रहा है? आजकल भी सरकार अपने शासन के अन्दर किसी आन्दोलन को देखकर सतर्क रहती है, उसी प्रकार कठोर तपस्या रूपी साधना की जांच परख करने का कार्य देवराज इन्द्र करते थे।

प्राचीन समय में उशीन नामक एक राज्य था। इस राज्य के राजा शिवि बड़े ही दयालु, विनम्र, अतिथि –परायण, दानी व पुण्यात्मा थे। ये अपनी प्रजा से बहुत ही स्नेह करते थे। राजा के कोई सन्तान नहीं थी, इस बात को लेकर वे सदैव चिन्तित रहते थे।

एक बार देवर्षि नारद उनके पास आये। राजा शिवि ने उनका बहुत सत्कार किया। जब नारद मुनि को राजा के नि:संतान होने की बात मालूम हुई तो वे पुत्र प्राप्ति के लिये विधि बताकर तथा आशीर्वाद देकर चले गये। महाराजा शिवि तदनुसार तप-साधना करने लगे।

उधर देवलोक में इन्द्र को शिवि की तपस्या का पता चला तो वे उनका अभीष्ट जानने के लिये व्याकुल हो उठे। उन्होंने महाराज शिवि की परीक्षा लेने का निश्चय किया।

एक दिन महाराज शिवि अपने राजसदन में प्रात: संध्या -पूजन समाप्त करके बैठे थे। इतने में एक कबूतर घबराया हुआ बड़े वेग से उड़ता हुआ आया और उनकी गोद में छिपने की चेष्टा करने लगा। इतने में ही एक बाज उड़ता हुआ आया और सामने बैठकर कहने लगा -'यह मेरा आहार है। प्रजापालक को किसी का आहार छीनने का हक नहीं है। आप इसे मुझे दे दें।'

राजा बोले -'यह मेरी शरण में आया है। शरणागत की रक्षा करना मेरा धर्म है। मैं इसका त्याग नहीं कर सकता।'

'मैं भूखा हूँ। पक्षी मेरा नैसर्गिक भोजन है।' बाज ने कहा। 'आप मेरा आहार छीनकर मुझे मृत्यु के मुख में देने का पाप कर रहे हैं।'

राजा शिवि ने कहा -'आवश्यक नहीं कि तुम इस पक्षी का ही भोजन करो। तुम्हारे आहार की व्यवस्था की जा सकती है।' बाज ने कहा -'मुझे भोजन देने के लिये आप किसी दूसरे प्राणी को मारेंगे, वह भी तो आपके राज्य का प्राणी होगा। तब इस कबूतर से ही आपको मोह क्यों है?' इस पर राजा शिवि ने कहा-'तुम मेरे शरीर से अपनी क्षुधा शान्त कर सकते हो।'

बाज ने कहा - महाराज! आपका शरीर यद्यपि सम्पूर्ण प्रजा के लिये आवश्यक है, फिर भी यदि आप चाहते हैं तो मुझे कोई आपति नहीं है। आप इस कपोत के बराबर तोल का मांस मुझे दे दें।

तराजू मंगाया गया। कबूतर एक पलड़े पर बैठा तथा दूसरे पलड़े में महाराज अपने दायें हाथ से मांस काट कर रखने लगे। किन्तु आश्चर्य, कबूतर बहुत भारी था। राजा ने अपना बाँया हाथ, दोनों पैर कमर से नीचे तक दोनों जांघें काटकर रख दीं, किन्तु कबूतर अब भी भारी बना रहा। अंत में राजा ने कहा- 'तुम मेरे सम्पूर्ण शरीर को खाकर अपनी क्षुधा मिटा लो।' शिवि स्वयं लुढ़क कर पलड़े में चढ़ गये। कबूतर का पलड़ा हल्का होकर ऊपर उठ गया।

'राजन्! आपका कल्याण हो।' सहसा बाज और कबूतर क्रमशः देवराज इन्द्र व अग्नि के रूप में प्रकट हो गये। राजा शिवि का शरीर पुनः सम्पूर्ण हो गया। इन्द्र ने कहा –'महाराज शिवि! आप महान् हैं।'

इस घटना से ज्ञात होता है कि हमारे देश के राजा दयालु, धर्मात्मा व अपनी प्रजा के लिये सर्वस्व त्याग करने को सदैव तत्पर रहते थे।

(4) दधीचि का देहदान

एक समय की बात है, स्वर्ग के देवता वासना, निष्क्रियता, कर्त्तव्यहीनता आदि दुर्गुणों के वशीभूत हो गये थे। स्वर्ग के भोग विलास में वे कर्त्तव्यच्युत हो गये थे।

उधर दानवों के राजा वृत्रासुर ने देखा कि देवगण पथभ्रष्ट हो गये हैं, तो उन्होंने देवताओं के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध की घोषणा से देवगण थर्रा उठे। देव-दानव युद्ध प्रारम्भ हुआ। देवताओं की पराजय पर पराजय होती गई। देवराज इन्द्र ने जब देखा कि असुरों से जीतना कठिन है, तो वे ब्रह्मा की शरण में गये और प्रार्थना करने लगे – 'हे जगत्पते! आज दानवों के समक्ष हमारा अस्तित्व समाप्त होने जा रहा है। आज हमें यह भान हुआ कि हम स्वर्ग की वासना में डूबे हुए कितने निर्बल और अशक्त हो गये हैं। हे प्रभो! अब हमारी लाज आपके हाथ में है। हे दयासिंधु! आप रक्षा करें।'

ब्रह्मा ने कहा – 'स्वदेश की भक्ति ही जिनका जीवन लक्ष्य है, वे भोग और तृष्णा में अपना जीवन नष्ट नहीं करते। सम्पत्ति वीर भोग्या है। जो भोगता है, वही जान देकर उसकी रक्षा करता है। आपमें स्वदेश की चिन्ता होती तो कायरों की भाँति भागकर मेरे पास न आते। यदि मातृभूमि के प्रति आपमें जरा भी भक्ति होती तो वृत्रासुर आपकी तरफ आँख उठाकर भी न देखता।'

ब्रह्मा ने कहा –'वृत्रासुर अजेय है। उसने अखण्ड ब्रह्मचर्य की साधना की है। तप से मृत्यु को भी जीत लिया है। उसे अस्त्र-शस्त्र नष्ट नहीं कर सकेंगे।'

इस पर देवराज इन्द्र ने कहा –'यह मैं क्या सुन रहा हूँ, जगत् पिता ! आप तो जगत् के सृजनहार हैं।' इस पर ब्रह्मा ने कहा –'मैं सत्य कहता हूँ। दानवों को पराजित करने का मात्र एक ही उपाय है और इसके लिये आपको मृत्युलोक की शरण लेनी होगी। बिना मानवीय सहायता के आपकी विजय असंभव है।'

ब्रह्मा देवराज को समझाते हैं कि 'यदि मृत्युलोक के किसी मानव में दया, परोपकार, दानवीरता और बन्धुत्व की भावना हो तो वह देवताओं से भी कहीं

अधिक पूज्य है। शारीरिक शक्ति आत्मबल के समक्ष तुच्छ है। जिसके पास आत्मबल है, वही बलवान् है। हिमालय की तलहटी में वह जो हाड़-मांस का पुतला रहता है, उस महामानव में तुम देवताओं से अधिक शक्ति है। अतः ऐसे सिद्ध-पुरुष की अस्थि प्राप्त करने में समर्थ हो सको तो तुम्हारी विजय सम्भव है।'

ब्रह्मा के बताये अनुसार देवराज इन्द्र ने महामुनि दधीचि के आश्रम में पहुँचकर प्रणाम किया। इन्द्र ने कहा -'हे मुनिवर! आपको यह तो मालूम होगा कि दानवों के अत्याचार से सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ है। देवलोक में घोर आतंक फैला हुआ है। महामुनि! इसका एक ही उपचार है। धर्म की स्थापना के लिये आप जैसे महामानव को अपने जीवन की आहुति देनी होगी। आपकी हड्डियों से जो वज्र बनेगा, वही असुरों का नाश कर सकेगा।'

देवराज के वचनों पर महर्षि मुस्कुराये, फिर दृढ़ स्वर में बोले -'सुरेन्द्र! वह तन धन्य है, जो किसी के काम आये। शरीर तो नश्वर है ही, तो फिर चिन्ता किस बात की? मानव शरीर की सार्थकता इसी में है कि वह दूसरों के लिये काम आये। पुष्प क्या अपने लिये खिलते हैं? पेड़- पौधे क्या अपने लिये फल देते हैं? क्या सरिताएँ अपने लिये जल का संग्रह करती हैं? जब जड़ पदार्थों में इतनी उदात्त भावनाएँ हैं तो हम मानव इससे वंचित क्यों रहें। मेरा यह पार्थिव-शरीर समर्पित है।'

दूसरे ही क्षण दानवीर ने योग-क्रिया द्वारा श्वास रोक लिया और उनका नश्वर शरीर तत्काल लुढ़क पड़ा।

दधीचि की हड्डियों से इन्द्र ने वज्र बनाया, जिसका युद्ध में उपयोग करने से देवों ने दैत्यों पर विजय प्राप्त की।

यहाँ ऋषिवर दधीचि की दानवीरता का वर्णन तो है ही साथ ही ब्रह्माजी के माध्यम से यह भी कहा गया है कि मातृभूमि की रक्षा के लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये। भोग व तृष्णा में जीवन व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये और शत्रु को कभी कमजोर नहीं समझना चाहिये।

(5) सत्यवादी हरिश्चन्द्र

सतयुग के अन्तिम काल में इक्ष्वाकु वंश के राजा हरिश्चन्द्र अयोध्या में राज्य करते थे। वे बड़े ही विद्वान, सत्यवादी, पराक्रमी, दानवीर, धर्मात्मा और दयालु थे। उनके राज्य में सत्य का ही शासन था। सत्यवादी हरिश्चन्द्र के राज्य में न्याय का तराजू सबके लिये बराबर था। उनकी पत्नी शैव्या भी सत्य, धर्म व न्याय के प्रति वैसा ही अनुराग रखती थी।

राजा–रानी सब तरह से सुखी थे, पर उनके कोई संतान न थी। कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ ने राजा से वरुण देव की उपासना करने के लिये कहा। वरुण देवता की कृपा से रोहित नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

महाराजा हरिश्चन्द्र चक्रवर्ती नरेश थे। अत: उन्होंने राजसूय यज्ञ करने का निश्चय किया। एक दिन वशिष्ठ ने विश्वामित्र से राजा की सत्यप्रियता, उदारता व दानशीलता की बड़ी प्रशंसा की। विश्वामित्र ने राजा की परीक्षा लेने का निश्चय किया।

एक दिन राजा हरिश्चन्द्र जंगल में शिकार खेलते हुए रास्ता भूल गये। उस समय विश्वामित्र ब्राह्मण का वेश बनाकर राजा के पास पहुँचे। राजा ने उन्हें अपनी राजधानी आने का निवेदन किया। राजा के अनुरोध पर विश्वामित्र एक दिन ब्राह्मण के वेश में राजा के दरबार में उपस्थित हुए। आदर–सत्कार के बाद राजा हरिश्चन्द्र ने ब्राह्मण से इच्छित वस्तु माँगने को कहा। विश्वामित्र बोले –'राजन्! यदि आप मुझे इच्छित वस्तु दे सकते हैं तो अपना राज्य एवं सर्वस्व अर्पण कीजिये।'

राजा अत्यन्त दानी और उदार थे। उन्होंने तुरन्त अपना राज्य और सर्वस्व अर्पण कर दिया। इसके बाद विश्वामित्र ने दक्षिणा माँगी। राजा अब दक्षिणा कहाँ से दें? उनके पास शेष कुछ था ही नहीं। राजा ने कहा –'भगवन्! अवश्य दूँगा। मुझे थोड़ा सा समय दीजिये।' विश्वामित्र को दक्षिणा देने के लिये काशी में जाकर अपनी पत्नी और पुत्र को बेचना पड़ा। बेचने से प्राप्त धन विश्वामित्र को देकर दक्षिणा का ऋण चुकाया। विश्वामित्र इससे भी सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने राजा से कहा कि मुझे एक महान् यज्ञ करना है। अत: और धन की आवश्यकता है। हरिश्चन्द्र ने स्वयं को एक डोम के पास बेच दिया व इससे प्राप्त धन विश्वामित्र को दे दिया।

राजा हरिश्चन्द्र अब श्मशान भूमि में रहकर उस डोम की दासता करने लगे। दाहकर्म करने वालों से कर लेते और मुर्दे जलाते। उधर रानी शैव्या पुत्र सहित एक ब्राह्मण के यहाँ दासी का काम करती। एक दिन राजकुमार रोहित ब्राह्मण के लिये फूल चुनने गया तो सांप ने उसे डस लिया। रोहित की उसी समय मृत्यु हो गई। रानी रोती हुई अपने पुत्र का दाह कर्म करने श्मशान पहुँची। राजा हरिश्चन्द्र ने न तो रानी को पहचाना और न ही अपने पुत्र को। अत: उससे श्मशान का कर माँगने लगे। रानी के बहुत विलाप करने पर राजा ने अपनी रानी और रोहित को पहचाना। कर माफ कराने के लिये वे स्वामी के पास गये।

इस बीच विश्वामित्र की माया ने लड़के को रक्त से रंग दिया और प्रचार किया कि यह औरत बालघातिनी है। इसने इस बालक को मारा है। डोम ने क्रोध में आकर राजा को आज्ञा दी कि इस बालघातिनी स्त्री को मार डालो। लाचार होकर ज्यों ही तलवार लेकर हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी को मारने के लिये खड़े हुए, उसी समय विश्वामित्र सहित देवताओं ने हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लिया। उन्होंने हरिश्चन्द्र के सत्यव्रत की प्रशंसा की। राजकुमार पुनः जीवित हो गया। हरिश्चन्द्र को राज–पाट, पत्नी आदि सब मिल गया।

अनन्त विपत्तियों में भी मनुष्य को अपना धैर्य नहीं खोना चाहिये तथा सत्य का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिये, यही शिक्षा हमें सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा से मिलती है।

(6) दैत्यराज विरोचन

दैत्यराज विरोचन भक्त श्रेष्ठ प्रह्लाद के पुत्र थे और प्रह्लाद के पश्चात् वे ही दैत्यों के राजा बने। ब्रह्मा के पास शिक्षा ग्रहण करने विरोचन गये थे। धर्म में इनकी श्रद्धा थी। आचार्य शुक्राचार्य इनसे बहुत ही स्नेह रखते थे।

अपने पिता प्रह्लाद का विरोचन पर बहुत प्रभाव पड़ा। ये देवताओं से कोई द्वेष नहीं रखते थे। विरोचन के मन में पृथ्वी पर भी अधिकार करने की इच्छा नहीं हुई। वे तो सुतल (पाताल) के राजा होकर सन्तुष्ट थे।

किन्तु इन्द्र को अपने इन्द्रासन की बड़ी चिन्ता रहती थी। राज्य और अर्थ का यह दोष है कि वह व्यक्ति को निश्चिन्त और निर्भय नहीं रहने देता। अतः देवराज इन्द्र को सदा यह भय रहता था कि यदि असुरों ने अमरावती (स्वर्ग) पर आक्रमण कर दिया तो विरोचन का युद्ध में सामना करना देवताओं की शक्ति से बाहर है।

शत्रु यदि प्रबल हों और युद्ध में उसका सामना करना सम्भव न हो तो उसे नष्ट करने का प्रबन्ध कर लेना चाहिये– यह युद्धनीति कहती है। यदि विरोचन को मार दें तो शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से जीवित कर देंगे– यह भय भी इन्द्र को सता रहा था। साथ ही यदि विरोचन क्रुद्ध हो गये तो वे देवताओं के लिये विपत्ति बन जायेंगे। अतः देवताओं के गुरु बृहस्पति की मंत्रणा से एक योजना बनाई गई और इन्द्र ब्राह्मण का वेश बनाकर पाताल लोक पहुँचे।

विरोचन ने अभ्यागत ब्राह्मण का स्वागत किया, उनके चरण प्रक्षालन किये, उनकी पूजा की और हाथ जोड़कर बोले –''मेरा आज सौभाग्य उदय हुआ है, जिससे असुर सदन में ब्राह्मण के चरण पड़े। बतायें, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?''

इन्द्र विरोचन की सेवा से बहुत प्रभावित हुए। उनकी दानशीलता की प्रशंसा की और विरोचन से बोले – 'मुझे आपकी आयु चाहिये।' विरोचन किंचित् भी हतप्रभ नहीं हुए। उन्होंने प्रसन्नता से कहा –'मैं धन्य हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया। मेरा जीवन स्वीकार करके आपने मुझे धन्य कर दिया।'

विरोचन ने अपनी तलवार निकाली और मस्तक काटकर दूसरे हाथ से ब्राह्मण की ओर बढ़ा दिया। मस्तक लेकर इन्द्र तत्काल स्वर्ग चले गये। विरोचन को भगवान् ने अपना पार्षद बना लिया।

धन्य है ऐसे सत्पुरुष जिन्होंने शत्रु को भी अपना जीवनदान देकर दानवीरता का परिचय दिया।

(7) महादानी महाराज रघु

सूर्य वंश में इक्ष्वाकु आदि राजा बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। उसी वंश के महाराज रघु भी बड़े प्रसिद्ध पराक्रमी, धर्मात्मा व भगवत् भक्त हुए हैं। उन्हीं के नाम से 'रघुवंश' प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने अपने पराक्रम से समस्त पृथ्वी को अपने अधीन कर लिया था। चारों दिशाओं में दिग्विजय करके वे समस्त भू–मण्डल के स्वामी हुए। विजित राजाओं को भी अधीन बनाकर छोड़ देते, उनसे किसी प्रकार का कर वसूल नहीं करते थे।

एक बार वे दरबार में बैठे थे कि उनके पास 'कौत्स' नाम के एक स्नातक ऋषि कुमार आये। उनको देखकर महाराज ने उनका विधिवत् स्वागत किया। थोड़ी देर के बाद ऋषिकुमार चलने लगे। तब महाराज ने कहा – ब्राह्मण! आप कैसे पधारे व बिना अपना अभिप्राय बताये आप क्यों लौट रहे हैं?

ऋषिकुमार ने कहा –'राजन्! मैंने आपके दान की ख्याति सुनी थी कि आप अद्वितीय दानी है। मैं एक प्रयोजन से आपके पास आया था, किन्तु मैंने सुना कि आपने यज्ञ में अपना समस्त वैभव दान कर दिया है। यहाँ आकर मैंने प्रत्यक्ष देखा कि आपके पास अर्घ्य देने के लिये भी कोई धातु–पात्र नहीं है, मिट्टी के पात्र से आपने अर्घ्य दिया है। अतः अब मैं आपसे कुछ नहीं कहता।' राजा ने कहा –'नहीं ब्राह्मण! आप मुझे अपना अभिप्राय बताइये। मैं यथासम्भव उसे पूरा करने की कोशिश करूँगा।'

स्नातक ने कहा –'राजन्! मैंने अपने गुरु के यहाँ रहकर वेदों का अध्ययन किया। अध्ययन के बाद मैंने गुरुजी से दक्षिणा के लिये प्रार्थना की। पहले तो गुरुजी मना करते रहे। बार–बार निवेदन करने पर उन्होंने कहा –'अच्छा! तुम मुझे चौदह कोटि स्वर्ण–मुद्राएँ लाकर दो। मैं इसलिये आपके पास आया था।'

महाराज ने कहा –'ब्राह्मण कुमार! मेरे हाथ में धनुष बाण के रहते हुए कोई ब्रह्मचारी मेरे यहाँ से विमुख जाये तो मेरे राजपाट, धन–वैभव को धिक्कार है। आप बैठिये, मैं कुबेर पर चढ़ाई करके उनके यहाँ से धन लाकर आपको दूँगा।'

महाराज ने सेना को सुसज्जित होने की आज्ञा दी। निश्चय हुआ कि कल प्रस्थान करेंगे। दूसरे दिन प्रातःकाल कोषाध्यक्ष ने आकर महाराज से निवेदन किया – 'महाराज! रात्रि में सुवर्ण की वृष्टि हुई और समस्त कोष स्वर्ण–मुद्राओं से भर गया।' कुबेर ने पहले ही राजा का कोष स्वर्ण मुद्राओं से भर दिया था। वहाँ जितनी भी मुद्राएँ थी, वे समस्त ऋषिकुमार को राजा ने देनी चाही। किन्तु ऋषिकुमार ने कहा –'महाराज! मुझे तो केवल चौदह कोटि ही चाहिये। अधिक का मैं क्या करूँगा?' ऋषिकुमार को जितनी मुद्राओं की आवश्यकता थी, उतना ही द्रव्य लेकर वे अपने गुरु के यहाँ चले गये। शेष बचा हुआ धन राजा ने दान में दे दिया।

अन्त में महाराज अपने पुत्र 'अज' को राज्य सौंपकर तपस्या करने वन में चले गये। 'अज' के पुत्र महाराज दशरथ हुए जिन्हें भगवान् श्रीराम के पिता होने का सौभाग्य मिला।

इस दृष्टान्त से यह पता चलता है कि उस युग में राजा धन का संग्रह नहीं करते थे और न ही जनता के धन का उपयोग स्वयं के लिये करते थे। जनता का धन पूरी ईमानदारी के साथ जनता के हित में लगाते थे। वर्तमान शासन यदि इनका लेशमात्र भी अनुसरण करे तो भ्रष्टाचार, बेईमानी व अराजकता स्वतः समाप्त हो जाय।

(8) दानवीर कर्ण

दानवीर कर्ण महाभारत के प्रमुख योद्धा के रूप में जाने जाते हैं। वे कुन्ती व सूर्य के पुत्र थे। उनका पालन –पोषण एक सूत दम्पती (राधा–अधिरथ) ने किया था। वे कौरवों के राजकुमार दुर्योधन के अभिन्न मित्र थे। दुर्योधन ने उसे अंग देश का राजा बनाया था। कर्ण ने धनुर्विद्या अपने गुरु परशुराम से सीखी थी। इसलिये धनुर्विद्या में आप अर्जुन के मुकाबले के थे।

कवच–कुण्डल, उन्हें सूर्य की कृपा से जन्म के साथ मिले थे। इनके रहते युद्ध–भूमि में इन्हें कोई पराजित नहीं कर सकता था।

इनकी पत्नी का नाम पद्मावती था। वृषसेन, शूरसेन, चित्रसेन और वृषकेतु नामक इनके पुत्र हुए। इनकी राजधानी चम्पानगर में थी। कुछ लोग कहते

हैं कि वर्तमान भागलपुर ही उक्त चम्पानगर है। कर्ण की दानशीलता जगत् प्रसिद्ध थी। प्रतिदिन प्रातःकाल वे याचक को मुँह–माँगा दान देते थे। यह उनका संकल्प था।

महाभारत युद्ध में अर्जुन के लिये कर्ण बड़ी चुनौती थे। कवच कुण्डल के कारण उनको मारना बड़ा कठिन था। भगवान् श्रीकृष्ण ने एक युक्ति निकाली। उन्होंने अर्जुन को ब्राह्मण का वेश बनाकर याचक के रूप में कर्ण के पास भेजा। अर्जुन ने दान स्वरूप कर्ण के कवच–कुण्डल मांग लिये। पिता सूर्य ने कर्ण को आगाह किया कि यह श्रीकृष्ण की चाल है, तुम्हें मारने की। माँगने वाला याचक ब्राह्मण के वेश में अर्जुन है। कर्ण यह भी जानते थे कि ये दो वस्तुएँ जब तक उनके पास हैं तब तक उन्हें कोई मार नहीं सकता।

किन्तु कर्ण दानवीर थे। उन्होंने कभी किसी याचक को बिना कुछ दिये वापस नहीं लौटाया, तो भला इस बार वे ऐसा क्यों करते? जिसे दान देते समय मृत्यु का भी भय नहीं, उसे दानवीर कहते हैं। दानवीर कर्ण ने अपने कवच–कुण्डल बड़ी प्रसन्नता के साथ अर्जुन को दे दिये। यद्यपि इनके बिना कर्ण को युद्ध–भूमि में अर्जुन से पराजित होना पड़ा, तथापि अपने संकल्प पर वे अडिग रहे। सही है – संकल्पवान् व्यक्ति मृत्यु से भी नहीं डरते।

(9) जटायु का प्राण दान

जटायु के माता–पिता का नाम क्रमशः श्येणी व अरुण था। इनके बड़े भाई का नाम सम्पाती था। ये दोनों ही विशालकाय व महा–बलवान पक्षी थे।

जटायु आकाश में विचरने वाला पक्षी था। किन्तु पक्षी होकर भी उसने निःस्वार्थ भाव से रावण के अनाचार के विरुद्ध प्रबल संग्राम किया। जटायु ने एक असहाय नारी को आततायी के चंगुल से मुक्त कराने के लिये अपने प्राणों को दाँव पर लगा दिया।

अपने चौदह वर्ष के वनवास काल में श्रीराम, लक्ष्मण और सीता पंचवटी में एक पर्णकुटी में निवास कर रहे थे। कुटी में राम व लक्ष्मण की अनुपस्थिति में लंकापति रावण साधु के वेश में भिक्षा मांगने के बहाने पहुँचा और सीता का अपहरण कर लिया। वृद्ध जटायु ने देखा कि आततायी रावण रघुवंश की कुलवधू सीता का अपहरण कर अपने रथ पर बैठा कर ले जा रहा है। सीता का क्रन्दन सुन उसने सीता को सांत्वना दी और आश्वासन दिया कि – हे सीते! पुत्रि! भय मत कर। मैं इस राक्षस का नाश करुँगा।

'सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा।।'

(रा.च.मा. 3/28/5)

पहले तो जटायु ने रावण को इस अनैतिक कार्य को न करने का परामर्श दिया। पर जब रावण नहीं माना तो उसको युद्ध के लिये ललकारा। दोनों के बीच घमासान युद्ध हुआ। दोनों ने एक दूसरे पर प्रहार किये। रावण ने अपने शस्त्रों का प्रयोग किया तो जटायु ने अपनी तीखी चोंच व पैने पंजों का। इस संघर्ष में उसने रावण का धनुष तोड़ डाला। उसका रथ नष्ट कर दिया। अश्वों सहित सारथी का वध कर दिया। रावण धराशायी हो गया।

फिर भी सीता को लेकर वह आकाश मार्ग में उड़ा। जटायु ने उसका पीछा किया तथा अपनी नुकीली चोंच व पैने पंजों से रावण को क्षत-विक्षत कर दिया। क्रुद्ध होकर रावण ने अपने अस्त्रों से घातक प्रहार किये और अपनी तलवार से जटायु के पंख काट दिये। जटायु भूमि पर गिर पड़ा। इसी बीच रावण सीता को लेकर लंका की ओर चला गया।

जटायु के शरीर से निरन्तर रक्त बह रहा था। इसी समय राम-लक्ष्मण सीता को खोजते हुए उस स्थान पर पहुंचे। जटायु ने राम को सारी स्थिति से अवगत करा दिया। श्रीराम को लंका विजय का आशीर्वाद देकर अंतिम सांस ली।

समस्त विश्व के सांस्कृतिक इतिहास में जटायु के बलिदान की यह पहली घटना है, जहाँ पक्षी-योनिधारी ने एक नर-तनधारी (नारी) के सतीत्व और सम्मान के लिये अपने प्राणों का दान दिया हो।

(10) राजऋषि रंतिदेव की अतिथि सेवा

रघुवंश में संकृति नाम के एक राजा हुए हैं। उनके दो पुत्र थे- गुरु और रंतिदेव। महाराजा रंतिदेव दया और उदारता के अवतार थे। वे प्राणी मात्र के दु:ख को स्वयं सहना चाहते थे। ऐसे उदार व दानी के द्वार से कभी कोई खाली हाथ नहीं लौटा। उनके राजकोष में अक्षय धन-सम्पत्ति थी, लेकिन उन्हें कभी भी राज्य व धन का मद नहीं हुआ। ब्राह्मणों को दान देना, याचकों को संतुष्ट करना तथा अतिथि की सेवा करना- ये उनके चरित्र के प्रमुख गुण थे।

महाभारत में वर्णन आता है कि राजा रंतिदेव के यहाँ दो लाख रसोइये थे, जो अतिथियों को प्रतिदिन उत्तम भोजन परोसते थे। राजा प्रतिदिन सहस्रों कोटि 'निष्क' का दान करते थे। (एक निष्क = एक हजार सुवर्ण सींग के बैल, प्रत्येक के पीछे सौ-सौ गायें और एक सौ आठ स्वर्ण मुद्राएं) धर्मात्मा रंतिदेव की

अलौकिक समृद्धि और दानशीलता को देखकर उनके विषय में कहा गया है –

नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि।
धनं च पूर्यमाणं नः किं पुनर्मनुजेष्वपि।। (महा.द्रौ. 67/13)

अर्थात् 'हमने कुबेर के भवन में भी रंतिदेव के समान, भरा पूरा धन का भण्डार पहले कभी नहीं देखा है, फिर मनुष्यों के पास तो हो ही कैसे सकता है?'

उनके यज्ञ में देवता व पितृगण साक्षात् उपस्थित होकर हव्य ग्रहण करते थे। किन्तु दैवयोग से कब क्या हो जाता है कोई नहीं जानता। होनी को कौन टाल सकता है? अचानक देश में कई वर्षों तक अनावृष्टि के कारण अकाल पड़ा। रंतिदेव ने अपना सम्पूर्ण राजकोष, अन्न- भण्डार आदि सब जनता की सेवा में व्यय कर दिया। अन्त में ऐसी अवस्था आई कि रंतिदेव अपने परिवार के भोजन के लिये भी कुछ बचा नहीं सके।

अपने को असमर्थ जान, राजा ने अपने स्त्री व पुत्र को साथ लेकर चुपचाप राजप्रासाद छोड़ दिया और वन को प्रस्थान किया। अकाल के कारण वन में न कन्द थे, न फल थे। सूखते कंठ को भिगोने के लिये दो बूंद पानी भी नहीं था। यह असह्य अवस्था एक-दो दिन नहीं, पूरे अड़तालीस दिन तक चलती रही। उनके शरीर में हिलने व चलने की शक्ति भी नहीं रही। अब तो ये तीनों भगवान् का स्मरण करते हुए अंतिम समय की प्रतीक्षा करने लगे।

भगवान् की लीला अद्‌भुत है। उन्चासवां दिन आया तो सूर्योदय के कुछ काल पश्चात् एक व्यक्ति ने आकर भोजन व जल निवेदित किया। आहार व जल का भगवान् को भोग लगाने के बाद रंतिदेव के मन में आया कि जीवन में प्रथम बार क्या अतिथि को भोजन कराये बिना भोजन करना पड़ेगा?

ठीक उसी समय एक ब्राह्मण अतिथि वहाँ पहुँचे और कहा –'राजन्! मैं बहुत भूखा हूँ।' रंतिदेव को लगा कि भगवान् उनकी इच्छा पूर्ण करने आये हैं। बड़ी श्रद्धा से ब्राह्मण को भोजन कराया।

ब्राह्मण के जाने पर भोजन का भाग स्त्री -पुत्र को देकर स्वयं भोजन करने ही जा रहे थे कि एक अन्य अतिथि आ गया। उसे भी आदरपूर्वक भोजन कराया। इसी बीच कई कुत्तों के साथ एक चाण्डाल आ पहुँचा और बोला –'मैं और मेरे कुत्ते भूख से मर रहे हैं।'

जो भी अन्न बचा था, सब बड़े सम्मान से रंतिदेव ने उस चाण्डाल व उसके कुत्तों को खिला दिया। वे सभी तृप्त होकर विदा हुए। अब बचा था थोड़ा सा जल जिसको पीकर वे प्राण रक्षा करना चाहते थे। राजा पानी पीने ही जा रहे थे कि एक व्यक्ति की कातर आवाज कानों में पड़ी- 'मैं प्यास से मर रहा हूँ, मुझे

कृपा करके दो चुल्लू जल दे दीजिये।' रंतिदेव के मुख से निकला –'हे जगत् के स्वामी! मैं अपनी सद्गति या मोक्ष नहीं चाहता। मुझे सब प्राणियों के हृदय में निवास करके उनके सब दु:ख भोग लेने की शक्ति दो, जिससे सभी प्राणी सुखी हो जाएँ। देव! मुझे ही सब दु:ख दे दें, जग–जन सारे सुख पायें। जो कुछ उनके कलुष–भोग हों, इस जन के (मेरे) माथे आएँ।।'

रंतिदेव किसी प्रकार उठे, जल पात्र उठाया और उसके समीप गये। बोले– 'भाई तुम पानी पीकर अपने प्राणों को तृप्त कर लो।' उनका हृदय कह रहा था –

न त्वहं काम्ये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दु:खतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

'मुझे फिर राज्य प्राप्त हो जाए, यह मैं नहीं चाहता। देह छूटने पर स्वर्ग जाऊँ अथवा जन्म–मरण से छूट जाऊं, यह भी मेरी इच्छा नहीं है। दु:ख से संतप्त प्राणियों के दु:ख दूर हों, मैं यही चाहता हूँ।'

वे कहने लगे– 'सर्वव्यापी भगवान् नारायण! इस जीवन की लालसा से व्याकुल प्राणी के रूप में तुम ही मेरे सम्मुख हो। यह जल मैं तुम्हीं को अर्पण करता हूँ। इस प्राणी को जल देने से मेरी भूख–प्यास, विषाद व मूर्च्छा आदि सब दु:ख दूर हो गये हैं।'

अतिथि के जाते ही रंतिदेव लड़खड़ाकर जैसे ही गिरे, उन्हें किन्हीं कोमल हाथों ने संभाल लिया। नेत्र खोलकर देखा तो सामने साक्षात् नारायण खड़े हैं।

हमारे देश की यह महिमा है कि यहाँ ऐसे अतिथि –सत्कार करने वाले, दानशील और सर्वहितैषी प्रजापालक राजऋषि हो चुके हैं। इन्हीं के बल पर भारतमाता की प्रतिष्ठा बनी हुई है।

/ku d dkj.k /ke dk R;kx u dj

धर्म का पालन करते हुए जो धन प्राप्त करता है, वह सच्चा धन है। जो अधर्म से प्राप्त होता है, वह धन तो धिक्कार योग्य है। संसार में धन की इच्छा से शाश्वत धर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिये।

उपनिषदों की कथाएँ

1. गौ–सेवा से ब्रह्मज्ञान
2. श्वेतकेतु और उद्दालक
3. इन्द्र और विरोचन की कथा
4. उपकौशल को अग्नियों द्वारा शिक्षा
5. याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी
6. महात्मा रैक्व व दानवीर राजा जानश्रुति
7. आपद् धर्म
8. वैश्वानर की खोज

उपनिषदों की कथायें मात्र मनोरंजन करने वाली कहानियां नहीं हैं। इनमें एक ऐसी दृष्टि है, जो हमें जीवन दर्शन का ज्ञान कराती हैं, भले–बुरे का विवेक देती है। जीवन की अनेक विकट परिस्थितियों में जब हम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं तब ये कथाएँ हमारा मार्गदर्शन करती हैं, साथ ही सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती हैं।

इन कथाओं में देवों, दानवों, ऋषियों–मुनियों व राजाओं को ही नहीं, पशु–पक्षी, नदी–पर्वत आदि प्रकृति से सम्बन्धित विषयों को भी समाविष्ट किया गया है।

उपनिषदों की यह विशेषता है कि इनमें आत्मा एवं ब्रह्म के सूक्ष्म रहस्यों को, गुरु–शिष्य संवाद के माध्यम से समझाया गया है, ताकि सामान्य जन को यह सरल व बोधगम्य लगे। कहने को ये कथाएँ हैं किन्तु ये ज्ञान व बुद्धि के पर्दों का अनावरण करती हुई विषय–वस्तु को सरल व सरस बनाती हैं। निश्चय ही ये कथाएँ पाठकों का ज्ञानवर्धन करेंगी।

इसके अतिरिक्त पूर्ववर्णित प्रकरण 'उपनिषद्' में तथा अन्य प्रकरणों में भी अनेक स्थानों पर वैदिक कथाएँ दी गई हैं। यथा – देवताओं का शक्ति–परीक्षण, नचिकेता का साहस, याज्ञवल्क्य–गार्गी संवाद, 'द' का उपदेश आदि। आशा है, पाठकवृन्द इन्हें पढ़कर दिशा–बोध प्राप्त करेंगे।

1. गौ–सेवा से ब्रह्मज्ञान

महर्षि हरिद्रुम के पुत्र गौतम अपने समय के प्रसिद्ध आचार्यों में से थे। उनके गुरुकुल में देश के कोने–कोने से विद्यार्थी पढ़ने आते थे। उस समय विद्यार्थियों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। अतः राजा एवं गृहस्थ सदा गुरुकुल में अन्न–वस्त्र आदि से सहयोग किया करते थे। विद्यार्थी केवल खाने भर का अन्न गृहस्थों से माँगकर लाते थे।

गौतम ऋषि के आश्रम में एक 10-12 वर्ष के बालक ने प्रवेश लिया। नाम था - सत्यकाम जाबाल। गुरु ने उसे योग्य मानकर अपना शिष्य बनाया।

गौतम ने बालक सत्यकाम से कहा, 'वत्स ! मेरे पास इस समय चार सौ गायें है। मैं चाहता हूँ कि तुम इन सबको लेकर वन में जाओ और इनकी देखभाल करो। जब ये एक हजार हो जायें तब आश्रम में लौटना।'

सत्यकाम ने कहा -'गुरुदेव ! आपकी आज्ञा ही मेरे जीवन का ध्येय है। मुझे आज्ञा दीजिये।' गौओं को साथ लेकर सत्यकाम ने वन का मार्ग पकड़ा। चलते-चलते वह सुन्दर, सघन व हरे प्रदेश में पहुँच गया। यहाँ पहुँचकर सत्यकाम ने अपने लिये एक झोंपड़ी बनाई और गायों की सेवा करता रहा। दिन पर दिन बीतते गये। वन की प्राकृतिक सुविधाओं में पलकर गायों की संख्या एक हजार हो गई।

एक दिन प्रातः काल सत्यकाम सूर्य को अर्घ्य दे रहा था कि पीछे से बैलों के झुंड में से मनुष्य जैसी आवाज आई। पीछे देखा तो एक बलवान व ऊँचा वृषभ उसकी ओर देख रहा है। सत्यकाम ने कहा - 'भगवन्! क्या आज्ञा है?' वृषभ ने कहा - 'वत्स! अब हमारी संख्या सहस्र से ऊपर हो गई है। अब हमें आचार्य के पास ले चलो। अपनी अटूट सेवा से तुम ब्रह्मज्ञान के अधिकारी बन चुके हो। मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान के एक पाद (अंश) का उपदेश दे रहा हूँ।'

वृषभ ने सत्यकाम को ब्रह्मज्ञान के एक अंश का उपदेश देने बाद कहा - 'वत्स! इस अंश का नाम '**प्रकाशवान्**' है। जो इस पाद की उपासना करता है वह प्रकाशवान् लोकों को जीत लेता है। अगला उपदेश तुम्हें स्वयं अग्निदेव करेंगे।' ब्रह्मज्ञान के एक अंश से सत्यकाम के हृदय में शान्ति छा गई और मन एक अलौकिक संतोष से भर गया।

दूसरे दिन प्रातः काल सत्यकाम गौओं को लेकर गुरुकुल की ओर रवाना हुआ। सूर्यास्त के समय हवन करने बैठा। पहली आहुति डालते ही यज्ञाग्नि की ज्वाला से अग्निदेव प्रकट हुए और बोले -'सत्यकाम ! तुम ब्रह्मज्ञान के पूर्ण अधिकारी हो चुके हो, मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान के द्वितीय पाद का उपदेश करूँगा।' उपदेश के बाद उन्होंने कहा -'इसका नाम '**अनन्तवान्**' है। ब्रह्म के इस पाद की जो उपासना करता है वह अनन्तवान् (असीम) लोकों को जीत लेता है। अगला उपदेश तुम्हें हंस करेगा।'

ब्रह्मज्ञान के द्वितीय अंश के उपदेश से सत्यकाम की लौकिक कामनायें विलीन हो गईं। अगले दिन प्रातःकाल गौओं को लेकर वह आगे बढ़ा। संध्या के

समय वह एक सुन्दर सरोवर के तट पर यज्ञ अग्नि को जलाकर साधना में लीन हो गया। इतने में ही पूर्व दिशा से एक हंस ऊपर से उड़ता हुआ आया और सत्यकाम के समीप बैठकर बोला– 'सत्यकाम!' सत्यकाम बोला–'भगवन्! क्या आज्ञा है?' हंस ने कहा –'वत्स सत्यकाम! तुम्हारी साधना से प्रसन्न होकर मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान के तृतीय पाद का उपदेश देने आया हूँ। इसका नाम '**ज्योतिष्मान्**' है। जो पुरुष ब्रह्म के इस पाद की उपासना करता है वह इस लोक में ज्योतिष्मान् होता है तथा ज्योतिष्मान् लोकों को जीत लेता है। अगला उपदेश तुम्हें जल पक्षी (मृद्‌गु) करेगा।'

सत्यकाम अब सचमुच ज्योतिष्मान् हो गया। उसके शरीर से तेज की अनुपम आभा प्रकट होने लगी। अगले दिन पुनः वह गौओं को लेकर आगे बढ़ा। संध्या के समय प्रतिदिन की भाँति हवन के लिये अग्नि जलाने के बाद आहुति डालते समय सत्यकाम के सामने जलपक्षी (मृद्‌गु) आकर खड़ा हो गया और कहने लगा –' वत्स सत्यकाम!' सत्यकाम खड़ा होकर हाथ जोड़कर कहने लगा – 'क्या आज्ञा है?' जलपक्षी बोला –'वत्स! तुम्हारी साधना पूरी हुई। तुम ब्रह्मज्ञान के अधिकारी बन चुके हो। मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान के चतुर्थ पाद का उपदेश करूँगा। इसका नाम '**आयत्‌वान्**' है। इसे सीखने के अनन्तर तुम ब्रह्मज्ञान के पूर्ण पंडित बन जाओगे।'

जलपक्षी उपदेश देकर उड़ गया। दूसरे दिन प्रातःकाल गौओं को लेकर सत्यकाम गुरु के आश्रम की ओर चल पड़ा। सायं से पहले वह गुरुकुल में पहुँच भी गया।

सत्यकाम ने जाकर गुरु के चरणों में सादर प्रणाम किया। गुरुपत्नी के चरण स्पर्श किये और गौओं को लेकर आश्रम में उपस्थित हुआ। सब ने देखा कि सत्यकाम अब पहले वाला बालक नहीं रह गया है। इन चार वर्षो के बीच उसका तेजस्वी शरीर ब्रह्मवर्चस् की आभा से दीप्त हो गया है।

गौतम ने बैठने की आज्ञा देते हुए सत्यकाम से पूछा –' वत्स! तुम्हारे चेहरे की शान्ति और शरीर की कांति से मुझे लगता है कि तुम्हारी निष्काम व निश्चल सेवावृत्ति से ब्रह्मतेज का अंश तुझमें आ गया है। क्या वन में प्रभु की तुझ पर कृपा हो गई थी?'

सत्यकाम ने कहा –'गुरुदेव! मुझे मार्ग में ऐसे चार दिव्य प्राणियों ने ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया है।'

गौतम ने स्नेह व सम्मान भरे शब्दों में कहा–'वत्स! तुम्हारी साधना पूर्ण हुई। तुम धन्य हो। तुम्हारी गौ–सेवा ने तुम्हें आज सफलता के मार्ग पर ला पहुँचाया

है। तुम्हारी सेवा भावना व ज्ञान की प्यास की जितनी प्रशंसा की जाये वह कम है। गौ-सेवा के प्रसाद से ही तुम्हें यह सिद्धि प्राप्त हुई है।'

श्वेतकेतु-उद्दालक संवाद

अरुण के पुत्र उद्दालक एक बहुत बड़े आश्रम के कुलपति थे। उनके आश्रम में दूर-दूर से हजारों विद्यार्थी आकर अध्ययन करते थे। उनका एक पुत्र था श्वेतकेतु। बारह वर्ष की आयु तक वह कुछ भी पढ़-लिख नहीं सका। एक दिन उद्दालक ने अपने पुत्र को बुलाकर कहा -'बेटा! अब तुम अबोध बच्चे नहीं हो। अभी तक तुम्हें वेद का एक भी मंत्र याद नहीं। हमारे कुल में कोई ऐसा पैदा नहीं हुआ, जिसने वेदों को नहीं पढ़ा हो। सोचो! यह कितनी लज्जा की बात है कि हमारे पुत्र होकर भी अब तक अज्ञानी बने रहे। हम चाहते हैं कि तुम यहाँ से जाओ और योग्य गुरु के पास ब्रह्मचारी बनकर वेदाध्ययन करो। पुत्र ! हमारी अभिलाषा पूरी करके जब तुम लौटोगे, तभी हम समझेंगे कि तुम हमारे बाद कुल की मर्यादा को स्थिर रखोगे।'

श्वेतकेतु के मानस पर पिता के वचनों का असर हुआ। वह अपनी भूल पर दु:खी होकर बोला- 'पूज्य पिताजी! मेरी भूलों के लिये क्षमा करें। मैं अपने जीवन के अमूल्य वर्षों को खोकर पछता रहा हूँ। पूज्य तात! मुझे शीघ्र ही किसी आचार्य के पास भेजिये।'

कुछ दिनों के बाद श्वेतकेतु शुभ मुहूर्त में उपमन्यु के पुत्र प्राचीनशाल के आश्रम को रवाना हो गया। प्राचीनशाल के आश्रम में पहुंचकर श्वेतकेतु शीघ्र ही वहाँ घुल-मिल गया और तन-मन से अध्ययन में जुट गया।

गुरु और गुरुपत्नी के असीम स्नेह का अधिकारी बनकर श्वेतकेतु ने विद्या तो सारी सीख ली किन्तु स्वभाव से वह अभिमानी बन गया। गुरु के आश्रम में रहते उसे अब बारह वर्ष हो गये। एक दिन शुभ मुहूर्त में प्राचीनशाल ने उसका समावर्तन संस्कार किया और घर जाने की आज्ञा दी। गुरु की आज्ञा पाकर वह अपनी जन्मभूमि के लिये रवाना हुआ। ज्ञान के अहंकार में भरा हुआ श्वेतकेतु पांचवें दिन अपने पिता के आश्रम में पहुँचा।

पिता ने अपने पुत्र को गले लगाया। उसके सर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कुशल समाचार पूछा। पर अविनयी श्वेतकेतु पिता को प्रणाम करना ही भूल गया। पिता को श्वेतकेतु का यह अविनीत स्वभाव कांटे की तरह चुभ गया।

आश्रम में अपने बाल साथियों पर वह अपनी पंडिताई की धाक जमाने लगा। इतना ही नहीं अपने साथियों के मध्य पिता से भी अपने अध्ययन, पांडित्य

और विद्वता की चर्चा करने लगा। उद्दालक मन ही मन बहुत दु:खी हो गये। विद्या तो व्यक्ति को विनयशील बनाती है, पर इसमें अहंकार कैसे उत्पन्न हो गया? अपूर्ण ज्ञान ही व्यक्ति को अविनयी बनाता है। अत: श्वेतकेतु का अहंकार नष्ट करने के लिये उन्होंने युक्ति से काम लिया।

एक दिन शास्त्रीय चर्चा के प्रसंग में उद्दालक ने पूछा– 'वत्स! क्या तुमने अपने गुरु से वह विद्या भी सीखी है, जिसके जानने से न सुना हुआ विषय भी सुनाई देता है, जिसके द्वारा समझ में न आया हुआ विषय भी समझ में आ जाता है और जिसके जानने से न जाना हुआ विषय भी जाना जाता है। अर्थात् वह सद्विद्या जो समस्त विद्याओं का आधार है, वह क्या है?

श्वेतकेतु अपने ज्ञान को टटोलने लगा। पर कहीं भी उस विद्या की चर्चा तो आई ही नहीं थी। वह भला कैसे उत्तर देता। उसका अभिमानी मन लज्जा से गड़ने लगा। उसने सोचा, मेरा मिथ्या अभिमान कितना निराधार और पापमय है। श्वेतकेतु विनीत स्वर में हाथ जोड़कर बोला – 'तात्! वह विद्या कौनसी है? उसका मुझे तनिक भी ज्ञान नहीं। ऐसी अनुपम विद्या को मैं सीखना चाहता हूँ। तात! मेरे अपराध को क्षमा करें।' ऐसा कहकर वह अपने पिता के चरणों में गिर पड़ा।

उद्दालक ने पुत्र को उठाते हुए कहा – 'वत्स! मैं तुम्हें उस विद्या का उपदेश दूँगा। पर यह बात गाँठ बाँध लो कि, संसार में अभिमानी का कल्याण नहीं होता। उसके हाथ में रहने वाली वस्तु भी नष्ट हो जाती है। विद्या का तो स्वभाव ही है कि उसे जानने वाला विनयी, सदाचारी और निरभिमानी हो जाता है। जो व्यक्ति विद्या सीखकर भी अविनीत, असदाचारी और अभिमानी रहता है, वह कभी विद्वान नहीं कहा जाता। उसका सर्वत्र अनादर व अपयश होता है।

श्वेतकेतु ने सिर झुकाकर विनीत स्वभाव से उत्तर दिया –'तात! मेरा अज्ञान दूर हो गया है।' उद्दालक ने कहा – 'वत्स! मेरा अमर्ष (दु:ख) दूर हो गया है। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुझे उस गोपनीय व परम्–ज्ञान का उपदेश करुँगा।'

3. इन्द्र और विरोचन की कथा

दैत्यराज प्रह्लाद का पुत्र विरोचन दैत्यों का स्वामी था। इसी विरोचन का पुत्र बलि था, जिससे विष्णु भगवान ने वामन रूप धारण कर पृथ्वी दान के रूप में माँग ली थी।

जैसे दैत्यों का स्वामी विरोचन था, वैसे ही देवताओं का स्वामी इन्द्र था। दोनों प्रजापति ब्रह्माजी के पास गये और कहा – 'भगवन्! हम उस आत्मा को

जानना चाहते हैं, जिसे जानने पर जीव सम्पूर्ण लोकों और समस्त भोगों को प्राप्त कर लेता है।'

प्रजापति का उपदेश

1. **जो पुरुष नेत्रों से दिखाई देता है, वह आत्मा है** :- प्रजापति ने कहा- 'यह पुरुष जो नेत्रों से दिखाई देता है, यह आत्मा है, यह अभय है, यह ब्रह्म है।' प्रजापति ने कहा- 'जलपूर्ण पात्र में अपने आपको देखो।' प्रजापति ने पुनः कहा, 'अब सुन्दर वस्त्र धारण कर उसी पात्र में देखो।' इन्द्र और विरोचन ने कहा - 'भगवन्! हम जैसे हैं, सुन्दर वस्त्रधारी और परिष्कृत हैं- वैसे ही दिखते हैं।' तब प्रजापति ने कहा - 'यह आत्मा है, यह अमृत है, और यही ब्रह्म है।'

तब वे दोनों शान्तचित्त से चले गये। प्रजापति ने उन्हें दूर गया देखकर कहा- 'ये दोनों आत्मा का ज्ञान उपलब्ध हुए बिना जा रहे हैं। निश्चय ही इनका पराभव होगा।'

विरोचन असुरों के पास पहुँचा और यह आत्म-विद्या सुनाई। कहा-'इस लोक में यह शरीर ही पूजनीय है। शरीर की ही पूजा करने वाला, परिचर्या करने वाला पुरुष इस लोक और परलोक दोनों को प्राप्त कर लेता है।' विरोचन की अधूरी शिक्षा का यह परिणाम हुआ कि असुर नितांत स्वार्थी एवं पाप करने वाले बने। किन्तु इन्द्र देवताओं के पास पहुँचे बिना पुनः वापस आये और प्रजापति से निवेदन किया - 'भगवन् ! जिस प्रकार यह छायात्मा शरीर के अलंकृत होने पर अलंकृत होता है, परिष्कृत होने पर परिष्कृत होता है, उसी प्रकार इसके अंधे होने पर अंधा, खण्डित होने पर खण्डित और शरीर के नाश हो जाने पर यह नष्ट भी हो जाता है। अतः मुझे इसमें कोई फल दिखाई नहीं देता। प्रजापति ने कहा- 'हे इन्द्र! मैं इसकी पुनः व्याख्या करूँगा।'

2. **जो स्वप्न में विचरण करता है, वह आत्मा है** - प्रजापति ने इन्द्र से कहा- 'जो स्वप्न में पूजित होता हुआ विचरता है, वही आत्मा है, वही अमृत है, और वही अभय है तथा वही ब्रह्म है।'

इन्द्र इस व्याख्या से सन्तुष्ट नहीं हुए एवं देवताओं के पास पहुँचे बिना ही वे पुनः प्रजापति के पास गये और कहा- 'भगवन्! यद्यपि यह शरीर अन्धा होता है तो भी वह (स्वप्न शरीर) अनन्ध रहता है। रुग्ण रहता है तो भी वह निरोग रहता है। इस प्रकार न वह इसके दोष से दूषित होता है, और न इसके वध होने से उसका वध होता है। अतः इसमें मैं कोई फल नहीं देखता।' प्रजापति ने कहा- 'इन्द्र ! यह बात ऐसी ही है, मैं तुम्हें इस आत्म-तत्व की पुनः व्याख्या करूँगा।

3. **प्रगाढ़ निद्रा (सुषुप्ति अवस्था) आत्मा का पूर्ण स्वरूप है** – प्रजापति ने कहा – 'जिस अवस्था में यह सोया हुआ (दर्शन वृत्ति से रहित) और सम्यक् रूप से आनन्दित हो स्वप्न का अनुभव नहीं करता वह आत्मा है।'

किन्तु इन्द्र इस व्याख्या से भी सन्तुष्ट नहीं हुए। देवताओं के पास पहुँचे बिना ही वे पुनः प्रजापति के पास आये और निवेदन किया – 'भगवन् ! उस सुषुप्ति अवस्था में जब आत्मा 'सत्' रूप में वर्तमान रहती है तो उसे अपनी सत्ता का बोध क्यों नहीं होता ? यह बात तो मेरे मन में कुछ बैठ नहीं रही है। कृपया इसे स्पष्ट रूप से पुनः समझाइये। प्रजापति ने कहा – 'इन्द्र ! मैं तुम्हारे लिये इसकी पुनः व्याख्या करुँगा।'

4. **यह आत्मा अविनाशी है** – प्रजापति ने कहा – 'इन्द्र ! यह शरीर मरणशील है। यह अशरीरी आत्मा का अधिष्ठान है। सशरीर आत्मा प्रिय और अप्रिय से ग्रस्त है। सशरीर रहते हुए इसके प्रिय –अप्रिय का नाश नहीं होता और अशरीर होने पर इसे प्रिय और अप्रिय स्पर्श नहीं कर पाते। जिस प्रकार बैल बैलगाड़ी में जुता रहता है, घोड़ा घोड़ागाड़ी में जुता रहता है, उसी प्रकार यह प्राण शरीर में जुता हुआ है। जो ऐसा सोचता है, मैं सूँघूँ, वह आत्मा है, जो यह सोचता है मैं यह शब्द बोलूँ, वही आत्मा है, जो यह जानता है कि मैं श्रवण करुँ, वह भी आत्मा है, जो यह जानता है कि मैं मनन करुँ, वह आत्मा है। अतः ज्ञान ही उस आत्मा का सच्चा स्वरूप है और इन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति के द्वार हैं। वत्स! जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों ही अवस्थाओं में वह आत्मा एक रूप रहता है। जागृत अवस्था में– बाह्य विषय और इन्द्रियों के संयोग से शब्द–स्पर्श आदि की उपलब्धि होती है। स्वप्न अवस्था में वासनाओं से युक्त अन्तःकरण जागता है और उसी के द्वारा स्वप्न में सुख–दुःख आदि की अनुभूति होती है। किन्तु सुषुप्ति अवस्था में पहुँचकर वह अन्तःकरण शान्त होता है। केवल प्राण शक्ति ही जागती रहती है। इस अवस्था में आत्मा का नाश नहीं होता बल्कि अंतःकरण के शान्त हो जाने से किसी विशेष ज्ञान की अनुभूति नहीं होती । इस स्थिति में शरीर और इन्द्रियों समेत अंतःकरण के विलीन हो जाने से सुख–दुःख आदि की अनुभूति भी नहीं होती किन्तु उक्त तीनों दशाओं में अविनाशी आनन्दमय आत्मा एकरूप टिकी रहती है। हे वत्स ! वही आत्मा है, वही अमृत है, वही अभय है और वही ब्रह्म है। जो उस आत्मा को जानकर साक्षात् रूप से अनुभव करता है, वह सम्पूर्ण लोक और समस्त भोगों को प्राप्त कर लेता है।

इन्द्र अब पूर्ण सन्तुष्ट होकर देवताओं के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर देवताओं को सत्य का ज्ञान कराया।

प्राप्त ज्ञान का परिणाम – इस प्रकार इन्द्र और विरोचन ने प्राप्त ज्ञान के आधार पर अपने–अपने समाज का नेतृत्व किया। एक ने शरीर को नश्वर मानकर आत्मा की उपासना की और अपनी सारी प्रजा को अनुशासित व अमर बनाया तथा दूसरे ने अविनाशी आत्मा की उपेक्षा की एवं नश्वर शरीर की उपासना में निरत रहकर स्वयं विनाश को प्राप्त हुए और अपनी सारी प्रजा को असुर अर्थात् स्वार्थी, भोगी व पापकर्म में निरत रहने वाला बनाया।

4. उपकोसल को अग्नियों द्वारा शिक्षा

कमल का पुत्र उपकोसल सत्यकाम जाबाल के यहाँ अध्ययन करता था। बारह वर्ष तक उसने अपने आचार्य एवं अग्नियों की सेवा की। आचार्य ने अन्य सभी ब्रह्मचारियों का समावर्तन संस्कार कर दिया और उन्हें घर भेज दिया किन्तु उपकोसल को घर जाने की आज्ञा नहीं दी।

उपकोसल के मन में दुःख हुआ। गुरुपत्नी को उस पर दया आ गई। उसने अपने पति से कहा –'इस ब्रह्मचारी ने तपस्या की है, ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुए विद्याध्ययन किया है, साथ ही आपकी व अग्नियों की विधिपूर्वक परिचर्या की है। कृपया इसको उपदेश देकर इसका भी समावर्तन कर दीजिये।' सत्यकाम ने बात अनसुनी कर दी और बिना कुछ कहे कहीं अन्यत्र चले गये।

उपकोसल को इससे बहुत क्लेश हुआ। उसने अनशन प्रारम्भ कर दिया। आचार्य पत्नी के पूछने पर उपकोसल ने बताया –'माँ! मुझे बड़ा मानसिक क्लेश है इसलिये भोजन नहीं करूँगा।'

अग्नियों ने सोचा– इस तपस्वी बालक ने मन लगाकर हमारी बड़ी सेवा की है। अतएव उपदेश करके इसके मानसिक क्लेश को दूर करना चाहिये। ऐसा सोचकर उन्होंने उपकोसल को ब्रह्मविद्या का यथोचित उपदेश दिया।

कुछ दिनों बाद आचार्य सत्यकाम यात्रा से लौटे। उपकोसल का मुख–मण्डल ब्रह्मतेज से चमक रहा था। आचार्य ने पूछा–'सौम्य! तेरा मुख ब्रह्मवेत्ता जैसा दिखाई दे रहा है। बता, तुझे किसने ब्रह्म का उपदेश किया?' उपकोसल ने सारा समाचार कह सुनाया। इस पर आचार्य ने कहा– 'यह उपदेश अलौकिक नहीं है (केवल लोकों का उपदेश दिया है)। अब मैं तुझे उस अलौकिक ब्रह्मतत्व का उपदेश करुँगा, जिसे भली प्रकार जान लेने व साक्षात् कर लेने पर प्राणी को पाप–ताप उसी प्रकार स्पर्श नहीं कर पायेंगे, जिस प्रकार कमल के पत्ते को जल स्पर्श नहीं कर पाता।'

इतना कहकर आचार्य ने उपकोसल को ब्रह्मतत्व का रहस्यमय उपदेश किया और समावर्तन संस्कार करके उसे घर जाने की आज्ञा दी।

(स्वामी विवेकानन्द के अनुसार - थोड़ी देर के लिये इन रूपकों को (अग्नि द्वारा शिक्षा) हम हटा दें और केवल केन्द्रीय तत्व की ओर ध्यान दें तो विचार का सूत्र मिलता है कि ये सारी ध्वनियाँ हमारे अन्दर हैं। यह वाणी वास्तव में हमारे हृदय में से उठी है और शिष्य यही समझता है कि वह सत्य के सम्बन्ध में उपदेश सुन रहा है।)

5. याज्ञवल्क्य -मैत्रेयी संवाद

महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थी। एक का नाम मैत्रेयी और दूसरी का नाम कात्यायनी था। दोनों विदुषी और पति की सेवा में सदा तत्पर रहने वाली थीं। यद्यपि दोनों विदुषी थी, पर कात्यायनी को अपने रूप और यौवन की चिन्ता अधिक रहती थी, जबकि मैत्रेयी अधिक विचारवान थी।

एक दिन याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को बुलाकर कहा- 'मैत्रेयी ! मैं गृहस्थ आश्रम से संन्यास आश्रम में जाना चाहता हूँ। इसलिये मैं चाहता हूँ कि घर की सारी सम्पत्ति तुम दोनों में आधी-आधी बाँट दूँ जिससे तुम दोनों में झगड़ा न हो, क्योंकि मुझे लगता है कि कात्यायनी का स्वभाव कुछ आत्मनिष्ठ है।

याज्ञवल्क्य की बातें सुनकर मैत्रेयी सोचने लगी, 'मनुष्य अपने पास की किसी वस्तु को छोड़ने के लिये तभी तैयार होता है, जब उसे पहले की अपेक्षा अधिक अच्छी वस्तु मिलती है। महर्षि यदि संन्यास ले रहे हैं तो निश्चय ही इससे अधिक मूल्यवान वस्तु प्राप्त करने की आशा है। यह सोचकर मैत्रेयी बोली-'महर्षि! क्या आप उसी अमरता को प्राप्त करने के लिये संन्यास ले रहे हैं जिसका आप उपदेश किया करते थे?' याज्ञवल्क्य ने कहा-'हाँ! तुम्हारा अनुमान सही है।'

मैत्रेयी ने कहा- 'तो क्या धन से सम्पन्न सारी पृथिवी मेरी हो जाये तो मैं अमर हो सकती हूँ?' याज्ञवल्क्य ने कहा -'नहीं! धन से अमरत्व की आशा नहीं की जा सकती।'

मैत्रेयी ने कहा -'जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, उन भोगों को ले कर मैं क्या करूँगी? इसके बदले जो कुछ अमरत्व का साधन हो, वह मुझे बतायें।'

याज्ञवल्क्य ने कहा -'धन्य है मैत्रेयी! मैं तेरे सम्मुख उस आत्मा की व्याख्या करूँगा, जिससे तुझे अमरत्व की प्राप्ति होगी।' याज्ञवल्क्य ने कहा - 'मैत्रेयी! बहुत से लोग आत्मा का मतलब शरीर समझते हैं। वे यह मानते हैं कि यह शरीर ही आत्मा है और इसी निश्चय पर वे दिन-रात भोग-विलास में डूबे रहते हैं।

ऐसे लोग परलोक नहीं मानते। अर्थात् वे कहते हैं कि मरने के बाद आत्मा समाप्त हो जाती है। पर बात बिल्कुल दूसरी है। मैत्रेयी! इस संसार में जो कुछ वस्तुएँ हैं, वे सब आत्मा के प्रयोजन के लिये हैं। यह आत्मा ही संसार की समस्त प्रिय वस्तुओं का आधार है। प्रिये! इसके दर्शन, श्रवण, चिन्तन, मनन और साक्षात्कार से सब कुछ जाना जा सकता है। इसलिये कहा गया है '**आत्मार्थे पृथ्वींत्यजेत**' अर्थात् अपने उद्धार के लिये पृथ्वी भी छोड़नी पड़े तो छोड़ दें। यही सबसे श्रेष्ठ ज्ञान है।'

मैत्रेयी बोली –'देव! आज तक मैंने जल को ही संसार में सबका आधार माना था, और संसार की समस्त प्रिय वस्तुओं का आधार ब्रह्म में मानती थी तो क्या मेरी वह मान्यता गलत थी?'

याज्ञवल्क्य ने कहा –'मैत्रेयी! तुम्हारी मान्यता गलत नहीं थी। पर आत्मा को छोड़कर बाहरी संसार में जो ब्रह्म को ढूँढने का उपक्रम करता है, वह ब्रह्म से दूर हो जाता है। यह आत्मा स्वयं ब्रह्म है। ब्रह्म जगत्स्वरूप है। अर्थात् जगत् की समस्त वस्तुएँ ब्रह्ममय हैं। इसलिये आत्मा में ही ब्रह्म को ढूँढना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि तथा ये लोक, देवगण, भूतगण, ये सब जो कुछ भी हैं, सब आत्मा ही हैं। मैत्रेयी! इसी प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र ये सब इस परमात्मा के निःश्वास हैं।

मैत्रेयी ने कहा– 'महर्षे! क्या उस आत्मा में इन जीव आदि की पृथक सत्ता का कोई पता लग सकता है?' याज्ञवल्क्य बोले – 'मैत्रेयी! जैसे नमक का एक टुकड़ा पानी में पड़कर उसी में मिल जाता है और उसको पानी से अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार इस आत्मा में सब जीव आदि मिल जाते हैं। उसके बाद उनका कोई पृथक चिह्न नहीं रहता। यह आत्मा अनन्त, अपार और विज्ञानमय है। सभी जीव आदि इसी में समाविष्ट हो जाते हैं।

मैत्रेयी ने कहा –'शरीरपात् के अनन्तर कोई संज्ञा नहीं रहती– ऐसा कहकर आपने मुझे मोह में डाल दिया है। भगवन्! आप जो यह कह रहे हैं कि सभी जीवादि अपनी आत्मा में मिलने के बाद अपनी पृथक सत्ता नहीं रखते– कृपया मुझे स्पष्ट करके बताइये।'

याज्ञवल्क्य ने कहा –'मैत्रेयी! जब तक मन में इस आत्मा के साथ एकता का भाव नहीं जगता, तब तक प्राणी अपने से भिन्न एक दूसरे को देखता है, एक दूसरे से बोलता है, एक दूसरे को सुनता है व एक दूसरे को जानता है। किन्तु जहाँ सब में आत्मा का ज्ञान हो जाता है, एकत्व की धारणा हो जाती है, तब संसार की

समस्त वस्तुएँ आत्मा ही हैं, ऐसा प्रतीत होने लगता है। यह आत्मा अवर्णनीय है। इसका वर्णन **'नेति-नेति'** (यह नहीं, ऐसा नहीं) कहकर किया गया है। यह अशीर्य है अर्थात् यह कभी शीर्ण (पुराना) नहीं होता, यह असंग है, अर्थात् यह कभी आसक्त नहीं होता, यह बन्धन रहित है अर्थात् यह कभी दु:खी नहीं होता।'

'मैत्रेयी ! तुम्हारे लिये यही मेरा उपदेश है और यही सच्ची मुक्ति को प्राप्त करने का महान् साधन है।'

मैत्रेयी महर्षि याज्ञवल्क्य के उपदेश को सुनकर धन्य हो गई। संसार की व्याधियों का भय उनसे सदा के लिये दूर हो गया।

मैत्रेयी ने कहा -' पूज्य ! मेरी चाह है कि मुझे भी संन्यासिनी बनाकर आपकी सेवा का अवसर दें। अब मुझे जगत् की कामनाओं से माला गूँथने की आकांक्षा नहीं है। मैं भी वहीं रहूँगी, जहाँ आपके सुखद साहचर्य का क्षण मिलेगा।'

6. महात्मा रैक्व और दानवीर राजा जानश्रुति

प्राचीन काल में जानश्रुति नामक राजा था। वह दयालु व दानवीर था। सवेरे से दोपहर तक याचकों को दान किया करता था। उसके राज्य में सैकड़ों सदाव्रत चलते थे, जहाँ गरीब लोग आकर भोजन करते थे। उसके राज्य में पाठशालायें थी। चिकित्सा का प्रबन्ध प्रत्येक गाँव में होता था। उसके राज्य में न कोई गरीब था, न कोई दु:खी था। सब कुछ होने पर भी राजा जानश्रुति को तनिक भी गर्व नहीं था। राजा के समान ही विनयशील, सदाचारी और धर्मात्मा उसके पुत्र थे। रानी तो साक्षात् लक्ष्मी थी। उसे अपने भाग्य पर तनिक भी अहंकार नहीं था।

एक दिन संध्या के समय राजा अपने महल की छत पर बैठे पुस्तक पढ़ रहे थे। पढ़ते-पढ़ते पुस्तक बन्द करके सिर ऊपर की ओर कर कुछ सोचने लगे। इसी बीच आकाश में उड़ते हुए हंस की मानव बोली सुनाई दी। एक छोटी कतार में उड़ने वाले हंसों में सबसे पिछला हंस अगले को सम्बोधित करके कह रहा था - 'भाई भल्लाक्ष ! नीचे देख रहे हो, राजा जानश्रुति का तेज हमारी आँखों को चकाचौंध कर रहा हैं, मानो सूर्य नारायण ही उगे हुए हैं। अपने जीवन में किसी मनुष्य का तेज मैंने इस तरह नहीं देखा।'

अगले हंस भल्लाक्ष ने कहा -'भाई ! क्यों न हो ! राजा जानश्रुति के समान दानी, परोपकारी तथा दयालु राजा इस पृथ्वी पर दूसरा कौन है? किन्तु मुझे लग रहा है कि तुमने उस गाड़ी खींचने वाले महात्मा रैक्व को अभी तक नहीं देखा है। जहाँ तक तेज की बात है, राजा उस महात्मा से अभी पीछे है। मुझे तो उसका तेज सूर्यनारायण से भी अधिक जान पड़ता है।'

भल्लाक्ष ने आगे कहा 'भाई ! राजा जानश्रुति की तरह उसका कोई राज्य नहीं है, दान यज्ञ का साधन उसके पास नहीं। पर कुछ ऐसी चीज उसके पास है, जो राजा जानश्रुति के पास नहीं है। वे इतने त्यागी व ज्ञानी महात्मा हैं, कि सारा त्रैलोक्य ही उनका है। वे इतने वीतराग और निर्लिप्त हैं कि सारे मानव समाज के उपकारी पुण्य कर्मो का श्रेय अकेले उन्हीं को मिल जाता है। प्रजा के समस्त शुभ कर्मों का फल उन्हें इसलिये मिलता है कि उनका निजी जीवन अपने लिये नहीं है, समाज के हित के लिये है। ऐसी दशा में समाज के शुभ कर्मो का फल उन्हें क्यों न मिले। राजा जानश्रुति की पहुँच अभी तक उतनी नहीं है।'

हंसों की कतार तो चली गई किन्तु राजा जानश्रुति के कानों में पड़कर हंसों की आवाज हृदय में खलबली मचाने लगी। वह यह जानने के लिये उत्सुक हो गया कि यह महात्मा रैक्व कौन हैं? क्या वे इतने महान हैं कि मेरे द्वारा किये गये पुण्य कर्मो का श्रेय भी महात्मा रैक्व को मिलता है। उनका दर्शन करना चाहिये।

दूसरे दिन प्रातः काल राजा ने अपने सारथी को बुलाया और उससे कहा–'सारथी ! तुम रथ लेकर जाओ और महात्मा रैक्व का पता लगाकर मुझे बताओ। यदि वे रथ पर आने को राजी हों तो साथ ही लाना, मगर ध्यान रखना, यदि वे नहीं आना चाहें तो हठ मत करना।'

राजा की आज्ञा पाकर सारथी रथ को लेकर देश भर में घूमने लगा। नगर–नगर घूम कर उसने देश भर की सड़कों, उपनगरों, गली–कूचों में छान–बीन की। मन्दिरों, घरों व झोंपड़ी तक में जानकारी हासिल की। पर किसी ने भी गाड़ी वाले रैक्व का पता नहीं बताया। राजधानी लौटकर राजा के सामने हाथ जोड़कर सारथी ने कहा–'महाराज! मुझे तो सारी पृथ्वी तल पर महात्मा रैक्व का पता नहीं लगा। मैंने देश भर के नगरों, गाँवों, मन्दिरों और झोंपड़ों तक को छान डाला, पर किसी ने भी उसका नाम नहीं बताया।'

राजा ने कहा –'रैक्व के समान वीतराग और निःस्पृह महात्मा ऐसी जगहों पर क्यों रहने लगे जहाँ भीड़–भाड़ रहती है। वे तो कहीं एकान्त में होंगे। पर्वतों, गुफाओं या नदी के तट पर उनका निवास हो सकता है'। राजा का आदेश पाकर सारथी पुनः ढूँढने निकला। संयोग की बात ! इस बार जैसे ही वह जंगल मार्ग से जा रहा था कि बीच में खड़ी एक गाड़ी दिखाई दी। गाड़ी के समीप पहुँचकर सारथी ने देखा कि उसके नीचे एक परम तेजस्वी महात्मा बैठे हुए हैं। उनके शरीर पर न तो ठीक से वस्त्र हैं, और न कोई सजावट। दाढ़ी के बाल बेतरतीब बढ़े हुए हैं। सिर पर भूरे बालों की जटा है। सारथी को निश्चय हो गया कि गाड़ी वाले महात्मा रैक्व

यही हैं। उसने विनीत स्वर में कहा–'महाराज ! क्या गाड़ी वाले महात्मा रैक्व आप ही हैं।' रैक्व ने कहा– 'हाँ ! रैक्व मेरा ही नाम है।'

रैक्व के तेज को देखकर सारथी की हिम्मत ही नहीं हुई कि बात को आगे बढ़ाये। वह राजधानी लौट आया और राजा को सारी बात बताई। महात्मा रैक्व के मिलने का समाचार सुनकर राजा जानश्रुति को प्रसन्नता हुई। शुभ मुहूर्त देखकर अपने साथ छः सौ गौएं, एक अमूल्य सोने का हार, एक सुन्दर रथ जिसमें बलवान घोड़े जुते हुए थे, लेकर महात्मा रैक्व के पास पहुँचे। राजा ने कहा – 'महात्मन्! मैं राजा जनश्रुति का पौत्र जानश्रुति हूँ। मेरी इस भेंट को कृपा कर स्वीकार करें और आप जिस देवता की उपासना करते हैं, उसका उपदेश मुझे दीजिये। मैं आपका छोटा सा दास हूँ।'

राजा की ओर उपेक्षापूर्ण नेत्रों से देखते हुए महात्मा रैक्व ने गम्भीर स्वर में कहा–'शूद्र! ये गौएं, यह रथ, और यह हार तू अपने पास रख। मुझे इसकी जरुरत नहीं है। मेरे लिये यह टूटी–फूटी गाड़ी बहुत है।'

रैक्व की बात सुनकर राजा जानश्रुति ने सोचा कि कदाचित् दक्षिणा में कमी रह गई है, इसलिये मुझे शूद्र कहा अथवा हंसों की बात सुनकर मैं उनसे ईर्ष्या करने लगा हूँ, इसलिये शूद्र कहा, जो भी हो। उन्हें प्रसन्न करके सच्चे ज्ञान की प्राप्ति करना ही अब मेरा परम धर्म है। मुझे इस महात्मा की कृपा अवश्य मिलनी चाहिये।

राजा जानश्रुति पुनः महात्मा रैक्व के आश्रम में पहुँचा। इस बार साथ में एक हजार सवत्सा गौएँ, सोने का दूसरा अमूल्य हार, दूसरा सुन्दर रथ तथा अपनी इकलौती कन्या लेकर महात्मा रैक्व की सेवा में उपस्थित हुआ और निवेदन करते हुए बोला –'भगवन्! यह सब सामग्री भेंट करने के लिये लाया हूँ। जहाँ पर आप बैठे हैं, यह प्रदेश और आस पास के बीस गाँव आपको अर्पित करता हूँ। आप मेरी तुच्छ भेंट को स्वीकार कीजिये और मुझे उस देव की उपासना का तत्व बताइये, जिसकी आराधना में आप लगे हैं। जिन वस्तुओं को मैं सबसे कीमती व प्रिय मानता हूँ, उन्हीं से आपकी सेवा कर रहा हूँ।

रैक्व ने रूखे स्वर में कहा–'शूद्र! तू खाली हाथों से नहीं, खाली हृदय और पाप भरे मन से उपदेश ग्रहण करने आया है। तू मेरे ज्ञान का मूल्य आँकने चला है? जिस वस्तु को मैं एक बार ठुकरा चुका, उसे देकर तू मेरे उपदेश को खरीदना चाहता है? जिस ज्ञान को तू प्राप्त करना चाहता है, जो संसार के साम्राज्य से भी लाखों गुणा कीमती है। तेरी यह मृतक गायें, टूटने वाला रथ, नष्ट होने वाला हार

और मरणधर्मा कन्या उसकी एक मात्रा की भी कीमत नहीं चुका सकते। इन विनाश होने वाली वस्तुओं के बदले ब्रह्म के शाश्वत ज्ञान का उपदेश तुझे किस प्रकार मिल सकता है? तू तो पूरा पशु निकला। तेरी जगह यदि कोई दूसरा राजा होता तो मैं उसे शाप देकर भस्म कर देता। पर मुझे मालूम है कि तू हृदय से पापी नहीं है।'

महात्मा रैक्व की बातें सुनकर राजा जानश्रुति विचलित हो गया। महात्मा के चरणों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ाते हुए बोला–'भगवन्! मुझे क्षमा कीजिये और जिस उपाय से मेरा शोक दूर हो, मेरी अविद्या का परदा सदा के लिये नष्ट हो, वह उपाय कीजिये।'

राजा की विनीत और करुणा भरी वाणी को सुनकर महात्मा रैक्व के हृदय में दया का अंकुर फूट पड़ा। रैक्व ने कहा– 'जब तक तू अपने 'अहं' को अर्पण नहीं कर देता, तब तक तेरा अज्ञान नहीं मिट सकता।' पराई वस्तुओं पर अपना अधिकार समझ कर जब तक दान का पाखण्ड तू करता रहेगा, तब तक तुम्हारे हृदय में ज्ञान का अंकुर नहीं फूट सकेगा। उस काले हृदय में भगवान् का निवास नहीं हो सकता। राजन्! जो लोग अपने आपको बचाकर केवल अपने अधिकारों का समर्पण करते हैं, वे भगवान् को पाने का स्वप्न बेकार ही देखते हैं।'

राजा ने हाथ जोड़कर कहा – 'भगवन्! मैं कितने अज्ञान में था। मेरे जीवन के कितने अमूल्य दिन बेकार बीत गये। मैं आज से आपका शिष्यत्व अंगीकार कर रहा हूँ।' महात्मा रैक्व ने जानश्रुति को ब्रह्मज्ञान का सच्चा अधिकारी समझ कर विधिवत् उपदेश दिया।

7. आपद् धर्म

हस्तिनापुर से पंजाब के पूर्वी भाग का नाम प्राचीनकाल में कुरुप्रदेश था। यहां पर बहुधा पानी कम बरसता था। संयोग की बात कि एक बार उसी कुरुप्रदेश में भीषण वृष्टि हुई। लाखों जानें चली गईं, हजारों मकान बह गये। सारा देश अकालग्रस्त हो गया। लोग अन्न के लिये तरसने लगे।

उसी कुरुप्रदेश में सरस्वती नदी के तट पर एक विद्वान ब्राह्मण 'चक' का निवास था। वे अपने समय के बड़े विद्वान माने जाते थे। दूर–दूर से विद्यार्थी उनके पास अध्ययन करने आते थे। 'चक' की मृत्यु के बाद उसके पुत्र 'उषस्तिकी' गुरुकुल का काम देखते थे। वह भी चक की तरह विद्वान थे। भीषण बाढ़ के कारण आश्रम का कोई पता नहीं रहा तो उषस्तिकी भी अपनी नव पत्नी 'आटिकी' के साथ आहार की चिन्ता में बाहर निकले। उषस्तिकी के साथ पैदल चलते–चलते

आटिकी के पाँवों में छाले पड़ गये और सारा शरीर थकान से चूर-चूर हो गया। संयोग की बात, पूर्व देश के पाँच-छः पथिक जिनके पास कुछ अन्न था, उसी मार्ग से कहीं जा रहे थे। एक दयालु पथिक ने आटिकी के लिये बचा - खुचा अन्न दे दिया। उसे खाकर आटिकी को कुछ समय के लिये जीवनदान मिला।

आटिकी उठ बैठी ओर पति के साथ चलने लगी। कई दिनों से उषस्तिकी को भोजन नहीं मिला था। संध्या होते ही उसके साहस ने भी जवाब दे दिया। उसके भी पैर लड़खड़ाने लगे। गला सूख गया और चलने की ताकत नहीं रही। किसी तरह चलते-चलते रात्रि को वे एक गाँव में पहुँचे। अकाल का प्रभाव इस गाँव में भी था। गाँव में महावतों की बस्ती थी, जो बहुत ही गरीबी में दिन काट रहे थे। पति-पत्नी दोनों रात को एक महावत के घर पहुँचे।

महावत तीन-चार दिनों के बाद माँगकर थोड़ा उड़द ले आया था और उसी को पकाकर खा रहा था। रात्रि में आगन्तुकों को देखकर महावत ने खाना बन्द कर दिया। वह सोच रहा था कि आज मेरे आतिथ्य धर्म का पालन किस प्रकार से होगा? उषस्तिकी ने समीप जाकर कहा, 'भाई ! मैं कई दिनों से भूखा हूँ, कुछ खाना मुझे भी दो। मुझमें अधिक बोलने की हिम्मत नहीं है।' महावत उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला- 'महाराज! आज बहुत कठिनाई से यह उड़द मिला था, उसी को पकाकर खा रहा हूँ। आधे से अधिक खा भी चुका हूँ। मेरे घर में अन्न का एक दाना भी नहीं है तो ऐसी दशा में मैं क्या करुँ? मेरी असमर्थता पर दया करें।'

उषस्तिकी के प्राण होठों पर थे। वह झट से बोल पड़ा - 'सौम्य ! मेरी अब ऐसी दशा नहीं है कि कुछ देर के लिये भी धैर्य धारण कर सकूँ। तुम अपना झूठा उड़द ही दे दो। उसमें तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा, बल्कि एक जीवनदान करने का पुण्य मिलेगा।' महावत ने अपनी थाली व जल उषस्तिकी के सामने रख दिया। उन्होंने थाली के उड़द में से थोड़ा सा अगली बार के लिये छोड़कर शेष उड़द खा लिया। आटिकी पहले ही थोड़ा अन्न ले चुकी थी, अतः कुछ दिनों तक काम चल सकता था।

उड़द खा चुकने के बाद उषस्तिकी ने जल मांगा। महावत ने कहा - 'महाराज! पास में लोटे में जल भी है।' इस पर उषस्तिकी ने कहा, 'भाई! मैं तुम्हारा झूठा जल नहीं पी सकता। ऐसा करने से मुझे पाप लगेगा और तुम्हारा भी धर्म नष्ट हो जायेगा।' महावत विनीत स्वर में बोला, 'महाराज! आपने मेरे झूठे उड़द तो खा लिये, पर पानी पीने से परहेज क्यों?'

उषस्तिकी ने कहा, ‘भाई, यदि मैं तुम्हारे झूठे उड़द को न खाता तो थोड़ी ही देर में मेरे प्राण चले जाते। किन्तु जल का तो कहीं अभाव नहीं है। यदि उड़द की तरह तुम्हारे जल को भी मैं पी लूं तो वह स्वेच्छाचार होगा, आपद्–धर्म नहीं। आपद्–धर्म उस को कहते हैं, जो प्राणों के बचने का कोई दूसरा उपाय न रहने पर किया जाता है। उस दशा में अगर धर्म की मर्यादा कुछ टूट भी जाती है तो दोष नहीं लगता।’ उषस्तिकी ने महावत को धन्यवाद दिया और वहीं रात्रि विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातः दोनों पति–पत्नी ने आगे की राह ली।

yhykorh dk i`'u

‘पिताजी, यह पृथ्वी जिस पर हम निवास करते हैं, किस पर टिकी हुई है?’ लीलावती ने शताब्दियों पूर्व यह प्रश्न अपने पिता भास्कराचार्य से पूछा था। इसके उत्तर में भास्कराचार्य ने कहा– ‘लीलावती! कुछ लोग जो यह कह रहे हैं कि यह पृथ्वी शेषनाग पर, कछुआ या हाथी या अन्य किसी वस्तु पर टिकी हुई हैं, तो प्रश्न बना रहता है कि फिर वे वस्तुएँ किस पर टिकी हुई हैं ?’ भास्कराचार्य ने पुनः कहा – ‘बेटी! क्या हम यह नहीं मान सकते कि पृथ्वी किसी वस्तु पर आधारित नहीं है। .... यदि हम कहें कि पृथ्वी अपने ही बल से टिकी है तो क्या दोष है ?’ ‘यह कैसे सम्भव है पिताजी ?’ लीलावती ने पुनः प्रश्न किया। तब भास्कराचार्य ने सिद्धान्त की बात कही – ‘पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति से भारी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है और आकर्षण के कारण वे जमीन पर गिरते हैं। पर आकाश में यदि समान ताकत चारों ओर से लगे तो कोई कैसे गिरे? अर्थात् आकाश में ग्रह निरावलम्ब रहते हैं क्योंकि विविध ग्रहों की गुरुत्वशक्तियाँ सन्तुलन बनाये रखती हैं।’

–सिद्धान्त शिरोमणी गोलाध्याय

(vktdy ;g dgk tkrk g S fd U;Vu us x#Rokd"k.k dh [kkst dh] fdUrq mlds 550 o"kZ iwoZ HkkLdjkpk;Z us ;g ?kks"k.kk dj nh FkhA½

8. वैश्वानर की खोज

हमारे देश में अनेक बड़े–बड़े गुरुकुल तथा उनके कुलपति थे। कुलपति उन्हें कहते थे, जो हजारों विद्यार्थियों के भोजन, वस्त्र का प्रबन्ध किया करते थे। उन्हें पढ़ा–लिखा कर पण्डित बना देते थे। उनसे किसी प्रकार का शुल्क भी नहीं

लिया जाता था। बड़े-बड़े राजा-महाराजा, श्रीमन्तगण उन कुलपतियों की वित्तीय सहायता किया करते थे। गृहस्थों के घरों से उन विद्यार्थियों को केवल भोजन मिलता था। एक-एक कुलपति के पास दस-दस हजार तक विद्यार्थी रहते थे।

ऐसे ही पांच कुलपति जिनके नाम क्रमशः उपमन्यु के पुत्र प्राचीनशाल, पुलुव के पुत्र पौलुषि, भल्लव के पुत्र भाल्लवि, शंकराक्ष के पुत्र शंकिराक्ष्य और अश्वतराश्व के पुत्र बुडिल थे, सभी बहुत पण्डित थे।

एक बार पांचों कुलपति एक स्थान पर इकट्ठे हुए और शास्त्रों की चर्चा चल ही रही थी कि एक वृद्ध गृहस्थ उनकी सभा में आया और हाथ जोड़कर बोला- 'पण्डितों! मेरे मन में आत्मा क्या है और ब्रह्म क्या है, इस विषय को लेकर बहुत सन्देह है। शास्त्रों में बहुत कुछ लिखा गया है, किन्तु उससे वास्तविक संतोष नहीं मिला। अतः आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी इस शंका का निराकरण करें।'

इस पर उपमन्यु के पुत्र प्राचीनशाल ने कहा , 'भद्र! ब्रह्म और आत्मा संसार के कण-कण में हैं। इसे अच्छी तरह से समझने की जरूरत है। अच्छा होगा कि आप किसी अन्य दिवस आयें। इस समय हम किसी दूसरे विषय पर चर्चा कर रहे हैं।

वृद्ध गृहस्थ तो चला गया, किन्तु 'आत्मा क्या है? ब्रह्म क्या है?' वे इस प्रश्न का समाधान नहीं पा सके। बहुत विचार-मंथन के उपरान्त भी जब वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे तो सबने मिलकर यह तय किया कि किसी ऐसे विद्वान के पास जाकर इसका समाधान कराया जाये, जो स्वयं ब्रह्मवेत्ता हो। यह निर्णय किया कि मुनिवर अरुण के पुत्र उद्दालक के पास जाकर अपनी शंकाओं का समाधान करना चाहिये। अतः दूसरे दिन ये पांचों उद्दालक के आश्रम की ओर रवाना हुए।

आश्रम में पहुँचने पर पाँचों ने अपने आने का प्रयोजन महर्षि उद्दालक को बताया। उद्दालक ने बिना संकोच किये अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहा- 'ब्रह्म और आत्मा के विषय में आपकी शंकाओं का निराकरण करना मेरे वश की बात नहीं है। मैं भी उतना ही बताऊंगा, जितना आप जानते हैं। मेरी जानकरी में कैकय देश के राजा अश्वपति ही आपकी शंकाओं का समुचित समाधान कर सकते हैं। हम सभी को उनके पास चलना चाहिये।'

दूसरे दिन पांचों कुलपति उद्दालक के साथ कैकय देश की ओर रवाना हो गये। रास्ते में दुर्गम पहाड़ों, नदियों और जंगलों को पार कर कैकय देश की राजधानी पहुँचे। राजा अश्वपति को जब उनके आने का समाचार मिला तो वे अपने सभासदों के साथ अगवानी करने पहुँचे। उनका स्वागत सत्कार करने के

बाद राजा ने कुलपतियों से कहा, 'पूज्य ब्राह्मणों! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। नि:संकोच आदेश दीजिये। मेरा सर्वस्व आपका है।'

मुनियों ने उत्तर दिया–'राजन्! हम लोग धन की इच्छा से आपके पास नहीं आये हैं। हमें तो उस आत्म स्वरूप वैश्वानर का ज्ञान प्रदान करें, जिसका आपने गहराई से अध्ययन किया है। हम **शिष्य -भाव** से आपके पास आये हैं।' राजा अश्वपति ने कुलपतियों को ब्रह्मज्ञान दिया तथा आत्मा और ब्रह्म के सम्बन्ध में समस्त शंकाओं का समाधान किया।

अश्वपति का वैश्वानर आत्मा के सम्बन्ध में उपदेश – अश्वपति ने कहा– 'इस वैश्वानर आत्मा का मस्तक द्युलोक है। चक्षु विश्वरूप (सूर्य) है, प्राण वायु है, देह का मध्य भाग आकाश है, निम्न भाग जल है, पृथ्वी ही दोनों चरण हैं, वक्ष स्थल वेदी है, कुशा उसकी रोमावली है, गार्हपत्य अग्नि उसका हृदय है, भोजन पचाने वाली जठराग्नि उसका मन है, और आह्वनीय अग्नि उसका मुख है। उस आह्वनीय अग्नि में जो कुछ भी पदार्थ पहले डाला जाता है, वही प्रथम आहुति है। उससे प्राण तृप्त होते हैं। दूसरी आहुति से कर्मेन्द्रियों की तृप्ति होती है। तीसरी आहुति से वाणी तृप्त होती हैं। चौथी आहुति से मन तृप्त होता है और पांचवी आहुति से वायु की तृप्ति होती है।

वायु के तृप्त होने से आकाश तृप्त होता है। आकाश के तृप्त होने से उन सब जीव समूहों की तृप्ति होती है, जो वायु और आकाश पर निर्भर हैं। इन सब की तृप्ति होने से यज्ञकर्ता की वास्तविक तृप्ति होती है और उसे विपुल सन्तति, सम्पत्ति, समृद्धि, तेज और ब्रह्मबल की प्राप्ति होती है।

लौटते समय उन सबके मन में प्रसन्नता और संतोष था। **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** (यह समस्त चराचर जगत् ब्रह्ममय है) की भावना को आत्मसात् कर तथा ब्रह्मज्ञानी होकर वे अपने-अपने आश्रम में लौटे।

R;kx dk lq[k

r`.k cgefon% LoxZLr`.k 'kjL; thforeo~ A

ftrk{kL; r`.kk ukjh fuLi`gL; r`.k txr~ A

¼pk.kD; 5@14½

ब्रह्मयोगी के लिये स्वर्ग, शूरवीर के लिये जीवन, इन्द्रियनिग्रही के लिए इन्द्रिय सुख और निर्लोभी के लिये यह संसार तिनके के समान है।

आर्ष साहित्य में जीवन दर्शन

1. परोपकार के लिये दानशील बनें
2. अतिथि सत्कार
3. समाज सेवा ही ईश्वर की सेवा है
4. स्वाध्याय का महत्व
5. सदाचार की शिक्षा
6. मित्रता
7. जीवन की पवित्रता
8. वेदों में गोमाता की महिमा
9. वेदों में पर्यावरण रक्षा
10. वेदों में राष्ट्रीयता की भावना
11. चरैवेति चरैवेति (निरन्तर चलते रहो...)
12. गुरुभक्ति से सारे देवता प्रसन्न होते हैं
13. धन सम्पत्ति की तीन कोटियाँ

वैदिक ऋषियों ने गहन चिन्तन– मनन के बाद निष्कर्ष निकाला– ''स्वयं श्रेष्ठ मनुष्य बनो और अपनी संतान को दिव्य गुणों से परिपूर्ण करो।''

''मानव शरीर बार–बार नहीं मिलता'' (न शरीरं पुनः पुनः) इसलिये मानव की सफलता के लिये हमारे ऋषि मुनियों ने जीवन के चार स्तम्भ चार पुरुषार्थ क्रमशः धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष निर्धारित किये ताकि मनुष्य पहले धर्म आधारित कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का ज्ञान प्राप्त करे, अपने सद्‌गुणों से ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों का विकास करे, फिर धर्मानुकूल अर्थोपार्जन करता हुआ पारिवारिक व सामाजिक दायित्वों का पालन करे और अन्त में मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करे। वेदों में मानव मात्र के उच्चतम आदर्श का जितना वर्णन किया गया है, संसार के अन्य किसी ग्रन्थ में देखने को नहीं मिलेगा। वेद मनुष्य मात्र के कर्तव्य का निश्चय करते हैं तथा उसे सत्कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। मनुष्य को क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये आदि से सम्बन्धित विषयों का मार्गदर्शन वेद करते हैं। यथा – परोपकार, अतिथि सत्कार, सदाचार, राष्ट्रधर्म, दयाधर्म आदि अनेक ऐसे प्रसंग हैं जो मानव–मात्र को सद्‌मार्ग पर ले जाने की प्रेरणा देते हैं। कृष्ण–सुदामा की मित्रता, राम–शबरी का प्रेम, श्रवणकुमार की मातृ–पितृ भक्ति और दधीचि का देहदान जैसे अनेक प्रेरक प्रसंग हैं जो हिन्दू जीवन दर्शन के जीवन्त उदाहरण हैं। इस प्रकरण में वैदिक जीवन दर्शन से सम्बन्धित विषयों की विवेचना की गयी है। मनुष्य यदि वैदिक मार्ग पर चले तो विश्व में सुख, शान्ति व समृद्धि स्वतः ही स्थापित हो जाये।

(1) परोपकार के लिये दानशील बनें

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 117 वें सूक्त को 'धनदान सूक्त' कहते हैं। इसमें परोपकार व दान की महिमा का वर्णन है। सूक्त में बताया गया है कि धन की सार्थकता कृपणता में नहीं, वरन् दानशीलता में है। यथा – 'जो अन्न देकर भूख की ज्वाला शान्त करे, वही दाता है। भूखे को न देकर जो स्वयं भोजन करता है, मृत्यु उसके प्राणों को हर लेती है। देने वाले का धन कभी नहीं घटता तथा न देने वाले कृपण को किसी से कोई सुख प्राप्त नहीं होता। घर आकर माँग रहे याचक को जो भोजन देता है, उसे यज्ञ का पूर्ण फल प्राप्त होता है तथा वह अपने शत्रुओं को मित्र बना लेता है। अतः वैभव का मिथ्या अभिमान न करके दान करना चाहिये।' (धनदान सूक्त ऋक्. 10/117)

स्कन्द पुराण के अनुसार न्यायपूर्वक पैदा किये हुए धन का दशम् अंश बुद्धिमान मनुष्य को दान कार्य व ईश्वर को प्रिय कार्यों के लिये लगाना चाहिये। यथा –

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च।।

अन्यायपूर्वक प्राप्त धन का दान करने से कुछ भी पुण्य लाभ नहीं होता। इस बात को समझाने के लिये श्लोक में 'न्याय' शब्द जोड़ा गया है। दाता को दान का अभिमान एवं लेने वाले पर एहसान का भाव उत्पन्न न हो, इसलिये श्लोक में 'कर्त्तव्य' पद का प्रयोग किया गया है। किन्तु दान करने का लक्ष्य मात्र ईश्वर की प्रसन्नता है, यह बताने के लिये श्लोक में 'ईश्वरप्रीत्यर्थमेव' पद जोड़ा गया है।

दशम् अंश का दान करने का यह विधान जनसाधारण के लिये है। अधिक धनी व्यक्तियों के लिये तो भागवतपुराण में अपनी आय को पांच भागों में विभक्त करके उपयोग करने को कहा गया है –

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पंचधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते।। (श्रीमद्भा. 8/19/37)

अर्थात् (1) धर्म (2) यश (दान) (3) अर्थ (व्यापार आदि आजीविका के लिये) (4) काम (आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए) (5) स्वजन (परिवार) इस प्रकार पाँच प्रकार से धन का विभाग करने वाला हमेशा आनन्द में रहता है।

मनुष्य समाज से ही धन कमाता है। अतः मनुष्य का कर्त्तव्य बनता है कि समाज से जो धन प्राप्त करे, उसका कुछ अंश समाज को वापस लौटाये। अथर्ववेद का निम्न मंत्र हमें यह सन्देश देता है –

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।

कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह।। (अथर्व. 3/24/5)

'हे मनुष्य ! तुम सौ हाथों वाले होकर धन संग्रह करो, हजारों हाथों वाले होकर उस धन को समाज में बाँट दो।' अर्थात् मनुष्य जो धन कमाये, उसका अकेले ही स्वामी न हो जाये बल्कि उसे ऐसे कार्यों में लगाये जिससे हजारों परिवारों का कल्याण हो। यह वैदिक अर्थव्यवस्था का मूल है।

न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः।

इदं यद् विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति।। (ऋक्. 4/107/08)

उदार दानी न मरते हैं, न निकृष्ट गति को प्राप्त होते हैं, न नष्ट होते हैं और न कष्ट पाते हैं। यह सारा संसार और स्वर्गलोक इन्हें ऐश्वर्य देते हैं।

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।

दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः।। (ऋक्. 1/125/06)

दान देने वाले को ऐश्वर्य प्राप्त होता है, दान देने वाले अमरत्व को प्राप्त होते हैं। दानदाताओं की आयु बढ़ती है। दानदाताओं को इस लोक में तथा परलोक में सब सुख प्राप्त होते हैं।

अथर्ववेद (20/27/04) में लिखा है कि 'यदि तेरी वृत्ति जगत् के हितार्थ दान करने की है तो तेरे ऐश्वर्य को बढ़ने से रोकने का सामर्थ्य देव भी नहीं रखते, सामान्य मानव तो क्या बाधा बनेंगे?

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्रदेवो न मर्त्यः। यद्दित्सासि स्तुतो मघम्।।

गीता (8/5) के अनुसार 'यज्ञ, दान और तप सम्बन्धी कार्य कभी नहीं छोड़ने चाहिये, क्योंकि ये तीनों ही कर्म मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं।'

पंचतन्त्र (2/157) के अनुसार धन सम्पत्ति की तीन गतियाँ होती हैं – (1) दान (2) भोग (3) नाश। जो न तो दान देता है और न ही स्वयं भोगता है, उसका धन नष्ट हो जाता है। इसलिये मनु कहते हैं – 'सुपात्र को देखकर, निःस्वार्थ भाव से, शक्ति के अनुसार समाज-कल्याण एवं धार्मिक कार्यों के लिये सदैव दान देना चाहिए'। (मनु० 4/227)

(2) अतिथि सत्कार

अतिथि सेवा भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। अतिथि को देवता का स्थान दिया गया है। यही कारण था कि याचक कभी घर से खाली हाथ नहीं लौटता था। दाता केवल देता ही नहीं था बल्कि ससम्मान व आदरपूर्वक देता था। आर्ष साहित्य में अतिथि सत्कार का बड़ा महत्व बताया गया है। अथर्ववेद (15/11/1-2)

के अनुसार घर में विद्वान और व्रतनिष्ठ अतिथि आये तो गृहस्थ को चाहिये कि वह उसका स्वागत करे और इस प्रकार कहे, 'हे व्रतनिष्ठ! आप कहाँ से आ रहे हैं? यह जल लीजिये। हे व्रतनिष्ठ ! मुझे आज्ञा कीजिये। जैसी आपकी आज्ञा होगी, वैसा ही किया जायेगा।'

अथर्ववेद 9(6(1)/3 में बताया गया है कि अतिथियों की सेवा करने वाला जो गृहस्थ अतिथियों के दर्शन कर लेता है, वह मानो यज्ञशाला अथवा शरीरधारी दिव्य गुणों का दर्शन करता है – **यद्वा अतिथि पतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देव यजनं प्रेक्षते।**

अथर्ववेद के ही एक मंत्र में बताया गया है कि जिस गृहस्थ के अन्न को विद्वान अतिथि खाते हैं, उस गृहस्थ के सब पाप नष्ट हो जाते हैं –

सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नान्ति। (अथर्व. 9/2(2)/8)

अथर्ववेद के एक अन्य मंत्र में अतिथि सेवा का महत्व बताते हुए कहा गया है –

प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति (अथर्व.9/6(2)/12)

अर्थात् जो गृहस्थ अतिथि को अन्न भेंट करता है, निश्चय ही वह गृहस्थ सब प्रजाओं के रक्षक परमात्मा का पदानुगामी होता है अर्थात् छोटे रूप में प्रजापति हो जाता है। चाणक्य के अनुसार 'अतिथि का आदरपूर्वक सत्कार करना चाहिये।'

अतिथिमभ्यागतं पूज्येद् यथाविधिं। (चा.सू. 514)

मनुस्मृति के अनुसार 'गृहस्थ के घर में अतिथि का शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार आसन, भोजन, बिस्तर, जल, कन्दमूल, फल आदि देकर सत्कार करना चाहिये।'' (मनु. 4/29) ''**अतिथि देवो भव**'' (तैत्तिरीय 1/11/1) के अनुसार 'अतिथि को देवता मानकर आदर सत्कार करें' और ऐसा करते हुए स्वयं भी सम्मानित हों अर्थात् अपने आप को परम सौभाग्यशाली समझें।

हमारे आर्ष साहित्य में अतिथि सेवा के अनेक प्रसंग हैं। वर्तमान पीढ़ी को उनसे प्रेरणा लेनी चाहिये।

(3) समाज सेवा ही ईश्वर की सेवा है।

ऋग्वेद के निम्न मंत्र में समाज का स्वरूप बताया गया है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। (ऋक्. 10/90/01)

वह विराट पुरुष सहस्र सिरों, सहस्र आँखों और सहस्र चरणों वाला है। अर्थात् समाज ही उस दिव्य स्वरूप साक्षात् भगवान् का विराट रूप है। अतः समाज की सेवा ही ईश्वर की सच्ची आराधना है।

ऋग्वेद (127.3) में बताया गया है कि हम छोटे, बड़े, असहाय आदि सभी से प्रेम करें, सभी को आदर दें और यथाशक्ति समाज सेवा व परोपकार का कार्य करते रहें। साथ ही आचार्य, गुरु, माता-पिता व विद्वानों का आदर करें ओर उनके आदेशों का पालन करें।

अथर्ववेद (3.30.5) में कहा गया है – अपने चित्त में शुभ संकल्प धारण करो, अर्थात् समाज सेवा का भाव मन में पैदा करो। उत्तम सिद्धि तक प्रयत्न करते रहो और आगे बढ़कर समाज सेवा का दायित्व ग्रहण करो। आपस में विद्वेष पैदा न हो, इसलिये मिलजुलकर पुरुषार्थ करो।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा जीवयथा पुनः।। (ऋ.10.137.01)

अर्थात् हे ज्ञानी लोगों ! गिरे हुओं को ऊँचा उठाओ और जिसने पाप कर्म से अपना जीवन मलिन कर लिया है, उसे फिर श्रेष्ठ जीवन दो।

यास्तेऽअग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः।
तार्भिनाऽअद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि।। (यजु. 13.32)

हे प्रभो! जिस प्रकार तेरी रश्मियां सूर्य में मिलकर सम्पूर्ण द्युलोक को प्रकाशित करती हैं, मैं भी उसी प्रकार समाज को ज्ञान ज्योति देने वाला बन सकूँ।

तमध्वरेष्वीऽते देवं मर्ता अमर्त्यम्। यजिष्ठं मानुषे जने। (ऋ. 5.14.12)

जो लोग समाज सेवा का कार्य करते हैं, वे उस परमात्मा की पूजा करते हैं, जो प्रत्येक प्राणी के अन्दर विराजमान है। अर्थात् नर सेवा ही नारायण सेवा है।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

'यह मेरा है, यह पराया है' ऐसे विचार तो निम्न कोटि के लोगों के होते हैं। उदार चरित्र वालों के लिये तो सारा संसार ही एक कुटुम्ब है।'

महर्षि दयानन्द कहते हैं, 'व्यक्ति को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये बल्कि सबकी उन्नति अर्थात् समाज की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिये।'

(4) स्वाध्याय का महत्व

स्वाध्याय का अर्थ है, श्रेष्ठ ग्रन्थों का पठन, चिन्तन-मनन तथा आत्म-निरीक्षण। तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार '**स्वाध्यायान्माप्रमदः**' (1.11.1) अर्थात् स्वाध्याय करने में प्रमाद मत करो। '**सत्यञ्च स्वाध्याय प्रवचने च**' (1.9.1) अर्थात् सत्य ज्ञान और धर्मशास्त्र पढ़ना, पढ़ाना और तदनुसार आचरण करना

चाहिये। मनुस्मृति में स्वाध्याय को नित्यकर्म बताते हुए इसे ऋषि–पूजन कहा गया है। (2.28, 2.105. 3.81) आचार्य चाणक्य कहते हैं कि प्रतिदिन एक श्लोक या उसका आधा या उसका भी आधा श्लोक अवश्य पढ़ना चाहिये और दान तथा सत्कर्म एवं स्वाध्याय से दिन को सार्थक करना चाहिये।

श्लोकेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धाक्षरेण वा।
अबंध्यं दिवसं कुर्यात् दानाध्ययनकर्मभिः।। (चा.नी. 2.13)

ऋग्वेद (18.91) तथा यजु. (25.14) में ऋषि प्रार्थना करता है –

आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे।।

कल्याणकारी, उन्नतिकारक शुभ विचार हमें चारों ओर से प्राप्त होते रहें, आलस्य रहित और रक्षा करने वाली दिव्य शक्तियाँ हमें समृद्धि प्रदान करती रहें। अर्थात् हम सारे विश्व से ज्ञान प्राप्त करते हुए अपनी भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति लगातार करते रहें।

यजुर्वेद (26.2) में वेदवाणी का उपदेश सभी को करने के लिये निर्देश है –

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्याꣳशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।।

अर्थात् इस कल्याणकारी वेदवाणी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आत्मीयजनों, सेवक तथा दूरस्थ विदेशियों आदि सभी लोगों को उपदेश करो।

<u>यह कुप्रचार कि 'शूद्रों को वेद नहीं पढ़ना चाहिये', का यजुर्वेद की इस ऋचा से स्वतः खण्डन हो जाता है</u>। वेद सभी के लिये पठनीय हैं क्योंकि यह मानव मात्र के कल्याण के लिये हैं। इसको पढ़ने–पढ़ाने व प्रचार–प्रसार का सभी को अधिकार है।

निम्न मंत्र में हम परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं –

तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

(ऋ.3.62.10, यजु. 36.3, 3.35, 22.9, 30.2)

अर्थात् 'हम उस सृष्टिकर्ता, सर्वशक्तिमान व ज्योतिर्मय परमेश्वर का ध्यान करते हैं उसे अपने हृदय में धारण करते हैं तथा प्रार्थना करते हैं कि हे परमात्मा ! आप हमारी बुद्धि को सदैव श्रेष्ठ कर्मों के प्रति प्रेरित करें।' हमें अज्ञान से हटाकर स्वाध्याय व सद्कर्म करने के लिये सद्बुद्धि प्रदान करें।

(5) सदाचार की शिक्षा

जैसा जीवन वैसा मरण – यह सामान्य नियम है। जिसका जीवन मधुर है, उसका मरण भी मधुर होगा। जिसका जीवन कटु है, उसका मरण भी कटु बन जाता है। जिसका वर्तमान अच्छा है, उसका भविष्य भी अच्छा ही रहता है। अतः वेद भगवान् अपने वर्तमान को मधुरतापूर्ण बनाने के लिये हमें सदाचार की शिक्षा देते हैं।

वैदिक ऋषि वेद भगवान् से प्रार्थना करते हैं, 'हम सूर्य और चन्द्र की भाँति कल्याणमय मार्ग का अनुसरण करें। हम किसी की भी मन, वचन व कर्म से हिंसा न करें, किसी का भी अधिकार न छीनें व ज्ञानी पुरुषों की संगति करें।' (ऋग्वेद 5.51.15)

'हे परमात्मा ! हम सन्मार्ग व सदाचार से न हटें। हम यज्ञादि शुभ कर्मो को न छोड़ें और हमारे आंतरिक व बाह्य शत्रु बचने न पायें। अर्थात् कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी न्याय, सत्य और श्रेष्ठ मार्ग को न छोड़ें। अपने आंतरिक शत्रुओं जैसे लोभ, लालच, स्वार्थ, अहंकार, ईर्ष्या आदि तथा बाह्य शत्रुओं जैसे असामाजिक तत्वों व देशद्रोहियों को निकाल कर बाहर फेंके', जैसा कि निम्न श्लोक में स्पष्ट है –

मा प्र गाम पथो वयं, मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः। (ऋ. 10.57.01, अथर्व. 13.1.59)

हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं –'हे संसार के उत्पादक देव! आप हमारे सारे दुर्गुणों को दूर कीजिये और जो कल्याणकारी तथा हितकर गुण हों, वह आप हमें दीजिये –

विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव, यद्भद्रं तन्न आ सुव।।
(यजु. 30.3)

अथर्ववेद के निम्न सूक्त में व्यक्ति को कर्मयोगी व पुरुषार्थी बनने की प्रेरणा है –

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित्।। (अथर्व. 7.50.8)

अर्थात् 'मेरे दाहिने हाथ में कर्म है, पुरुषार्थ है और बायें हाथ में विजयश्री रखी है। इस कर्मरूपी छड़ी के हाथ में लेते ही गौ, घोड़े, धन, धान्य, सोना–चाँदी जो भी मैं चाहूँगा, मेरे सामने खड़े हो जायेंगे।' अर्थात् परिश्रम से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। बस, क्रियाशील बनो, कर्म करो और निराश न हो।

गुहतां गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि। (ऋ. 1.86.10)

अपने अन्दर के अंधकार को हटाओ। समस्त घातक भावों (नकारात्मक विचारों) को मिटाओ और उस ज्योति को फैलाओ, जिसको सब चाहते हैं। अर्थात् हम अपने मन से पाप भावनाओं को मिटायें।

यजुर्वेद (4.28) में कहा गया है – 'हे अग्नि स्वरूप परमात्मा ! मुझे दुर्गुणों से बचाइये। सद्‌गुणों की ओर ले जाइये। हे भगवान् ! मुझे सदैव सद्‌मार्ग पर चलने को प्रेरित करें।'

शास्त्रों में कहा गया – '**आचारः परमो धर्मः**' (मनु 1.108) महाभारत का वचन है कि ''सदाचार ही धर्म का लक्षण है।'' सच्चरित्रता ही श्रेष्ठ पुरुषों की पहचान है। श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं वही आदर्श सदाचार का स्वरूप है। (अनु.पर्व 104.9) सदाचार से ही मनुष्य को दीर्घ आयु प्राप्त होती है। सदाचार से ही वह सम्पत्ति पाता है, सदाचार से ही उसे इस लोक में कीर्ति व परलोक में परमपद मिलता है। (अनु.पर्व. 104.6) सदाचार से ही आयु व कीर्ति बढ़ती है – '**आचाराद आयुर्वर्धते कीर्तिश्च**' (चा.सू 430)

अतः जीवन में सदाचार का पालन करना चाहिये।

(6) मित्रता

वेदों में उल्लेख है कि संसार को दो प्रकार से देखा जाता हैं (1) मित्र दृष्टि से (2) द्वेष दृष्टि से। ऋषि कहता है –
'**मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे**'। (शुक्ल यजुर्वेद) अर्थात् हम संसार को मित्र दृष्टि से देखें, द्वेष दृष्टि से नहीं।

महाभारत के आदि पर्व में एक दृष्टान्त है। पांचाल देश के राजा यज्ञसेन का पुत्र द्रुपद और महर्षि द्रोणाचार्य भरद्वाज ऋषि के आश्रम में एक साथ पढ़ते थे। दोनों में प्रगाढ़ मित्रता थी। आश्रम से विदा होते समय् द्रुपद ने द्रोणाचार्य से कहा – 'जब आवश्यकता हो, मेरे राज्य में आना।'

द्रोण का विवाह गौतम पुत्री कृपी से हुआ। इस विवाह से अश्वत्थामा का जन्म हुआ। इन दिनों उनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय थी। ऐसे में द्रोण को अपने मित्र द्रुपद द्वारा दिये गये आश्वासन की याद आई और वे पांचाल देश की ओर चल पड़े। यज्ञसेन की मृत्यु के बाद द्रुपद पांचाल देश का राजा बन गया था। द्रोण जब द्रुपद के समक्ष उपस्थित हुए तो राजा द्रुपद ने द्रोण को पहचानने से मना कर दिया। द्रुपद ने जब बचपन की बातें याद दिलाईं तो द्रुपद ने कहा – 'राजा

और याचक की कैसी मित्रता? मैंने तुम्हें कोई वचन नहीं दिया।' सुनते ही द्रुपद वहाँ से लौट आये।

राजा द्रुपद के मन में मित्र के प्रति द्वेष दृष्टि पैदा होने का परिणाम यह हुआ कि द्रोणाचार्य के मन में बदला लेने की भावना उत्पन्न हुई। इसके लिये उन्होंने कौरवों व पांडवों को धनुर्वेद की शिक्षा दी। परिणाम - द्रोणाचार्य के कहने से अर्जुन ने राजा द्रुपद को बाँधकर अपने गुरु के सामने उपस्थित किया।

अपने पिता के अपमान का बदला लेने के लिये द्रुपद के बेटे धृष्टद्युम्न ने महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य का सिर काट लिया और फिर द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न को मारकर पितृ ऋण चुकाया। सम्पूर्ण महाभारत इस द्वेष-दृष्टि का ही परिणाम था।

इसके ठीक विपरीत उदाहरण कृष्ण-सुदामा का है। दोनों के बीच ठीक वही सम्बन्ध था जो द्रुपद व द्रोण के बीच था। जब सुदामा निर्धनता की मार से श्रीकृष्ण के पास पहुँचे तब कृष्ण ने दौड़कर सुदामा को छाती से लगा लिया। इतना ही नहीं सुदामा के पाँव धोए। श्रीकृष्ण ने अपने और मित्र के बीच वैभव को आड़े नहीं आने दिया। वे बराबर नम्रता व प्रेम उंडेलते रहे तथा जो कर सकते थे, बिना मित्र के कहे, कर दिया।

इन दोनों उदाहरणों में मित्र-दृष्टि और द्वेष-दृष्टि के परिणाम बताये गये हैं। मित्रता भरी आँखों से यदि हम संसार को देखेंगे तो दुश्मन भी हमारे मित्र बन जायेंगे और यदि ऐसा न भी हुआ तो उनके परायेपन की, उनकी दुश्मनी की धार तो कुन्द पड़ ही जायेगी।

महाभारत के अनुसार 'मित्र के दु:ख में दु:खी होना और सुख में प्रसन्न होना सच्चे मित्र के लक्षण हैं। इसके विपरीत आचरण करने वाला व्यक्ति शत्रु है। (शां.103.50)

विदुर का कहना, "जिस पर अपने पिता तुल्य विश्वास किया जा सकता है, वही सच्चा मित्र है, अन्य व्यक्ति केवल साथी हो सकते हैं।" (विदु.नी. 4.37) भर्तृहरि सच्चे मित्र के लक्षण बताते हैं, "जो अपने मित्र को पापों से बचाता है, हितकारी कार्यों में लगाता है, गोपनीय बातों को छिपाता है, एवं सद्गुणों का प्रचार करता है, मित्र को आपत्तिकाल में नहीं छोड़ता है तथा समय रहने पर उसकी सहायता करता है, वही सच्चा मित्र है।" चाणक्य ने तो यहाँ तक कहा है कि 'कुमित्र से मित्र न होना अच्छा है' **वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम्।** (चा.नी. 6.13) अत: भले ही कम मित्र बनावें परन्तु मित्र के साथ सदैव निष्ठावान् रहें।

(7) जीवन की पवित्रता

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवोधिया।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा।। (अथर्व. 6/19/01)

इस मंत्र में पवित्रता के चार साधन माने गये हैं – (1) देवजनों अर्थात् अच्छे लोगों का सत्संग (2) मननशील (विचारवान) लोगों का सत्संग (3) प्राणियों के कल्याण का भाव (4) परमात्मा की उपासना। उपर्युक्त चारों साधनों को निम्न प्रकार से समझाया गया है –

1. **देवजनाः** – देवजन का तात्पर्य है, दिव्य गुणों वाले जन। सत्यभाषण, परोपकार, दया भाव आदि दिव्य गुण जिनमें रहते हैं, उन्हें देवजन कहते हैं। अतः प्रार्थना की गई है कि – दिव्य गुणों वाले वे जन अपने दिव्य गुणों को देकर मुझे पवित्र करें।

2. **मनवः** – पवित्र और अपवित्र कर्मो का मूल बुद्धि है। इसलिये गायत्री मंत्र में भी बुद्धि के लिये प्रार्थना की गई है। बुद्धि के पवित्र हो जाने पर कर्म स्वतः पवित्र हो जाते हैं। 'मनवः' का अर्थ है मननशील मनुष्य। बुद्धि को पवित्र करने के मुख्य साधन मनन-चिन्तन हैं। जैसे-जैसे हम सत्कर्मो व सद्‌विचारों का मनन करेंगे, वैसे-वैसे हमें सद्‌विचारों के प्रति अनुराग बढ़ता जायेगा जिसका अन्ततः कर्मों पर प्रभाव पड़ेगा। अतः प्रार्थना की गई है कि मननशील मनुष्य मेरी बुद्धि को पवित्र करें।

3. **विश्वभूतानि** – जब हमारे जीवन में विश्व का हित अर्थात् जन कल्याण का भाव जाग्रत होता है तो यह भाव हमें पवित्र बना देता है। जैसे-जैसे स्वार्थ के भावों का स्थान त्याग व परमार्थ लेते रहते हैं, शनैः-शनैः जीवन भी पवित्र होता जाता है। इसलिये मंत्र में तीसरी प्रार्थना की गई है कि विश्वभूत मुझे पवित्र करें।

4. **पवमानः** – परमात्मा पवित्र से भी पवित्र हैं। उनसे बढ़कर कोई पवित्र नहीं है। अतः परमात्मा की स्तुति और उपासना द्वारा अपने जीवन को पवित्र बनाने की प्रार्थना की गई है। चौथे चरण में परमात्मा से अपने जीवन को पवित्र बनाने का सामर्थ्य प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। अतः उक्त चारों साधनों से एवं उनके दिव्य परिणामों से हमारा जीवन सफल हो सकता है। अथर्ववेद (6.19.2) के अगले मंत्र में कहा गया है –

पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे। अथो अरिष्टतातये।।

'हे शुद्ध पवित्र परमेश्वर! मुझे अपने कर्त्तव्य-कर्म पालन के लिये,

बलवर्धन के लिये, अपने वैभव को बढ़ाने के लिये तथा निरोगता के लिये पवित्र करें।'

वेद मनुष्य की शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक पवित्रता पर बहुत बल देते हैं। इनकी पवित्रता से ही मनुष्य अपनी उन्नति करके भौतिक एवं निःश्रेयस के सुख को प्राप्त कर सकता है। मानसिक व आत्मिक पवित्रता ही सदाचार व सच्चरित्रता की प्रेरणा देती है। इसलिये परमात्मा से जीवन की पवित्रता की प्रार्थना की गई है।

(8) वेदों में गौ-माता की महिमा

गाय संसार का अमूल्य व कल्याणप्रद पशु है। गाय के गोबर, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोघृत और गोदधि आदि सभी पदार्थ परम् पावन, आरोग्यप्रद, आयुवर्धक तथा बलवर्धक माने जाते हैं। शास्त्रों में गाय को सर्वदेवमयी और सर्वतीर्थमयी कहा गया है। अर्थात् गाय के दर्शन से समस्त देवताओं के दर्शन तथा समस्त तीर्थों की यात्रा करने का पुण्य प्राप्त होता है। जहाँ गाय का निवास होता है वहाँ सर्वदा सुख शान्ति रहती है।

गौ और पृथ्वी, दोनों गौ के ही रूप हैं। पृथ्वी व गौ दोनों में अभिन्नता है। दोनों ही परस्पर एक दूसरे की सहायिका और सहचरी हैं। इसलिये वेदों में पृथ्वी व गाय को 'मही' शब्द से व्यक्त किया गया है। संसार में पृथ्वी और गौ से अधिक क्षमावान् और कोई नहीं है। अतः ये दोनों ही महान् हैं।

महाँस्त्वेव गोर्महिमा (शतपथ ब्राह्मण) अर्थात् गाय महान् है। वेदों में गौ-महिमा सम्बन्धी अनेक मंत्र उपलब्ध हैं यथा -

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। (ऋग्वेद 8/101/15)

'गाय एकादश रुद्रों की माता, अष्ट वसुओं की कन्या और द्वादश आदित्यों की बहन है, जो कि अमृत रूप दुग्ध देने वाली है।'

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः।। (शुक्ल यजुर्वेद 1/4)

'गाय यज्ञ सम्बन्धी समस्त ऋत्विजों की तथा यजमान की आयु को बढ़ाने वाली है। यह गाय यज्ञ के समस्त कार्यों को सम्पादित करने वाली है। गाय यज्ञ के समस्त देवताओं का पोषण करने वाली है अर्थात् दुग्ध आदि हवि पदार्थ देने वाली है।'

शुक्ल यजुर्वेद (3/20) में गाय से प्रार्थना की गई है-'हे गौओं ! तुम अन्न रूप हो' अर्थात् तुम दुग्ध-घृत आदि रूप में अन्न देने वाली हो। 'तुम पूजनीय हो',

अतः तुम्हारे आश्रय से हम श्रेष्ठता प्राप्त करें। 'तुम बलस्वरूप हो', अतः तुम्हारी कृपा से हम भी बल प्राप्त करें। 'तुम धन को बढ़ाने वाली हो।' अतः हमें ऐश्वर्य प्रदान करो।

शुक्ल यजुर्वेद (4/23) में पुत्र प्राप्ति के लिये गौ-माता से प्रार्थना की गई है -

वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि।।

'हे मंत्रपूत दिव्य गौ! तुम्हारे सुन्दर दर्शन के महत्व से मैं बलवान् पुत्र को प्राप्त करूँ।'

इस पृथ्वी पर गौ माता मनुष्य के लिये भगवान् का प्रसाद है। ईश्वर के प्रसादरूपी अमृत (दुग्ध) का पान कर मनुष्य ही नहीं, देवगण भी तृप्त होते हैं। इसलिये गौ-दुग्ध को अमृत कहा गया है। समस्त देवगण गोमाता के अमृतरूपी गौ-दुग्ध का पान करने के लिये गौ माता के शरीर में सर्वदा निवास करते हैं।

वैदिक काल में गौ-यज्ञ व गौ-महोत्सव हुआ करते थे। भगवान् कृष्ण ने भी गोर्वधन पूजा के अवसर पर गौ-यज्ञ कराया था। गौ यज्ञ में वेदोक्त गौ- सूक्तों से सम्बन्धित गौ-रक्षार्थ हवन, गौ-पूजन, वृषभ पूजन आदि कार्य किये जाते हैं जिससे गौ-संरक्षण, गौ-संवर्धन, गौ-वंश रक्षण आदि में विशेष लाभ होता है।

वर्तमान समय में जबकि गौ-धन के प्रति समाज का उपेक्षा भाव दृष्टिगोचर हो रहा है तथा गौ-धन को बूचड़खानों में भेजकर उनका कत्ल कराया जाता है, देश में गौ-यज्ञ एवं गौ-रक्षा महायज्ञ की विशेष आवश्यकता है। परमात्मा से प्रार्थना है कि वे हिन्दू समाज के हृदय में गौ रक्षा करने की प्रेरणा प्रदान करें।

(9) वेदों में पर्यावरण संरक्षण

भारत के मनीषियों ने हजारों वर्ष पहले ही मानव जीवन के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्व समझा था। वेदकालीन समाज न केवल पर्यावरण के प्रति सचेत था, बल्कि उसकी रक्षा करने के महत्व को भी समझता था। ऋग्वेद में प्रकृति का मनोहारी चित्रण हुआ है। प्रकृति को ही सुख व शान्ति का आधार माना गया है। किस ऋतु में कैसा रहन-सहन हो, कैसा खान-पान हो, क्या क्या सावधानियाँ रखी जायें, आदि का सम्यक् वर्णन है। ऋग्वेद के 7/103/7 में वर्षा ऋतु को उत्सव मान कर प्रकृति के साथ हार्दिक प्रसन्नता अभिव्यक्त की गई है।

1. वायु

निम्न सूक्त में वायु का महत्व बताया गया है –

यददौ वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे।। (ऋ. 10/186/3)

'इस वायु में जो अमरत्व (प्राणवायु) की धरोहर स्थापित है, वह हमारे जीवन के लिये आवश्यक है।' शुद्ध वायु औषधि के समान है, यह ऋग्वेद के निम्न सूत्र में बताया गया है :

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।
प्र ण आयूँषि तारिषत्।। (ऋ. 10/186/1)

शुद्ध व ताजी वायु अमूल्य औषधि है, जो इसे प्राप्त करता है, अपनी आयु को बढ़ाता है।'

2. जल

जल के बिना जीवन नहीं है। आज औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप कारखानों का अपशिष्ट पदार्थ तथा नगरों का गन्दा पानी भी नाले के रूप में नदियों व तालाबों में मिला दिया जाता है। समुद्र में परमाणु विस्फोट आदि से जल प्रदूषित हो जाता है। वेदों में जल प्रदूषण की समस्या पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

शुद्ध जल मनुष्य को आयु प्रदान करने वाला, प्राणों का रक्षक तथा कल्याणकारी है, यह भाव निम्न ऋचा में है–

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभिस्रवन्तु नः।। (ऋक् 10/9/4)

'सुखमय जल हमारे अभीष्ट की प्राप्ति तथा रक्षा के लिये कल्याणकारी हो। जल हमारे सुख समृद्धि की रक्षा करे।' जल चेहरे का सौदर्न्य तथा कोमलता और कान्ति बढ़ाने की औषधि है। यह विचार निम्न ऋचा में है –

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इताः।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्।।

(अथर्व. 3/13/5)

'याद रखिये, जल मंगलमय और घी के समान पुष्टिदाता है। जल भोजन को पचाने में उपयोगी तीव्र रस है। जल प्राण और कांति तथा बल और पौरुष देने

वाला तथा अमरता की ओर ले जाने वाला मूल तत्व है।' कृषि कार्य में जल का महत्व बताने वाली यह अग्रलिखित ऋचा –

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः।। (ऋक्. 10/9/3)

'हे जल ! तुम अन्न की प्राप्ति के लिये उपयोगी हो। तुम पर जीवन निर्भर है। तुम पर नाना प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ एवं अन्न आदि निर्भर हैं। तुम औषधि रूप हो।'

3. मिट्टी एवं वनस्पति

अथर्ववेद के 12 वें काण्ड के प्रथम सूक्त में पृथ्वी का महत्व प्रदर्शित किया गया है। सभी प्राणी पृथ्वी के पुत्र हैं, ऐसा कहा है –

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

अथर्ववेद की निम्न ऋचा में बताया गया है कि पृथ्वी का निर्माण कैसे हुआ–

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः।। (अथर्व. 12/1/26)

अर्थात् जो भूमि चट्टान, पत्थर और मिट्टी हैं, मैं उसी हिरण्यगर्भा पृथ्वी को प्रणाम करता हूँ। नाना प्रकार के फल, औषधियाँ, फसलें, अनाज, पेड़–पौधे इसी मिट्टी पर उत्पन्न होते हैं। अतः पृथ्वी को हम माता के समान आदर दें।

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।। (अथर्व. 12/1/42)

'भोजन और स्वास्थ्य देने वाली सभी वनस्पतियाँ इस भूमि पर ही उत्पन्न होती हैं। पृथ्वी सभी वनस्पतियों की माता है और मेघ पिता हैं। क्योंकि वर्षा के रूप में पानी देकर यह पृथ्वी को हरी–भरी करता है।'

आज हम मिट्टी के साथ न्याय नहीं कर रहे हैं। औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के कारण वन तेजी से काटे जा रहे हैं। वनस्पति के अभाव में वर्षा ऋतु अनियंत्रित हो गई है। प्रदूषित खाद्य सामग्री के कारण मानव आज असाध्य बीमारियों से जूझ रहा है। वैदिक ज्ञान के आधार पर यदि वायु, जल, मिट्टी व वनस्पति को प्रदूषित होने से रोका जाये तो मनुष्य का जीवन स्वस्थ व आनन्दमय बन सकता है।

(10) वेदों में राष्ट्रीयता की भावना

'वेद' भारत ही नहीं, विश्व के समस्त मनीषियों के लिये ज्ञान का स्रोत हैं। वेद ज्ञान के भण्डार, धर्म के मूल स्रोत और भारतीय संस्कृति के मूल आधार हैं। वेद अनादि, अपौरुषेय तथा ब्रह्मस्वरूप हैं।

मुख्यतः वेद चार हैं। ऋग्वेद में 10552 मंत्र हैं, इनका लक्ष्य मनुष्य को ज्ञान देना है। यजुर्वेद में 1975 मंत्र हैं, जो उत्तम कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं। सामवेद में 1875 मंत्र हैं जिसमें ईश्वर स्मरण और साधना का वर्णन हैं। अथर्ववेद में 5977 मंत्र हैं जिसमें राष्ट्रधर्म, समाज व्यवस्था, गृहस्थधर्म, प्रकृति आदि का विस्तृत व व्यावहारिक ज्ञान समाहित है।

वेदों में राष्ट्रीयता की भावना का भरपूर समावेश है। ऋग्वेद (10/191/2) में जगदीश्वर से प्रार्थना की गई है -

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजनाना उपासते।।

अर्थात् 'हे जगदीश्वर! आप हमें ऐसी बुद्धि दें कि हम सब परस्पर हिल-मिल कर एक साथ चलें, एक समान मीठी वाणी बोलें और एक समान हृदय वाले होकर स्वराष्ट्र में उत्पन्न धन-धान्य और सम्पत्ति को परस्पर समान रूप से बाँटकर भोगें। हमारी प्रवृत्ति राग - द्वेष रहित होकर प्रीति बढ़ाने वाली हो।'

ऋग्वेद के 'इन्द्र सूक्त' (10/47/2) में परमात्मा से स्वराष्ट्र के लिये उत्तम संतान पैदा करने की प्रार्थना की गई है -

स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुः समुद्रं धरुणं रयीणाम्।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः।।

'हे परमेश्वर ! हमें धन-धान्य से सम्पन्न ऐसी सन्तान दीजिये जो उत्तम व अमोघशस्त्रधारी हो, अपनी व अपने राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ हो तथा न्याय, दया और सदाचार के साथ जन समूह का नेतृत्व करने वाली हो,साथ ही समाज पर कल्याणकारी गुणों की वर्षा करने वाली हो।'

अथर्ववेद के भूमि सूक्त में ईश्वर ने हमें यह उपदेश दिया है कि हमें अपनी मातृभूमि के प्रति किस प्रकार के भाव रखने चाहिये? -

सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः।। (अथर्व. 12/1/10)

'पृथ्वीमाता अर्थात् मातृभूमि, मुझ पुत्र के लिये दूध आदि पुष्टिकारक पदार्थ प्रदान करे।'

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

'भूमि (स्वदेश) मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।'

उपास्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।

दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम्।। (अथर्ववेद 12/1/62)

'हे मातृभूमि ! तेरी सेवा करने वाले हम निरोग और आरोग्यपूर्ण हों। हम ज्ञानी बनकर दीर्घायु हों तथा तेरी सुरक्षा हेतु, अपना आत्मोत्सर्ग करने के लिये सदा तत्पर रहें।'

मम पुत्राः शत्रुहरणोऽथो मे दुहिता विराट्।

उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।। (ऋक्. 10/159/3)

'मेरे पुत्र शत्रु के छक्के छुड़ाने वाले हैं, मेरी पुत्री तेजस्विनी है। मेरे पति उत्तम कीर्तिवान् हैं और मैं क्या बताऊँ! मैं भी उत्तम विजयिनी हूँ। कोई मेरी तरफ आँख उठाकर तो देखे।'

अभि द्यां महिना भुवमभीमां पृथिवीं महीम्।

कुवित् सोमस्यापामिति।। (ऋक् 10/119/8)

'निःसन्देह यह आकाश बड़ा महिमाशाली है। मगर अपनी महत्ता से मैंने इसे भी पीछे छोड़ दिया है। निःसन्देह यह पृथ्वी बड़ी विशाल है पर अपनी विशालता से मैंने इसे भी परास्त कर दिया है। मैंने वीरता का रस पान कर लिया है।'

सहे पिशाचान्त्सहसा ऐषां द्रविणं ददे।

सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूर्त्रध्यताम्।। (अथर्व. 4/36/4)

मैं अपने बल और पराक्रम से पिशाचों व दुष्टों को पूरी शक्ति से दबा दूँगा। इनकी धन-सम्पत्ति को छीन लूँगा। सब दुष्टाचारियों को मार डालूँगा। यह मेरा संकल्प है, जिसे मैं पूरा करूंगा।

'इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयो भुवः।' (ऋक्. 5/5/8)

मातृभाषा, मातृसंस्कृति और मातृभूमि, ये तीनों देवियाँ हमें कल्याणकारी हों। अर्थात् हम इन तीनों की उन्नति करें। ये तीनों ही हमारे राष्ट्र की पहचान है। हमें चाहिये कि हम राष्ट्र-रक्षा में समर्थ हो सकें, इसके लिये वेद की शिक्षाओं को ग्रहण करें।

(11) चरैवेति-चरैवेति

(निरन्तर चलते रहने का उपदेश)

ऐतरेय ब्राह्मण का हरिश्चन्द्रोपाख्यान वैदिक साहित्य का अमूल्य रत्न है। इसमें इन्द्र ने हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को जो शिक्षा दी है, उसका वर्णन है –

'चरैवेति–चरैवेति' अर्थात् चलते रहो, चलते रहो। उपाख्यान के अनुसार राजा हरिश्चन्द्र के कोई संतान न थी। राजा ने वरुण की आराधना की और पुत्र प्राप्ति पर उससे उनके यजन (यज्ञ करना) की प्रतिज्ञा की। उन्हें पुत्र प्राप्त हुआ और उसका नाम रोहित रखा गया। जब–जब वरुण हरिश्चन्द्र को अपनी प्रतिज्ञा याद कराते, वे टाल देते। अन्त में हरिश्चन्द्र ने रोहित को बुलाकर कहा – 'तुम वरुणदेव की कृपा से मुझे प्राप्त हुए हो, इसलिये मैं तुम्हारे द्वारा उनका यजन (यज्ञ) करूँगा।' किन्तु रोहित ने यह बात स्वीकार नहीं की और जंगल में चला गया। वरुणदेव की नाराजगी से हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग हो गया। पिता की व्याधि का समाचार जब रोहित ने सुना तब वह नगर की ओर चल पड़ा। परन्तु बीच में ही इन्द्र पुरुष का रूप धारण कर उसके समक्ष प्रकट हुए और उसे पाँच श्लोकों में उपदेश दिया। रोहित अरण्य में ही निवास करते हुए उनके उपदेशों का लाभ उठाते रहे। इन्द्र के पाँच श्लोकों का वह उपदेश निम्न प्रकार है –

1. निरन्तर परिश्रम करने वाले को धन सम्पदा प्राप्त होती है।

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा चरैवेति।।

(रोहित ! हमने विद्वानों से सुना है कि श्रम से थककर चूर हुए बिना किसी को धन सम्पदा प्राप्त नहीं होती। अकर्मण्य पुरुष को पाप धर दबाता है। इन्द्र उसी का मित्र है, जो बराबर चलता रहता है, थककर निराश होकर बैठ नहीं जाता। इसलिये चलते रहो)

2. निरन्तर चलने वाले सदैव सफल होते हैं।

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताश्चरैवेति।।

(जो व्यक्ति चलता रहता है, उसकी जांघें फूल देती है। (अर्थात् वह सफल होता है) उसकी आत्मा वृद्धि–संगत हो कर सुफल की भागी होती है, तथा धर्मार्थ कार्यों को करने एवं तीर्थों में सतत् चलने वाले के अपराध और पाप थककर सो जाते हैं। अतः चलते रहो।)

3. निरन्तर चलने वाले का भाग्य (प्रारब्ध) साथ देता है।

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति।।

(बैठने वाले की किस्मत बैठ जाती है, उठने वाली की किस्मत उठती है, सोने वाले की सो जाती है और चलने वाले का भाग्य प्रतिदिन उत्तरोत्तर चमकने लगता है। अतः चलते रहो।)

4. निरन्तर चलने वाला सतयुग में जीता है।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उतिष्ठस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरंश्चरैवेति।।

(सोने वाला पुरुष मानो कलियुग में रहता है, अंगड़ाई जँभाई लेने वाला पुरुष द्वापर में पहुँच जाता है और उठकर खड़ा हुआ व्यक्ति त्रेता में आ जाता है। उत्साह से भरपूर होकर अपने निश्चित मार्ग पर चलने वाले के सामने मानो सतयुग ही उपस्थित हो जाता है। अतः चलते रहो।)

5. निरन्तर चलने वाले को मधुर फल मिलता है।

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पथ्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति।। (एत.ब्रा. 7/33)

(उठकर कमर कसकर चलने वाले को ही मधु मिलता है। निरन्तर चलता हुआ ही स्वादिष्ट फलों का आनन्द प्राप्त करता है। सूर्यदेव को देखो जो सतत चलते रहते हैं, क्षणभर भी आलस्य नहीं करते। इसलिये जीवन में भौतिक और आध्यात्मिक मार्ग के पथिक को चाहिये कि बाधाओं से संघर्ष करता हुआ चलता ही रहे–आगे बढ़ता ही रहे)।

आख्यान का मूल उद्देश्य आत्मा का उद्बोधन है। अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति के लिये पथिक को बिना थके आगे बढ़ते रहना चाहिये। भगवान् उनका कल्याण निश्चित रूप से करते हैं। अन्त में रोहित घर लौटते हैं। हरिश्चन्द्र का यज्ञ सम्पन्न होता है। वरुण देव भी सन्तुष्ट होकर राजा को रोग से मुक्त करते हैं। ऋषि ने निरंतर चलते रहने एवं अपने पुरुषार्थ को प्रकट करने का सन्देश दिया है। इस आख्यान से विद्यार्थियों एवं युवा पीढ़ी को प्रेरणा लेनी चाहिये। वास्तव में ये सफलता के पाँच सूत्र हैं।

(12) गुरुभक्ति से सारे देवता प्रसन्न होते हैं।

विष्णु स्मृति अध्याय दो में मानव मात्र के लिये क्षमा, सत्य, अहिंसा आदि सामान्य धर्म बताये गये हैं। उसमें गुरुभक्ति या गुरुसेवा मनुष्य मात्र का धर्म है, ऐसा बताया गया है। गुरु–सेवा पर पुराणों में एक कथा दी गई है –

दीपक के गुरुदेव का नाम वेदधर्मी था। गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था। दीपक गुरु से वेद, धर्मशास्त्र, पुराण आदि पढ़कर उन्हीं की सेवा में लगा रहता था। एक दिन गुरु ने दीपक को बुलाकर पूछा– 'दीपक! मैं पूर्व जन्मों के अर्जित अनेक पापों का प्रायश्चित कर चुका हूँ। केवल दो पापों का प्रायश्चित करना शेष है। मैं चाहता हूँ कि यह प्रायश्चित्त वाराणसी में जाकर करूँ। क्योंकि

थोड़ा सा भी किया गया प्रायश्चित बड़े से बड़े पापों को ध्वस्त कर देता है। जब मैं उन दोनों पापों का आवाहन करूँगा तो मेरा सारा शरीर कुष्ठ रोग से गलने लगेगा। मैं अन्धा भी हो जाऊँगा। उन पापों का मेरे स्वभाव पर भी असर पड़ेगा। तब सम्भव है मुझसे वे कुचेष्टाएं भी होने लगेंगी, जिन्हें मैं सोच भी नहीं सकता। उस समय मैं पाप के अधीन रहूँगा और उस समय गुरु सेवा की अत्यन्त आवश्यकता रहेगी। बताओ! क्या वह सेवा तुम कर सकोगे?'

दीपक तो गुरुभक्त था। उसने कहा –'गुरुजी! उन पापों को आप अपने ऊपर आमंत्रित न करें। उन्हें मेरे सिर पर थोप दें। मैं कोढ़ी व अंधा बनकर प्रायश्चित्त कर लूँगा।' वेदधर्मा ने कहा–'बेटा! पाप का भोग तो करने वाले को ही भोगना पड़ता है। दूसरी बात यह है कि पाप के भोगने में उतना कष्ट नहीं होता जितना कि उसकी सेवा में लगे व्यक्ति को होता है।'

भोगादपि महत्कष्टं शुश्रूषायां भविष्यति। (काशी रहस्य 1/91)

दीपक को गुरुसेवा में आनन्द आता ही था। अतः वह सेवा के लिये तुरन्त तैयार हो गया। गुरुजी काशी गये। उन्होंने बाबा विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा की पूजा कर संकल्प द्वारा पूर्वजन्म के पापों का आवाहन किया। पापों के आते ही गुरुजी का तन, मन, स्वभाव सब कलुषित हो गये। गलित कुष्ट होने से अंग-अंग से मवाद रिसने लगा। अन्धे होने से दिखाई देना बन्द हो गया। स्वभाव बदलने से दीपक पर सहज अनुराग भी बन्द हो गया। दीपक गुरुजी की यह दशा देखकर रो पड़ा और उनकी सेवा में जी जान से जुट गया। बिना किसी घृणा के वह गुरुजी के मल-मूत्र को धोता, मवाद पोंछता, दवा देता, घावों पर पट्टी बाँधता। भिक्षा माँगकर लाता और गुरुजी को निवेदित करता। पापवश गुरु का स्वभाव भी बदल गया था। दिन-रात दीपक को खरी-खोटी भी सुनाते रहते। एक क्षण भी दीपक को चैन से बैठने नहीं देते।

प्रत्येक परिस्थिति में दीपक अपने गुरुदेव को भगवान् विश्वनाथ ही समझता था। दिनों दिन गुरु के प्रति उसकी श्रद्धा बढ़ती ही गई। उसने न कभी खेद का अनुभव किया और न ही अपनी बुद्धि में विषमता आने दी। उसने सोचा– 'यह मेरे लिये तपश्चर्या है। चाहे जैसे भी हो, गुरु की सेवा में त्रुटि नहीं आनी चाहिये।' दीपक की सेवा से बाबा विश्वनाथ बहुत प्रसन्न हुए। दीपक के सामने प्रकट होकर बोले –'बेटा! तुम वर माँगो।' उस समय दीपक गुरु को एकाग्र मन से पंखा झल रहा था। दीपक ने कहा–'भगवन्! मैं गुरु से पूछकर ही वर माँगूगा। इस समय गुरुदेव सो रहे हैं।' जागने के बाद उसने गुरुदेव से पूछा – 'गुरुदेव!

भगवान् विश्वनाथ वर देने आये थे। आप कहें तो मैं उनसे आपके रोग-नाश के लिये वर माँग लूँ।' गुरु ने कहा कि मेरे लिये रोग-नाश का वर मत माँगना, क्योंकि पाप तो भोगने से ही मिटता है। दीपक को तो गुरु की प्रसन्नता के अतिरिक्त कुछ माँगना ही न था। भगवान् विश्वनाथ के दरबार में जाकर दीपक ने कहा -'महाराज! मुझे कुछ नहीं चाहिये।' भगवान् विश्वनाथ दीपक की इस ऊँची आध्यात्मिक स्थिति से बहुत प्रसन्न हुए। भगवान् विश्वनाथ ने अपने सभा मण्डप में जहाँ सारे देवता बैठे थे, यह वृत्तान्त कह सुनाया। भगवान् विष्णु भी वहाँ मौजूद थे। अद्‌भुत गुरु-भक्ति की प्रशंसा सुनकर भगवान् विष्णु ने दीपक को दर्शन दिया और कहा -'बेटा! वर मांगो।' दीपक ने भगवान् विष्णु को दण्डवत् किया और क्षमा-याचना करते हुए कहा, 'भगवन्! मैं तो आपका स्मरण भी नहीं करता, फिर आप मुझे वर देने कैसे आये ?' विष्णु ने बताया-'जो गुरुभक्त हैं, उस पर तो सब देवता प्रसन्न होते हैं, तुम कोई वर माँगो।' दीपक ने कहा, 'आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो मुझे आत्मज्ञान आदि कुछ भी नहीं चाहिये, मुझे केवल गुरुभक्ति ही दीजिये।' भगवान विष्णु 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये।

बालक के निर्माण में माता-पिता तथा गुरु तीनों का महत्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार मातृभक्ति व पितृभक्ति के संस्कार आवश्यक हैं उसी प्रकार बालक में गुरुभक्ति भी आवश्यक है। गुरुभक्ति का अर्थ है गुरु के प्रति आदर व श्रद्धा का भाव रखना। ज्ञानरूपी गंगा का प्रवेश द्वार है गुरुभक्ति। यदि गुरु के प्रति आदर नहीं तो ज्ञान जीवन में प्रवेश करता ही नहीं। अतः वर्तमान पीढ़ी के छात्रों को चाहिये कि वे अपने गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धाभाव रखें।

(13) धन-सम्पत्ति की तीन कोटियाँ

भगवान् विष्णु द्वारा धरा देवी (पृथ्वी) को जिस ग्रन्थ में उपदेश दिये गये हैं उसका नाम वैष्णव धर्मशास्त्र अथवा विष्णु धर्म-सूत्र है। इस ग्रन्थ में छोटे-बड़े 100 अध्याय हैं। इसके 58 वें अध्याय में गृहस्थ की धन-सम्पत्ति तीन प्रकार की कही गई है -

(1) शुक्ल धन (उत्तम) (2) शबल धन (मध्यम) (3) असित धन (अधम)

शुक्लः शबलोऽसितश्चार्थः (अ.58)

(1) शुक्ल धन - अपनी वृत्ति अर्थात् अपने स्वधर्म के अनुसार तथा न्यायपूर्वक जो कुछ भी शुद्ध धन सम्पत्ति प्राप्त होती है वह शुक्ल धन कहलाता है।

स्ववृत्युपार्जितं सर्वं सर्वेषां शुक्लम्।

(2) शबल धन – दूसरों की वृत्ति से उपार्जित, घूस (रिश्वत), कर–चोरी, जो वस्तु बेचने योग्य नहीं है उसके बेचने से प्राप्त धन और दूसरे के उपकार के बदले प्राप्त धन शबल धन कहलाता है। यह मध्यम कोटि का धन है।

(3) असित (कृष्ण) धन – निन्दनीय वृत्ति से प्राप्त एवं बेईमानी से कमाया धन कृष्ण धन (ब्लैक मनी) कहलाता है। छल–कपट, ठगी, बेईमानी, जुआ, चोरी, मिलावट, डकैती, ब्याज आदि से प्राप्त धन कृष्ण धन या काला धन कहलाता है। यहाँ ब्याज से आशय संभवतः उस ब्याज से है जिससे निर्धन व्यक्ति अतिनिर्धन व उसका परिवार अंततः दास बनने पर विवश होता था। यह निकृष्ट कोटि का धन कहलाता है।

अभ्युदय के लिये शुक्ल धन :– व्यक्ति जिस प्रकार से धनोपार्जन करता है, उसका फल भी उसे उसी प्रकार से मिलता है। यदि पवित्र, शुद्ध और न्याय से उपार्जित धन से कार्य किया जाता है तो उसका फल भी सर्वत्र कल्याणकारक और सब ओर से अभ्युदय करने वाला होता है।

उत्तम कार्य के लिये शुक्ल धन :– 'शुक्ल धन' से कोई कार्य करता है तो उसका फल भी उत्तम कोटि का होता है। उच्च कोटि के फल की प्राप्ति के लिये इस धन का उपयोग करना चाहिये।

कृष्ण धन से पतन :– कृष्ण धन से उपार्जित धन से कोई कार्य करता है तो उसे लाभ की अपेक्षा हानि, सफलता की जगह असफलता, और अभ्युदय की जगह पतन होता है। अतः इस कोटि के धन का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिये।

शुक्ल धन सर्वश्रेष्ठ :– काला धन सर्वथा निन्दनीय व त्याज्य है। अतः तीनों प्रकार के धन में से सदैव उत्तम धन (शुक्ल धन) को ही प्राप्त करना चाहिये तथा उसका उपयोग धर्म के कार्य में करना चाहिये।

न्याय द्वारा कमाये धन से पुण्य कार्य करें :– देवी भागवत् (3/12/8) में कहा गया है कि अन्याय से उपार्जित धन द्वारा जो पुण्य कार्य किया जाता है, वह न तो इस लोक में कीर्ति देता है और न ही परलोक में उसका फल मिलता है। अतः इस लोक में यश कमाने के लिये तथा परलोक में सुख प्राप्त करने के लिये न्याय से कमाये हुए धन द्वारा पुण्य कार्य करना चाहिये।

महाभारत का दृष्टान्त :– वेदव्यास जी ने महाभारत में बताया है कि पाण्डव सदाचारी थे। महाराज युधिष्ठिर धर्मराज थे। उन्होंने 'राजसूय' नामक महान् यज्ञ किया। यज्ञ की समाप्ति पर प्रचुर दक्षिणायें दी गई। उस यज्ञ में साक्षात् भगवान्

श्रीकृष्ण थे। भरद्वाज आदि महान् ऋषिगण पधारे थे। पवित्र वेद ध्वनियों से आहुतियाँ दी गई थीं। एक माह तक विधिपूर्वक यज्ञ चला। अन्त में पूर्णाहुति हुई। इस प्रकार विधि–विधान तथा भाव में कोई कमी नहीं थी। किन्तु यज्ञ में जिस धन का प्रयोग हुआ था वह महाराज युधिष्ठिर को लूट–पाट द्वारा प्राप्त हुआ था। शुद्ध–धर्म के मार्ग से प्राप्त नहीं हुआ था। अतः वह कृष्ण धन ही था। परिणाम यह हुआ कि पाण्डवों को अत्यन्त कष्टप्रद वनवास भोगना पड़ा। द्रोपदी को विपत्ति झेलनी पड़ी। जुए में पाण्डव हारे। अज्ञातवास में उन्हें राजा विराट के घर नौकरी करनी पड़ी।

साक्षात् धर्मराज की काले धन ने ऐसी स्थिति कर दी तो सामान्य मनुष्य की तो क्या बात? इसलिये मनुष्य को धनोपार्जन में सावधान रहना चाहिये। तनिक भी काला धन विनाश ही नहीं, सर्वनाश का कारण बन सकता है।

firk dh ikFkuk

प्रभु ! मुझे एक ऐसा पुत्र देना,
जो इतना बलवान् हो कि अपनी दुर्बलताओं को जान सके।
इतना पराक्रमी हो कि वह निर्भय हो सके,
विजय में भी स्थिर चित्त व विनम्र बना रहे।
प्रभु ! मेरे पुत्र को ऐसा बनाना कि
जहाँ उसके सामर्थ्य की आवश्यकता हो,
वहाँ स्वार्थ ना साधे ।
हे भगवान् !
उसे ऐसे रास्ते पर न भेजना जहाँ,
आराम व अनुकूलता के फूल खिले हों,
उसे ऐसे रास्ते पर चलना सिखाना जहाँ
चुनौती, संघर्ष और कठिनाइयों के काँटे बिछे हों,
और उस रास्ते पर जब आँधी और तूफान आएँ
तब वह स्थिर रहना सीखे।
प्रभु ! मेरे पुत्र का हृदय स्वच्छ व निर्मल हो,
उसका ध्येय महान् हो।

& lk/k v{kj thounkl

आर्ष साहित्य में विज्ञान

1. आयुर्वेद	7. विमान विद्या
2. शल्य चिकित्सा	8. खगोल विज्ञान
3. गणित	9. वस्त्र उद्योग
4. अणु की अवधारणा	10. वनस्पति विज्ञान
5. धातु विज्ञान	11. कृषि विज्ञान
6. रसायन विज्ञान	12. भारतीय काल गणना

अधिकांश आधुनिक शिक्षित भारतीयों की यह धारणा है कि विज्ञान,ज्योतिष और गणित आदि सभी ज्ञान तथा खोजें पश्चिमी देशों की देन हैं। जबकि प्राचीन भारत में वैज्ञानिकों की कोई कमी नहीं थी। उनका विवरण हमारे आर्ष– साहित्य में उपलब्ध है। आज प्लास्टिक शल्य–चिकित्सा को आधुनिक युग की देन माना जाता है, किन्तु ईसा से भी बहुत पहले भारतीय शल्य चिकित्सक सुश्रुत ने प्लास्टिक सर्जरी व दैहिकी में अपार ख्याति अर्जित की थी। उस समय के शल्य चिकित्सा के उपकरणों का आज तक प्रयोग हो रहा है। उन्होंने इन उपकरणों की सहायता से मस्तिष्क की भी शल्य चिकित्सा सफलतापूर्वक की थी।आर्यभट्ट, भास्कराचार्य आदि गणितज्ञों ने शून्य का अंक, दशमलव प्रणाली, संख्या लेखन, त्रिकोणमिति, रेखागणित, बीजगणित, पाई का मान इत्यादि की सर्वप्रथम खोज की। यदि भारतीय गणितज्ञ ये खोजें नहीं करते तो विश्व के लगभग सभी आविष्कार असम्भव हो जाते। रसायनशास्त्र के प्रमुख वैज्ञानिक व चिकित्साशास्त्री नागार्जुन का नाम इतिहास में प्रसिद्ध है। जो गणनायें भारतीय ज्योतिषशास्त्री हजारों वर्ष पूर्व कर गये हैं, उन्हें आज भी पूर्ण सत्य माना जाता है। सूर्य, पृथ्वी, चन्द्र, ग्रहों, उपग्रहों के सम्बन्ध में हजारों वर्ष पूर्व घोषणायें हमारे ऋषियों ने की थीं। इसी तरह धातु विज्ञान, विमान तकनीकी, कृषि, वनस्पति विज्ञान आदि अनेक क्षेत्रों में भारतीय वैज्ञानिक अग्रणी रहे हैं। वैदिक काल से गुप्त काल (400 ई.पू.) तक विज्ञान व तकनीक के क्षेत्र में हमारे देश में बहुत से कार्य हुए हैं। यदि आधुनिक वैज्ञानिक यूरोपीय विज्ञान को अधिक समृद्ध मानते हैं तो गन्धक, लोहा, चाँदी, टीन, स्वर्ण, पारद (पारा) तथा सीसा के खोजकर्ताओं के नाम बतायें। इस पर आज का पाश्चात्य विज्ञान मूक है, क्योंकि इनकी खोज भारत में

हुई है। आधुनिक काल में भी रामानुजम्, डॉ. सी.वी. रमन, जगदीशचन्द्र बोस, डॉ. होमी भाभा आदि विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुए हैं। प्रस्तुत प्रकरण में विशेषकर आर्ष साहित्य में उल्लेखित वैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं हमारे ऋषियों (वैज्ञानिकों) द्वारा प्राप्त की गई उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया है। आशा है, पाठकवृन्द इसे पढ़कर गौरवान्वित होंगे।

1. आयुर्वेद

शरीर-रूपी तंत्र का संचालन प्राण शक्ति करती है। प्राण शरीर के कण-कण में व्याप्त है। शरीर की कर्मेन्द्रियाँ तो सो जाती हैं, विश्राम भी करती हैं, किन्तु प्राण-शक्ति न तो कभी सोती और न ही विश्राम करती है। रात-दिन यह अनवरत रूप से कार्य करती रहती है। जब तक प्राण-शक्ति रहती है, तभी तक प्राणियों की आयु रहती है। जब यह इस शरीर में काम करना बन्द कर देती है, तब आयु समाप्त हो जाती है। अतः आयु को (प्राण शक्ति) को यथावत रखने का जो ज्ञान कराये, वही आयुर्वेद है। प्राणों को स्वस्थ कैसे रखा जाये, इसकी शिक्षा आयुर्वेद देता है। अन्तःकरण के शोक (मानसिक दुःख) को आधि तथा काया-देह के दुःख को व्याधि कहते हैं। आधि व व्याधि दोनों ही प्राणों को हानि पहुँचाने वाले हैं। अतः आयुर्वेद दोनों की चिकित्सा करके शरीर को स्वस्थ रखने का उपाय बताता है।

व्याधियों के आश्रय स्थल - सुख-दुःख, रोग एवं आरोग्य का आधार शरीर और मन हैं। शरीर और मन ये दोनों ही व्याधियों के आश्रय माने गये हैं तथा आरोग्य के आधार भी यही हैं। शारीरिक व मानसिक दोषों की सम अवस्था ही आरोग्य या सुख है। इन दोषों की विषमता ही रोग या दुःख है।

कैसे जानें कि व्यक्ति स्वस्थ है - निम्न का सम रहना ही अच्छे स्वास्थ्य का लक्षण है : - **1. वात, पित्त व कफ** - ये दोष सम हों, इनमें विषमता न हो। जैसे शरीर में कफ बढ़ जाये तो वात व पित्त घट जाते हैं। इसी प्रकार पित्त के बढ़ने पर वात व कफ घट जाते हैं। अतः स्वस्थ रहने के लिये तीनों का सम रहना आवश्यक है। तीनों ही दोष कुपित हो जायें तो त्रिदोष हो जाता है। वह प्राणी फिर बच नहीं सकता। अतः तीनों दोष सम होने चाहिये। **2. अग्नि** चार प्रकार की होती है। (1) मन्दाग्नि (2) तीव्राग्नि (3) समाग्नि (4) हविषाग्नि। मन्दाग्नि में भूख नहीं लगती, तीव्राग्नि में आवश्यकता से अधिक भूख लगती है। हविषाग्नि में भूख कभी शान्त नहीं होती, चाहे जितना खाते जाओ। अतः अग्नि सम होनी चाहिये।

3. सप्त धातुएँ अर्थात् रस, रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि, मेद और शुक्र – इनमें से कोई भी आवश्यकता से अधिक बढ़ जाये तो रोग पैदा होते हैं। अधिक क्षय हो जायें तो भी रोग उत्पन्न करेंगे। अतः धातुएँ भी सम होनी चाहिये।

उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति – आयुर्वेद का उद्देश्य केवल रोगों को शान्त करना नहीं है बल्कि इसका मुख्य उद्देश्य मोक्ष प्रदान करना है। आयुर्वेद शास्त्र कहता है – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति में मूल कारण शरीर का नीरोग होना है। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन रहता है, तभी ब्रह्मचिन्तन संभव है। हमारे यहाँ रोगों का नाश केवल विषयों के भोग के लिये नहीं किया जाता। आयुर्वेद तो स्वास्थ्य लाभ इसलिये करना चाहता है, ताकि हम भली–भाँति भगवत् चिन्तन कर सकें।

अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ जहाँ मनुष्य के दैहिक रोगों का निदान करती है वहाँ आयुर्वेद शरीर और मन दोनों के आरोग्य पर विचार करता है। दोनों का उपचार बताना आयुर्वेद का मुख्य लक्षण है। इसलिये कहा गया है कि यह विश्व की सर्वोत्तम चिकित्सा प्रणाली है।

आयुर्वेद के प्रथम प्रवर्त्तक ब्रह्मा माने गये हैं। उनसे यह विद्या प्रजापति ने सीखी। प्रजापति से अश्विनीकुमार, उनसे इन्द्र, और इन्द्र से आयुर्वेद का ज्ञान भरद्वाज, धन्वन्तरि, कश्यप, वसिष्ठ, अत्रि और भृगु आदि ऋषियों ने ग्रहण किया। भरद्वाज काय–चिकित्सा के प्रवर्त्तक हुए। उनके समय का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ **चरक संहिता** है। धन्वन्तरि शल्य चिकित्सा के प्रवर्त्तक हुए। शल्य तंत्र का विशद वर्णन **सुश्रुत संहिता** में है। कश्यप ऋषि बाल–चिकित्सा के प्रवर्त्तक थे। कश्यप–संहिता में बाल रोग, उनके निदान, प्रसूत तंत्र, शिशु के स्वास्थ्य, भरण पोषण, लालन–पालन आदि का विवरण दिया गया है। आयुर्वेद के आठ अंग माने गये है – (1) शल्य (surgery), (2) शालाक्य (ENT) (3) काय चिकित्सा (medicines) (4) भूत विज्ञान (spookology) (5) बाल चिकित्सा (paediatrics) (6) विष विज्ञान (toxicology) (7) रसायन तंत्र (chemotherepy) (8) वाजीकरण (hypnotism)

2. शल्य चिकित्सा

प्लास्टिक शल्य चिकित्सा को आधुनिक विज्ञान की देन माना जाता है, किन्तु ईसा से पहले भी भारतीय शल्य चिकित्सक सुश्रुत ने प्लास्टिक शल्य चिकित्सा तथा दैहिकी में अपार ख्याति अर्जित की थी। उन्होंने उपकरणों के मा ध्यम से मस्तिष्क की भी शल्य क्रिया सफलतापूर्वक की थी। भारतीय चिकित्सकों के देवता धन्वन्तरि को शल्य चिकित्सा का जनक माना जाता है। इस क्षेत्र में

सुश्रुत, पुष्कलावत, गोपरक्षित, भोज, विदेह, निमि, कंकायन, गार्ग्य, गालव, जीवक, कश्यप,पर्वतक आदि अनेक रचनाकारों द्वारा ग्रंथ लिखे गये। ऋग्वेद (8–86–2) के अनुसार जब विमना और विश्वक ऋषि उद्भ्रान्त हो गये तब शल्य क्रिया द्वारा उनका रोग दूर किया गया। नार्षद् ऋषि जब बधिर हो गये थे तब अश्विनीकुमारों ने उपचार करके उनकी श्रवण शक्ति लौटा दी। ऋग्वेद (1–116–11) में शल्य क्रिया द्वारा वन्दन ऋषि की नेत्र ज्योति वापस लाने का उल्लेख मिलता है। रामायण में एक स्थान पर कहा गया है –''**याजमाने स्वके नेत्रे उद्धृत्याविमनाददौ।**'' अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर एक मनुष्य की आँखें निकालकर दूसरे को लगा दी जाती थी।

कुछ समय पहले इंग्लैण्ड के शल्य चिकित्सकों के प्रसिद्ध संगठन ने एक कैलेण्डर निकाला, उसमें दुनिया भर के अब तक के श्रेष्ठ सर्जनों के चित्र दिये हुए थे। उसमें पहला चित्र आचार्य सुश्रुत का था। उन्हें विश्व का पहला शल्य चिकित्सक बताया गया था। अंग्रेजों ने अठारहवीं सदी के अन्तिम दशक में महाराष्ट्र के दो वैद्यों को प्लास्टिक सर्जरी करते देखा। 1794 ई. में इसका सचित्र विवरण लन्दन की एक पत्रिका में प्रकाशित हुआ, जिसके आधार पर वहाँ के एक डॉक्टर कर्पूए ने प्लास्टिक सर्जरी की भारतीय विधि का विकास किया।

परिवार निरोध सम्बन्धी शल्य क्रिया का विवरण अथर्ववेद 6/138/4 में मिलता है। चेचक के टीके लगाने वाले वैद्यों को देखकर अंग्रेजों को आश्चर्य हुआ। अनेक अंग्रेजों ने इस प्रथा के विषय में जानकारी दी है कि गत कम से कम डेढ़ सौ वर्षों से भारत में ऐसे टीकों का प्रचलन है।

3. गणित

आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर, महावीराचार्य आदि प्रख्यात गणितज्ञ यदि शून्य, दशमलव प्रणाली, संख्या लेखन आदि की नींव न रखते तो विश्व की लगभग सभी खोजें असम्भव हो जाती। अंग्रेजों के साथ जो अंक –संकेत पुनः भारत में आये और जिन्हें हम आज अन्तर्राष्ट्रीय अंक कहते हैं, वस्तुतः हमारे ऋषि, वैज्ञानिकों की ही देन हैं। अथर्ववेद 13,14 व 16–18 में एक से दस तक की संख्याओं का उल्लेख मिलता है। दशमलव पद्धति की खोज भारत में 400 ई. पूर्व हुई। इस अनुसंधान पर गणितज्ञ 'लैप्लैस' ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा था, 'आर्किमिडिज तथा ओपोलोनियस (230 ई.पू.) जैसे गणितज्ञों के मस्तिष्क में जो पद्धति नहीं आई, उस शोध के लिये उन्हें भारतीय हिन्दुओं का ऋणी होना चाहिये। हिन्दुओं ने भारत में बीजगणित (अव्यक्त गणित) की नींव रखी तथा शून्य व

अनन्त की धारणाओं को पुष्ट किया। यथा पूर्णांक से पूर्णांक निकाला जाये तो पूर्णांक शेष बचता है तथा अनन्त से अनन्त निकालने पर अनन्त शेष बचता है –

'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते'

इसको आधुनिक गणितज्ञों ने निम्न प्रकार पुष्ट किया है :- 0–0 = 0

00 — 00 = 00

प्रो. जी.पी. हॉलस्टेड अपनी पुस्तक 'गणित की नींव तथा प्रक्रियाएँ' में लिखते हैं–''शून्य को (कुछ नहीं को) न केवल नाम व सत्ता देना बल्कि एक शक्ति देना, हिन्दू जाति की विशेषता है।''

ईसा से 400–500 वर्ष पूर्व हमारे देश में गणित का ज्ञान समृद्ध था। भास्कर प्रथम ने अंकगणित पर 'लीलावती' नामक एक अपूर्व ग्रन्थ की रचना की। गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने 'पाटीगणित' अर्थात् अंकगणित के अन्तर्गत बीस विषयों का निर्धारण किया। आर्यभट्ट ने बीजगणित की नींव डाली। इसे अव्यक्त गणित भी कहा जाता था। एक अरबी विद्वान 'मूसा अल खवारिज्मी' ने नवीं सदी में भारत आकर यह विधि सीखी और एक पुस्तक लिखी। वहाँ से यह ज्ञान यूरोप पहुँचा। रेखागणित का आविष्कार तो ऋग्वेद युग में हो चुका था। यज्ञवेदियों के निर्माण में ज्यामितीय मापन के लिए उपयोग में आने वाली सुतली (डोरी) को 'शुल्व' कहा जाता है, इसलिए रेखागणित का भारतीय नाम 'शुल्व' है। अतः रेखागणित को 'शुल्वी क्रिया' कहा जाता है। एक शुल्व सूत्र के अनुसार वृत्त के व्यास और परिधि का निश्चित सम्बन्ध 22/7 से व्यक्त किया जाता था। आजकल इसे π (पाई) से व्यक्त किया जाता है, जिसका मान 3.1429 होता है। इसका अनुसंधान भारत में 300 ई.पू. में हो चुका था। अबुल फजल अपने ग्रन्थ 'आईने अकबरी' में लिखते हैं कि यूनानियों को हिन्दुओं द्वारा पता लगाये गये वृत्त के व्यास तथा उसकी परिधि के मध्य के रहस्य की जानकारी नहीं थी। आर्यभट्ट ही पाई का मूल्य बताने वाले प्रथम गणितज्ञ हैं। ऋग्वेद में संहिता 130.3 तथा 1.52.5 में पाई के मान का विवरण है। यथा–

इन्द्रो यद्वज्ञा घृषमाणो अंधसा । भिनद्वलस्य परिधि रिव त्रितः।।

ऋग्वेद 1.52.5

अर्थात् ज्यामितीय दृष्टिकोण से वृत्त में व्यास और परिधि का अनुपात त्रित (लगभग 1/3) होता है। ज्यामिति के क्षेत्र में ब्रह्मगुप्त (सातवीं शती) का भी योगदान महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' की रचना की।

सर आइजक न्यूटन (1642–1727 ई.) द्वारा खोजे गये अवकलन गणित के सिद्धान्त उससे 500 वर्ष पूर्व भास्कराचार्य (1150) प्रस्तुत कर चुके थे।

पाइथोगोरस प्रमेय नहीं – बोधायन प्रमेय है।

दीर्घचतुरस स्याक्षणया रज्जुः पार्श्वमानी तिर्यक्मानी।

यत्प्रभग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति।।

अर्थात् – किसी आयत का कर्ण क्षेत्रफल में उतना ही होता है, जितना उसकी लम्बाई और चौड़ाई के क्षेत्रफल का योग होता है। बोधायन ने अपने शुल्व सूत्र में यह सिद्धान्त दिया है। यह सूत्र कहता है कि यदि किसी आयत का कर्ण ब स, लम्बाई अ ब तथा चौड़ाई अ स है तो बोधायन का प्रमेय बनता है :– ब स^2 = (अ ब)^2 + (अ स)^2 इस प्रमेय को आजकल पाइथोगोरस प्रमेय के नाम से रेखागणित में पढ़ाया जाता है, जबकि यूनानी गणितज्ञ पाइथोगोरस से कम से कम एक हजार साल पहले बोधायन ने इस प्रमेय का वर्णन किया है।

4. अणु कण की अवधारणा

कणाद ऋषि प्रथम यथार्थवादी हुए जिन्होंने सबसे पहले पदार्थ में अणु (कण) होने की अवधारणा प्रदान की। वे 470 ईसा पूर्व के थे। कणाद ऋषि कश्यप वंश के उलूका के पुत्र थे। उनके गुरु का नाम सोमशर्मा था। सोमशर्मा भगवान् शिव के अवतार माने जाते थे। कणाद ऋषि खेत में पड़े रह गए अन्नदानों को चुनकर एकत्रित करते और अपना जीवन व्यतीत करते। ऐसी घोर तपस्या करते हुए उन्होंने भगवान् शिव का दर्शन किया। भगवान् शिव ने उन्हें पदार्थ, उनके गुण, क्रिया, उत्पत्ति आदि का ज्ञान दिया और उन्हीं विषयों पर एक ग्रन्थ लिखने का आदेश दिया। कणाद ऋषि ने 'वैशेषिक' दर्शन के सूत्रों की रचना की। वैशेषिक दर्शन, वैदिक – दर्शन के मुख्य छः सिद्धान्तों में प्राचीनतम है तथा इसकी रचना लगभग 2500 वर्ष पूर्व (छठी शताब्दी ई.पू. में) हुई। वैशेषिक दर्शन के प्रथम अध्याय के सूत्र 5 में लिखा है – पदार्थ नौ विभागों में विभाजित किये जा सकते हैं– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल (समय), दिशा, जीवात्मा और मन । इसमें दिशा (ईथर) काल (समय) तथा आकाश की स्वतंत्र सत्ता है। कणाद ऋषि ने सबसे पहले बताया कि पदार्थों में क्रिया होती है एवं पदार्थ की रचना किसी कारणवश परमाणुओं के संयोग से होती है। विशेषकर वैशेषिक ग्रन्थों में विस्तार से एवं तार्किक पद्धति से परमाणुओं के संयोजन से स्थूल पदार्थो के निर्माण का विवरण दिया गया है।

5. धातु विज्ञान

प्राचीन भारत में धातु कर्म उन्नत अवस्था में था। भारतीय धातुकर्मकार उत्तम किस्म का इस्पात बनाते थे। 1864 ई. में एक अंग्रेज को मुल्तान में साढ़े सात फुट ऊँची लगभग एक टन भार की बुद्ध प्रतिमा मिली थी। कुतुबमीनार के पास लगभग 1600 वर्ष प्राचीन लौहस्तम्भ खुले आसमान के नीचे सदियों से अविचल खड़ा है। आज तक जंग नहीं लगा। आश्चर्य है कि इसके रासायनिक मिश्रण से आज भी वैज्ञानिक अनभिज्ञ हैं। 1842 में कैप्टन जे. कैम्पबेल ने अपनी रिपोर्ट में भारत के लौह निर्माण का वर्णन किया है। रिपोर्ट कहती है कि उस समय देश में हजारों इस्पात निर्माण की भट्ठियाँ थी। उत्कृष्ट गुणवत्ता का जैसा लोहा यहाँ बनता था, वैसा दुनिया के किसी अन्य देश में सम्भव नहीं था। 'इंग्लैण्ड का बढ़िया लोहा भी भारत के घटिया लोहे का मुकाबला नहीं कर सकता था। उस समय नब्बे हजार लोग इन भट्टियों में रोजगार प्राप्त करते थे।' भारत के लोहारों द्वारा शोधित लोहे का लागत मूल्य भी इंग्लैण्ड से आधा होता था।

6. रसायन विज्ञान

वैदिक काल के प्राचीन ग्रन्थ अथर्ववेद में रसायन सम्बन्धी विवरण है। इन ग्रन्थों में छानना, निथारना, घोल बनाना, आसवन, ऊर्ध्वपातन (sublimation) आदि अनेक विधियों का विस्तृत विवरण पढ़ने को मिलता है। आधुनिक विज्ञान ने इन तकनीकों का विकास सत्रहवीं शताब्दी के बाद किया है। धातुओं की सर्वप्रथम खोज (आर्सेनिक नामक धातु की) 1250 ई. में की गई। उसके बाद 1669 में फासफोरस की खोज टैनिंग ब्राण्ड ने की। किन्तु शेष अधिकतर रासायनिक तत्व अठारहवीं शताब्दी के बाद खोजे गये। यदि आधुनिक वैज्ञानिक यूरोपीय विज्ञान को इतना समृद्ध मानते हैं तो गंधक, लोहा, चांदी, टिन, स्वर्ण, पारद (पारा), सीसा आदि के खोजकर्ताओं के नाम बतायें। यह तथ्य है कि आज का विज्ञान इस पर मूक है, क्योंकि वस्तुतः इनकी खोज भारत में हुई है। रसायनशास्त्र में प्रसिद्ध वैज्ञानिक, बौद्ध धर्म के महायान मत के प्रवर्त्तक एवं प्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री नागार्जुन का नाम विश्व प्रसिद्ध है। आप रसायन शास्त्र के जन्मदाता माने जाते हैं।

7. विमानन

विमान नामक यंत्र वैदिक काल से ही इस देश में प्रचलित था। भगवान विष्णु के पास गरुड़ व कार्तिकेय के पास मयूर आकृति का विमान था। श्रीमद्‌भागवत में शाल्व राजा के पास 'सौभ' नामक विमान का वर्णन आता है। इस विमान को

इतना बड़ा बनाया गया था कि युद्ध सामग्री के साथ समस्त सेना उसमें रहा करती थी। विमानों के सम्बन्ध में भरद्वाज ऋषि प्रणीत पुस्तक 'अंशुबोधिनी' में आठ प्रकार के विमानों का वर्णन है – (1) बिजली से चलने वाला (2) अग्नि, वायु, जल आदि से चलने वाला (3) वाष्प से चलने वाला (4) पंचसिखी तेल से चलने वाला (5) सूर्य किरणों से चलने वाला (6) चुम्बक से चलने वाला (7) सूर्यकान्त अथवा चन्द्रकान्त मणियों से चलने वाला (8) केवल वायु से चलने वाला।

उस समय न केवल पुष्पक जैसे स्वचालित विमान थे, बल्कि अन्तरिक्ष यानों का भी प्रयोग होता था। तकनीक इतनी उन्नत थी कि विश्वामित्र द्वारा अंतरिक्ष में 'त्रि–शंकु' स्थापना (अन्तरिक्ष स्टेशन) एक उदाहरण बन गया। आधुनिक विज्ञान त्रिशंकु स्थल की ऊंचाई 36000 किमी नापता है और इसको भू–स्थिर केन्द्र (geostationery centre) कहता है।

विद्यावाचस्पति पं. मधुसूदन ओझा अपने 'इन्द्रविजय' नामक ग्रन्थ में ऋग्वेद के छत्तीसवें सूक्त के प्रथम मंत्र का अर्थ लिखते हैं कि ऋभुओं ने तीन पहियों वाला ऐसा रथ बनाया जो अन्तरिक्ष में उड़ सकता था। भागवत में कर्दम ऋषि की कथा आती है, जिसमें वे अपनी पत्नी को विमान से सम्पूर्ण विश्व का दर्शन कराते हैं। विमानचालक (पायलट) को उस समय 'रहस्य अधिकारी' कहा जाता था। भरद्वाज मुनि ने विमान चलाने के बत्तीस रहस्य (पायलट) बताए हैं अर्थात् बत्तीस प्रकार के विमान चालकों का वर्णन किया है। श्रीलंका में रावण के हवाई अड्डों का हाल ही में पता लगाया गया है। इससे प्रमाणित होता है कि विमान–विद्या की जानकारी रामायण काल में भी भारतीयों को थी।

8. खगोल विज्ञान

खगोल को वेद का नेत्र कहा गया है। यजुर्वेद के 18 वें अध्याय के चालीसवें मंत्र में बताया गया है कि सूर्य किरणों के कारण चन्द्रमा प्रकाशित होता है। आज से 1500 से अधिक वर्ष पूर्व पाटलिपुत्र में एक वेधशाला थी, जिसका प्रयोग कर आर्यभट्ट ने कई निष्कर्ष निकाले। आर्यभट्ट ने ही सबसे पहले यह सिद्ध किया था कि सूर्य स्थिर रहता है एवं पृथ्वी व अन्य ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। पृथ्वी के परिक्रमा करने से ऋतुएँ बदलती हैं तथा पृथ्वी के अपने अक्ष पर परिभ्रमण करने से दिन और रात बनते हैं। नक्षत्रों के विषय में प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक गर्ग के सिद्धान्त को आज के पश्चिमी जगत के वैज्ञानिक सिद्धान्तों से पुष्टि मिली और यूरोप के वैज्ञानिकों ने गर्ग के सिद्धान्तों के अनुरूप ही अपने

अनुसंधानों की दिशा रखी। पृथ्वी के स्वरूप को 'जैमिनीय ब्राह्मण' में गोलाकार माना गया है। न केवल पृथ्वी बल्कि सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य नक्षत्र भी गोल हैं। वैदिक वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया कि पृथ्वी की उत्पति 1,97,70,00000 वर्ष पूर्व हुई थी, जिसकी पुष्टि पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने दो अरब वर्ष गणना करके बताई। आजकल जिसे हम न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त कहते हैं, उसको न्यूटन से 550 वर्ष पूर्व भास्कराचार्य ने बता दिया था।

9. वस्त्र उद्योग

प्राचीन काल से ही भारत वस्त्र निर्माण के क्षेत्र में अग्रणी रहा है। ईसा की आरम्भिक सदियों में रोम में भारतीय वस्त्रों की बड़ी माँग थी। ढाका की मलमल सारे विश्व में प्रसिद्ध थी। यह मलमल इतनी महीन होती थी कि इसका बीस गज लम्बा थान सिगार के एक बाक्स में (8"x4"x1") में समा सकता था। नवीं शताब्दी में अरब से दो यात्री यहाँ आए। उन्होंने लिखा है कि भारतीय वस्त्र इतने असामान्य हैं कि ऐसे वस्त्र और कहीं देखे नहीं गये। यहाँ इतना महीन, इतनी सफाई व सुन्दरता का वस्त्र बनता है कि एक पूरा थान अँगूठी के अन्दर से निकाल लिया जाये।

ऐसे वस्त्र जहाँ बनते थे उन कुटीर उद्योगों को अंग्रेजों ने षड्यन्त्रपूर्वक नष्ट किया। जो अँगूठे उन्हें बनाते थे उन्हें काट दिया गया।

वैदिक काल तथा रामायण काल में भले ही आज जैसी प्रयोगशालायें और अनुसंधान केन्द्र नहीं थे, किन्तु उसके स्थान पर मनीषियों के आश्रम (तपोवन) थे, जिनमें रहकर शिष्यगण अपने विषय में निष्णात हो जाते थे एवं सत्संग (seminar) द्वारा सत्यान्वेषण करते थे। ऋषि-मुनियों के ये आश्रम ही विज्ञान धाम थे।

10. वनस्पति विज्ञान

वैदिक काल से ही भारत में प्रकृति के निरीक्षण , परीक्षण एवं विश्लेषण की प्रवृत्ति रही है। अथर्ववेद में पौधों की आकृति तथा अन्य लक्षणों के आधार पर उन्हें सात भागों में बाँटा गया है। (1) वृक्ष (2) औषधि (3) गुल्म (4) लता (5) अवतान (6) तृण (7) वनस्पति ।

महाभारत के शान्ति पर्व के 184 वें अध्याय में महर्षि भरद्वाज व भृगु का संवाद है। इसमें महर्षि भृगु पौधों में जीवन होने की बात सिद्ध करते हैं।

वृक्ष आयुर्वेद :- वृक्ष आयुर्वेद नाम के ग्रंथ के रचयिता महर्षि पराशर थे। इसमें बीज से वृक्ष बनने तक का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। इस ग्रन्थ के अंग्रेजी

अनुवाद को यूनेस्को ने प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थ में जो वैज्ञानिक विवेचन किया गया है, वह विस्मयकारी है। इस पुस्तक के कुल आठ हिस्से हैं, जिसमें पहला भाग बीजोत्पत्ति काण्ड है। इसमें बीज से वृक्ष बनने तक की विकास यात्रा का विवेचन है। इसके दूसरे भाग में पत्र, पुष्प, मूल, छाल, कंटक, प्ररोह आदि वृक्ष के विभिन्न अंगों का वर्णन है। इसमें मिट्‌टी के गुण आदि का भी विवरण है। इस ग्रन्थ में वनों के चौदह प्रकारों का उल्लेख है। इसके चौथे अध्याय में फिजियोलॉजी का वर्णन है। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के सम्बन्ध में बताया गया है –

पत्राणि वातआतपम् रंजकानि अधिगृह्णन्ति।

वात (co_2) और आतप (sunlight) रंजक (क्लोरोफिल–हरा रंग) के साथ मिलकर (अर्थात् कार्बनडाईऑक्साइड व क्लोरोफिल मिलकर) सूर्य के प्रकाश से अपना भोजन बनाते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि ईसा से हजार वर्ष पूर्व हमारे ऋषियों (वैज्ञानिकों) को वनस्पतिशास्त्र का गहरा ज्ञान था। प्रसिद्ध ग्रन्थ Scientific Heritage of India में चरक, सुश्रुत व महर्षि पराशर आदि ने वृक्षों का वर्गीकरण किया है, उसका उल्लेख है।

1895 के आस पास जगदीशचन्द्र बसु ने वनस्पति में जीवन होने की बात सिद्ध की। उस समय पश्चिम के वैज्ञानिकों की क्या हालत थी, उसकी मिसाल निम्न प्रसंग से ज्ञात होती है। – **रॉयल साइंटिफिक सोसायटी में जब जगदीशचन्द्र बसु का भाषण होने वाला था तो इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध बायोलोजिस्ट हास्टॉग से हॉब्ज नामक विद्वान ने कहा कि क्या आप उस भाषण को सुनने चलेंगे? इस पर वैज्ञानिक हास्टॉग की प्रथम प्रतिक्रिया थी – 'मैं अभी होश में हूँ, मैंने पी नहीं रखी है। आपने कैसे समझ लिया कि मैं ऐसी वाहियात बातों पर विश्वास करूँगा?' बाद में यद्यपि वे भाषण सुनने गये। बसु के भाषण के उपरान्त जब प्रश्नोत्तर के सत्र में प्रश्न पूछने का अवसर श्रोताओं को दिया गया तो पूर्ण सन्तोष (satisfication) की मुद्रा में हास्टॉग महोदय ने कहा – अब पूछने लायक कुछ नहीं है, क्योंकि बसु महोदय ने अत्यन्त ही प्रामाणिकता से अपनी बात सिद्ध की है।**

11. कृषि विज्ञान

भारत प्रारम्भ से ही कृषि प्रधान देश रहा है। अतः कृषि विज्ञान यहाँ उन्नत अवस्था में था। यूरोपीय वनस्पति विज्ञान के जनक 'रोम्सबर्ग' के अनुसार कृषि की भारतीय पद्धति को पश्चिम ने बाद में अपनाया। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ

ऋग्वेद में कृषि का गौरवपूर्ण उल्लेख मिलता है। कृषि–पाराशर के श्लोक 8 में लिखा है – **कृषिर्धन्या कृषिर्मेध्या जन्तूनां जीवनं कृषिः।** अर्थात् कृषि सम्पत्ति और मेधा प्रदान करती है और कृषि ही मानव जीवन का आधार है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कृषि, कृषि उत्पादन, लगान वसूली आदि का विस्तृत वर्णन है। यूनानी यात्री मेगस्थनीज लिखता है कि जल के समान वितरण को निश्चित करने के लिये तथा नदियों व कुँओं की निगरानी के लिये राजा द्वारा अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी।

इसके अलावा कृषि के सन्दर्भ में नारद स्मृति, विष्णुधर्मोत्तर, अग्निपुराण, ऋषि पाराशर के वृक्षायुर्वेद आदि ग्रन्थों में बड़े वैज्ञानिक ढंग से उल्लेख मिलता है।

भारतीय कृषि की विशेषता एवं इसके उपकरणों की प्रशंसा यूरोपीय विद्वानों द्वारा भी की गई है। बीज को पंक्ति में बोने के तरीके को आस्ट्रिया में 1662 में अपनाया गया तथा इंग्लैण्ड में 1730 में। मेजर जनरल अलेक्जेंडर वाकर के अनुसार पंक्ति में बोने का प्रचलन भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से है। भारत में विश्व की किसी भी देश की तुलना में अधिक किस्मों का अनाज बोया जाता था। वाकर लिखते हैं कि हम भारत को क्या दे सकते हैं? क्योंकि जो खाद्यान्न हमारे यहाँ हैं वे तो भारत में हैं ही, और भी ऐसे अनेक प्रकार के खाद्यान्न भारत में हैं जो हमारे यहाँ नहीं है।

12. भारतीय कालगणना

हमारे ऋषि–मुनियों ने हजारों वर्ष पूर्व ही सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहों की गति और भ्रमण के मार्ग का सही–सही पता लगा लिया था। उनका कालगणना सम्बन्धी ज्ञान, खगोल और भूगोल की जानकारी अत्यन्त विकसित थी।

सर्वप्रथम उन्होंने ऋतु–काल–चक्र के अनुसार सौर–वर्ष की कल्पना की और पूर्णिमा के आधार पर वर्ष को बारह भागों में विभाजित किया। एक सौर वर्ष में 12 पूर्णिमाएँ आती है। इसी कारण वर्ष विभाजन 12 भागों में किया गया है। इन मासों के नाम भी उन नक्षत्रों के नाम पर रखे गये है, जिन पर चन्द्रमा पूर्णता को प्राप्त करता है। अर्थात् चन्द्रमा पूर्णिमा के दिन जिस नक्षत्र में होगा, उसे वैसा ही नाम दिया गया है।

ईस्वी सन् सूर्य पर आधारित है तथा इस्लाम का हिजरी सम्वत् चन्द्रमा पर आधारित है, जबकि हिन्दू काल गणना पद्धति सूर्य व चन्द्रमा दोनों ही पर आधारित है। इसलिये इसे सौर–चन्द्र कालगणना पद्धति कहते हैं। सूर्य की स्थिति में हम युग, वर्ष, अयन, ऋतुओं और दिन–रात का ज्ञान करते हैं और चन्द्रमा की गति से

तिथि, पक्ष, माह, (अधिक) मल-मास और रात्रि के विभिन्न प्रहरों का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

अमावस्या की समाप्ति पर सूर्य-चन्द्र दोनों एक समान अंश पर एक नक्षत्र पर रहते हैं। चन्द्रमा की गति तीव्र है। वह लगभग एक दिन में एक नक्षत्र और तीन दिनों में पूरे राशि-चक्र की परिक्रमा कर लेता है। इसलिये जब चन्द्रमा सूर्य से बारह अंश आगे बढ़ जाता है तो इस समयावधि की पहली तिथि को प्रतिपदा कहा जाता है। जब 12 से 24 का अन्तर होगा तब द्वितीया तिथि होगी। इस प्रकार पूर्णिमा को चन्द्रमा सूर्य से 180 अंश के अन्तर पर होगा। फिर यह अन्तर कम होने लगेगा और अमावस्या को पुनः सूर्य चन्द्र एक अंश पर होंगे। इस प्रकार तिथि, पक्ष और माह चन्द्रमा की गति के आधार पर बनते हैं।

एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा के बीच का माह 29 दिन 12 घण्टे 44 सैकण्ड का होता है। प्रत्येक माह में दो पक्ष होते हैं। कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा प्रतिदिन एक कला से घटता हुआ अमावस्या को क्षय हो जाता है। शुक्ल पक्ष में फिर एक-एक कला से बढ़ता हुआ पूर्णिमा को 360 अंश के पूर्णवृत्त में प्रकाशमान् होता है। चन्द्र वर्ष औसत मान से 354 दिन का होता है और सौर वर्ष 365 दिन 6 घण्टे का। इस प्रकार सौर वर्ष और चन्द्र वर्ष में 11 दिन 6 घण्टे का अन्तर होता है। यदि इसे चलने दिया जाये तो तीन वर्ष में अन्तर लगभग एक माह का हो जायेगा। ऋतु चक्र तो सूर्य की गति से चलता है, इसलिये सौर वर्ष के साथ अन्तर बढ़ने पर हमारे त्यौहार और महीनों का ऋतुओं के साथ मिलान नहीं होगा। फिर दीपावली कभी गर्मियों में पड़ेगी तो कभी वर्षा में। श्रावण का महीना कभी ठंड में पड़ेगा तो कभी गर्मियों में। इस अव्यवस्था को रोकने के लिये हिन्दू ज्योतिषियों ने चन्द्रमासों का सम्बन्ध सूर्य की संक्रान्ति के साथ कर दिया।

संक्रान्ति :- लगभग एक माह में सूर्य के एक राशि में प्रवेश को सूर्य की संक्रान्ति कहते हैं। मेष-संक्रान्ति 13 अप्रैल को और मकर-संक्रान्ति 14 जनवरी को पड़ती है।

एक अमावस्या से दूसरी अमावस्या के बीच एक संक्रान्ति पड़नी आवश्यक है। चैत्र अमावस्या से वैशाख अमावस्या के बीच 13 अप्रैल को मेष-संक्रान्ति अवश्य पड़ेगी। जब ऐसा नहीं होता है तो अधिक मास होता है। संक्रान्ति रहित मास को अधिक मास कहते हैं। प्रत्येक तीन वर्ष में एक बार अधिक मास पड़ता है। वह वर्ष 13 माह का होता है। इस प्रकार सूर्य-चन्द्र दोनों वर्षो के अन्तर को समन्वित कर बराबर किया जाता है। यही कारण है कि हमारे चन्द्रमास और पर्व-त्यौहार ऋतु चक्र का अतिक्रमण नहीं करते।

12 माह में बारह संक्रान्तियाँ होती हैं। मकर संक्रान्ति से उत्तरायण का प्रारम्भ होता है और कर्क संक्रान्ति से दक्षिणायन का। इसी कारण भूगोल में पृथ्वी के मानचित्र पर विषुवत रेखा के दोनों ओर 23 अंश पर मकर रेखा व कर्क रेखा की अवधारणा है।

तिथि का प्रारम्भ सूर्योदय से – भारतीय ज्योतिष के अनुसार तिथि वार का प्रवेश सूर्योदय से माना जाता है, अर्द्ध–रात्रि से नहीं। सूर्योदय के समय जो तिथि होती है वह तिथि सारे दिन अर्थात् अगले दिन तक मानी जाती है। किन्तु तिथि का वास्तविक प्रारम्भ चन्द्र–सूर्य के अन्तर की गणना पर निर्भर करता है। इसलिये कोई तिथि 24 घण्टे से अधिक समय तक चलती है तो वह दो सूर्योदय व्यापिनी होने के कारण अधिक तिथि कहलाती है तथा जब कोई तिथि सूर्योदय के पश्चात् प्रारम्भ होती है और अगले सूर्योदय से पहले समाप्त हो जाती है तो उसे क्षय–तिथि कहते हैं। यही कारण है कि मास में तिथि न्यूनाधिक होती रहती हैं।

सृष्टि का प्रारम्भ – भारतीय ज्योतिष के अनुसार 1,95,58,85,114 वर्ष (एक अरब पचानवें करोड़ अट्ठावन लाख पच्चासी हजार एक सौ चौदह) पूर्व चैत्र शुक्ल प्रतिपदा रविवार के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय अश्विनी नक्षत्र मेष राशि में सब ग्रह एकत्र थे और यही हमारी सृष्टि का रचना काल है।

दिन अथवा वार – पृथ्वी अपनी धुरी पर 1600 कि.मी. प्रति घण्टे की गति से घूमती है। इस चक्र को पूरा करने में उसे 24 घण्टे का समय लगता है। इसमें 12 घण्टे पृथ्वी का जो भाग सूर्य के सामने रहता है, उसे 'अहः' तथा जो पीछे रहता है, उसे 'रात्र' कहते हैं। इस प्रकार एक अहोरात्र में 24 होरा (घंटे) होते हैं। इसे सावन–दिन या भू–दिन कहा गया।

पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा एक लाख कि.मी. प्रति घण्टा की रफ्तार से कर रही है। पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए चन्द्रमा 12 अंश चलता है वह तिथि कहलाता है।

सप्ताह – सप्ताह के दिन व क्रम भारत में ही खोजे गये हैं। सारी दुनिया सप्ताह के दिनों की गणना इसी आधार पर करती है। पृथ्वी से दूरी के आधार पर ग्रहों का क्रम निर्धारित किया गया है। यथा – शनि, गुरु, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा। इसमें चन्द्रमा पृथ्वी के सबसे पास है, तो शनि सबसे दूर। इन ग्रहों के आधार पर सप्ताह के दिनों में नाम रखे गये हैं।

पक्ष – पृथ्वी की परिक्रमा में चन्द्रमा का 12 अंश चलना एक तिथि कहलाता है। अमावस्या को चन्द्रमा पृथ्वी तथा सूर्य के मध्य में रहता है। इसे शून्य अंश कहते है। यहाँ से चलते हुए जब चन्द्रमा सूर्य से 180 अंश के अन्तर पर आता है तो उसे

पूर्णिमा कहते हैं। इस प्रकार एकम् से पूर्णिमा वाला पक्ष शुक्ल पक्ष और एकम् से अमावस्या वाला पक्ष कृष्ण पक्ष कहलाता है।

नक्षत्र – काल गणना के लिये आकाश में स्थित 27 नक्षत्र माने गये हैं –
(1) अश्विनी (2) भरणी (3) कृत्तिका (4) रोहिणी (5) मृगशिरा (6) आर्द्रा (7) पुनर्वसु (8) पुष्य (9) अश्लेषा (10) मघा (11) पूर्वा फाल्गुनी (12) उत्तरा फाल्गुनी (13) हस्त (14) चित्रा (15) स्वाति (16) विशाखा (17) अनुराधा (18) ज्येष्ठा (19) मूल (20) पूर्वाषाढ़ा (21) उत्तराषाढ़ा (22) श्रवण (23) धनिष्ठा (24) शतभिषा (25) पूर्वभाद्रपद (26) उत्तराभाद्रपद (27) रेवती

यह अनुभव किया गया कि आकाश में जिस स्थान पर पूर्णिमा का चन्द्रमा देखा गया, ठीक उसी स्थान पर सत्ताइसवें दिन फिर आ जाता है। इसलिये यह निश्चित हुआ कि सत्ताईस दिनों में ही चन्द्रमा आकाश की (पृथ्वी की) परिक्रमा पूरी कर लेता है। अतः भारतीय मनीषियों ने चन्द्रमा के कक्ष के ऊर्ध्वस्थित सब तारों को सत्ताईस भागों में बांट दिया। यही सत्ताईस तारे सत्ताईस नक्षत्र कहलाये।

राशियाँ – सम्पूर्ण आकाश मण्डल को 360 अंशों में बाँटा गया है, जो कि 12 भागों में विभक्त है। इस प्रकार 30 अंशों की एक राशि हुई। ज्योतिष की कल्पना एक काल–पुरुष में करके उसके बारह अंशों पर बारह राशियों का अधिकार माना गया है – (1) मेष (2) वृष (3) मिथुन (4) कर्क (5) सिंह (6) कन्या (7) तुला (8) वृश्चिक (9) धनु (10) मकर (11) कुंभ (12) मीन।

पृथ्वी पर इन राशियों की रेखा खींची गई, जिसे क्रान्ति कहते हैं। इस प्रकार सूर्य अपने परिभ्रमण में जिस राशि चक्र में आता है, उस क्रान्ति के नाम से सौर–मास कहलाता है। यह साधारणतः वृद्धि तथा क्षय से रहित है।

मास (चन्द्रमास) – प्रत्येक पूर्णिमा में आकाश के जिस नक्षत्र मण्डल में चन्द्रमा रहता है, उसी नक्षत्र के नामानुसार महीने का नाम रखा गया है। वर्ष के जिस मास को हम वैशाख कहते हैं, उस समय चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र में आता है तथा पूर्णिमा होती है। इसके बाद पूर्णिमा ज्येष्ठा नक्षत्र में हुई तो वैशाख के बाद जो मास आया, उसका नाम ज्येष्ठ हुआ। यथा –

क्र. नाम मास	**पूर्णिमा नक्षत्र**	**क्र. नाम मास**	**पूर्णिमा नक्षत्र**
1. चैत्र	चित्रा	4. आषाढ़	पूर्वा/उत्तराषाढा
2. वैशाख	विशाखा	5. श्रावण	श्रवण
3. ज्येष्ठ	ज्येष्ठा	6. भाद्रपद	पूर्वा/उत्तराभाद्रपद
7. आश्विन	अश्विनी	10. पौष	पुष्य

8. कार्तिक	कृत्तिका	11. माघ	मघा
9. मार्गशीर्ष	मृगशिरा	12. फाल्गुन	पूर्वा/उत्तरा फाल्गुनी

वर्ष - पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक लाख कि.मी. प्रति घण्टे की गति से 96,60,00,000 कि.मी. लम्बे पथ का 365.5 दिन में एक चक्र पूरा करती है। इस समयावधि को वर्ष माना गया है।

अयन - अयन दो प्रकार के होते हैं - (1) उत्तरायण (2) दक्षिणायन । इन अयनों का एक मानव वर्ष होता है।

दिव्य दिन - दोनों अयन मिलकर देवताओं के लिये एक दिन-रात हैं जिसे दिव्य दिन कहा जाता है।

युग - 4,32,000 वर्षों में सातों ग्रह एक ही राशि में आते हैं। इस युति (योग) के काल को कलियुग कहा गया। इस प्रकार दो युति को द्वापर, तीन युति को त्रेता तथा चार युति को सतयुग कहा गया। काल चक्र का संख्यात्मक विस्तार निम्न प्रकार है-

सतयुग - 17,28,000 वर्ष	त्रेतायुग - 12,96,000 वर्ष
द्वापर युग - 8,64,000 वर्ष	कलियुग - 4,32,000 वर्ष
	महायुग (एक चतुर्युगी)- 43,20,000 वर्ष

कलियुग -वर्तमान कलियुग का प्रारम्भ भारतीय गणना के अनुसार ईसा से 3102 वर्ष पूर्व 20 फरवरी को दो बजकर 27 मिनिट तथा 30 सैकण्ड पर हुआ। उस समय सभी ग्रह एक ही राशि में थे। भगवान श्रीकृष्ण जिस दिन, जिस क्षण अपनी लीला समेटकर स्वधाम गये, उसी दिन से कलियुग का प्रारम्भ हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण इस धरती पर 125 वर्ष रहे।

महायुग - सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग इन चार युगों का एक महायुग कहलाता है। अर्थात् एक चतुर्युग को महायुग कहते हैं।

मण्डल - वैदिक ऋषियों के अनुसार वर्तमान सृष्टि पांच मण्डल क्रम वाली है। 1. चन्द्रमण्डल 2. पृथ्वी मण्डल 3. सूर्य मण्डल 4. परमेष्ठी मण्डल (आकाश गंगा) 5. स्वयंभू मण्डल। ये अपने-अपने उत्तरोत्तर मण्डल का चक्कर लगाते रहते है।

मन्वन्तर - सूर्य मण्डल के परमेष्ठी मण्डल (आकाश गंगा) के केन्द्र का चक्र पूरा होने पर उसे मन्वन्तर काल कहा गया। मन्वन्तर का माप 30,67,20,000 वर्ष है। आधुनिक मान के अनुसार सूर्य 25 से 27 करोड़ वर्ष में आकाश गंगा के केन्द्र का चक्र पूरा करता है।

कल्प - परमेष्ठी मण्डल स्वयंभू मण्डल का परिभ्रमण कर रहा है। अर्थात् आकाश गंगा स्वयंभू-मण्डल के केन्द्र का चक्कर लगा रही है। इस काल को कल्प कहा गया है। इसका मान चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष (4,32,00,00,000 वर्ष) है।

ब्रह्मा का दिन - कल्प को ब्रह्मा का दिन भी कहा गया है। जितना बड़ा दिन उतनी ही बड़ी रात। अत: ब्रह्मा का अहोरात्र (रात-दिन) 864 करोड़ वर्ष हुआ। (अर्थात् 8 अरब 64 करोड़ वर्ष)

ब्रह्मा का वर्ष - ब्रह्मा का वर्ष = 31 खरब 10 अरब 40 करोड़ वर्ष । (640000000x360)

ब्रह्मा की आयु (ब्रह्माण्ड की आयु) = ब्रह्मा की 100 वर्ष की आयु अर्थात् ब्रह्माण्ड की आयु = 31 नील, 10 खरब, 40 अरब वर्ष (31,10,40,00,00,00,000 वर्ष)।

भारतीय कालगणना को देखकर यूरोप के प्रसिद्ध ब्रह्माण्ड विज्ञानी कार्ल सेगन ने अपनी पुस्तक 'कॉसमॉस' (Cosmos) में लिखा है -'विश्व में हिन्दू धर्म एकमात्र ऐसा है, जो इस विश्वास पर समर्पित है कि इस ब्रह्माण्ड में उत्पत्ति और लय की एक सतत् प्रक्रिया चल रही है और यही धर्म है, जिसने समय के सूक्ष्मतम से लेकर बृहत्तम माप जो सामान्यत: दिन रात से लेकर 8 अरब 64 करोड़ वर्ष के ब्रह्म अहोरात्र तक की गणना की है, जो आधुनिक खगोलीय माप के निकट है।'

काल की इकाइयाँ - काल की सूक्ष्मतम इकाई परमाणु है और महत्तम इकाई ब्रह्म आयु है। आज से हजारों वर्ष पूर्व शुकदेव मुनि ने इकाइयों के विभिन्न माप निम्नानुसार बताए हैं -

काल की सूक्ष्म इकाइयाँ -

2 परमाणु = 1 अणु	5 क्षण = 1 काष्ठा	2 पक्ष = 1 मास
3 अणु =1 त्रसरेणु	15 काष्ठा = 1 लघु	2 मास = 1 ऋतु
3 त्रसरेणु = 1 त्रुटि	15 लघु=1 नाड़िका (घड़ी)	3 ऋतु = 1 अयन
100 त्रुटि =1 वेध	2 नाड़िका (घड़ी)=1 मुहूर्त	2 अयन = 1 वर्ष
3 वेध =1 लव	30 मुहूर्त = 1 दिन रात	
3 लव =1 निमेष	7 दिन = 1 सप्ताह	
3 निमेष = 1 क्षण	2 सप्ताह = 1 पक्ष	

घटी-पलों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है -

60 घटी = 1 दिन　　1 घटी = 24 मिनिट　　1 मिनिट = 2.5 पल

1 पल = 60 प्रतिपल (24 सैकण्ड)

1 प्रतिपल = 60 विप्रतिपल या 1/150 सैकण्ड

शुक मुनि की गणना के अनुसार दिन–रात में 3,28,05,00,000 परमाणु काल होते है तथा एक दिन–रात में 86400 सैकण्ड होते हैं। इसका अर्थ है समय का सूक्ष्मतम माप होगा –

एक परमाणु काल = सैकण्ड का 37968 वां हिस्सा ।

काल की बृहद इकाइयां –

सतयुग से कलयुग (एक चतुर्युगी) = 4320000 वर्ष

71 महायुग (चतुर्युग) = एक मन्वन्तर = 306720000 वर्ष

एक कल्प = ब्रह्मा का एक दिन = 1000 महायुग = 4320000000 वर्ष

ब्रह्मा का अहोरात्र = 864 करोड़ वर्ष

इस प्रकार 100 वर्ष ब्रह्मा की आयु । ब्रह्मा के बाद विष्णु का एक निमेष (आँख झपकने के काल को निमेष कहते हैं) होता है और विष्णु के बाद रुद्रकाल प्रारम्भ होता है जो स्वयं काल रूप है और अनन्त है। इसलिये कहा जाता है, 'काल अनन्त है'।

इस काल में 18000 बार पृथ्वी बनकर प्रलय हो चुकी है। इस प्रकार हमारी पृथ्वी 18001 वीं है। और एक कम इतनी ही बार प्रलय और निर्माण पुनः होगा। ब्रह्मा अपनी आयु में सृष्टि का ध्वंस और निर्माण 36000 बार करते हैं।

महाभारत के मोक्ष पर्व में अध्याय 231 में कालगणना निम्नानुसार दी गई है –

15 निमेष = 1 काष्ठा

30 काष्ठा = 1 कला

30 कला = 1 मुहूर्त

30 मुहूर्त = 1 दिन–रात

हजारों वर्षों तक जो देश जगद्गुरु रहा, उस पर पिछले 1500 वर्षों में हुए बर्बर आक्रमणों, कुछ अपने सामयिक दोषों, मजहबी हमलों की लूट और अंग्रेजों के 200 वर्षों के शासन में देश का इतना शोषण हुआ कि यहाँ के कृषि, व्यापार, उद्योग सभी नष्ट हो गये। हमारे कितने ही पुस्तकालय जला दिये गये। इन सभी में हमारा जितना नुकसान हुआ उसकी गणना यदि धन–सम्पत्ति के स्थान पर ज्ञान के भण्डार को हुई क्षति के रूप में की जाए तो उसकी बराबरी अन्य किसी हानि से नहीं की जा सकती।

●●●

विविध लेख

(1)	भारतीय जीवन में आर्ष साहित्य और शिक्षा	श्री दीनदयाल ओझा
(2)	वैदिक साहित्य परिचय	श्री मेघराज पालीवाल
(3)	श्रीमदभगवद्‌गीता माहात्म्य एवं बहिरंग परिचय	श्री सगराम काला
(4)	गीता में वर्णित मनुष्य की जातियाँ	श्री केसरसिंह राठौड़
(5)	सहकारिता दर्शन –भारतीय ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में	श्री हरिराम खत्री
(6)	वैदिक जीवन में आश्रम व्यवस्था	श्री नरपतसिंह
(7)	पारिवारिक आदर्श	श्रीमती शशिबाला शर्मा
(8)	जीवेम शरदः शतम् (सौ वर्ष तक जीने के सूत्र)	श्री भगवानाराम सैन
(9)	सुसंगठित होने के लिये प्रार्थना	श्री राजेश व्यास
(10)	आर्थिक समृद्धि के लिये प्रार्थना	श्री अमृत भूतड़ा
(11)	आचार्य की गरिमा	श्री उदयसिंह
(12)	प्राचीन भारत में युद्ध एवं सैन्य विज्ञान	डॉ. लक्ष्मीनारायण नागौरी
(13)	बालक के लालन–पालन के लिए शास्त्र विधान	श्रीमती रजनी गोपा
(14)	अष्टावक्र गीता	श्री सत्यनारायण गौतम

भारतीय जीवन में आर्ष–साहित्य और शिक्षा

– श्री दीनदयाल ओझा
(वरिष्ठ साहित्यकार)

भारतीय जीवन दर्शन और तद्जन्य जीवन शैली में आर्ष–साहित्य का सदा–सर्वदा से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसी आर्ष– साहित्य ने चारों आश्रमों और राज–काज तथा समाज को पावनतम रखते हुए हमारी संस्कृति का संरक्षण किया और शिक्षा को सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाकर भारत को विश्वगुरु बनाया।

आर्ष–साहित्य का बहुआयामी अर्थ – सबसे पहले तो हमें 'आर्ष' शब्द का अर्थ समझना होगा। वामन शिवराम आप्टे के संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश के अनुसार : **आर्ष (वि॰) (स्त्री॰–र्षी){ऋषेरिदम्–अण्}–ऋषि द्वारा प्रयुक्त, ऋषि सम्बन्धी, आर्ष, वैदिक, पवित्र, पावन, (पृ.सं. 173)। लोक भारती प्रामाणिक हिन्दी कोश, आचार्य रामचन्द्र वर्मा के अनुसार आर्ष का अर्थ है, ऋषि– सम्बन्धी, ऋषि–प्रणीत, ऋषि–कृत, वैदिक** (पृ.सं. 84)।

इसी तरह साहित्य का अर्थ; हिन्दी साहित्य कोश (भाग : पारिभाषिक शब्दावली) वाराणसी, ज्ञानमण्डल लिमिटेड के अनुसार साहित्य= सहित +यत् प्रत्यय। यहाँ साहित्य का अर्थ है, "शब्द और अर्थ का यथावत् सहभाव" अर्थात् साथ होना। इस प्रकार सार्थक शब्दमात्र का नाम साहित्य है। साहित्य की यह परिभाषा अत्यन्त व्यापक है और इसमें मनुष्य की सारी बोधन और भावन चेष्टा समाविष्ट हो जाती है तथा समस्त ग्रन्थ समूह साहित्य के अन्तर्गत आ जाते हैं। साहित्य मनुष्य के भावों और विचारों की समष्टि है। (पृ.सं. 920)

भारत की शिक्षा, समाज और संस्कृति के संदर्भ में आर्ष–साहित्य का मूल्यांकन किया जाए तो लगता है कि भारत के श्लाघनीय जीवन, शिक्षा और नीति–निर्धारण में आर्ष–साहित्य का अंग्रेजों की सत्ता के पूर्व तक महत्वपूर्ण योगदान रहा। वेद, पुराण, उपनिषद्, गीता, स्मृतियाँ, महाभारत, रामायण आदि साहित्य भारतीय संस्कृति के अंग रहे हैं। दुर्भाग्य है कि इनके शिक्षण की व्यवस्था समुचित रूप से नहीं हो रही है। परिणाम, युवा पीढ़ी न केवल इनके ज्ञान से वंचित है, अपितु संस्कृति से भी दूर होती

जा रही है। महामना मदन मोहन मालवीय के अनुसार, 'युवकों को वह शिक्षा मिलना बहुत जरूरी है जिससे कि वे अपने सामने सर्वोत्तम आदर्श रखें।' स्वामी विवेकानन्द का मानना है कि 'मनुष्य में जो संपूर्णता गुप्त रूप से विद्यमान है, उसे प्रत्यक्ष करना ही शिक्षा का कार्य है।' प्लेटो का कहना है कि शरीर और आत्मा में अधिक से अधिक सौन्दर्य और जितना सम्पूर्णता का विकास हो सकता है उसे सम्पन्न करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। मुंशी प्रेमचन्द 'प्रेम पच्चीसी' में लिखते हैं, **जो शिक्षा हमें निर्बलों को सताने के लिए तैयार करे, हमें धरती और धन का गुलाम बनाये, जो हमें भोग विलास में डुबाये, जो हमें दूसरों का रक्त पीकर मोटा होने का इच्छुक बनाये, वह शिक्षा नहीं भ्रष्टता है।**

प्रत्येक राष्ट्र की शिक्षा पद्धति उसकी सनातन संस्कृति के अनुसार होती है। भारत जब तक अपने नीतिज्ञ नृपों द्वारा शासित और योग्य गुरुजनों, ऋषियों तथा आचार्यों द्वारा ज्ञानार्जन करता रहा तब तक उसने चारों पुरूषार्थों, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को प्राप्त कर सर्वदा आदर्श जीवन जीया। अथर्ववेद की ऋचा है – ''हमारे शिक्षक, नेता और अधिकारी ब्रह्मचारी हों। वे चरित्र भ्रष्ट न हों अन्यथा अनर्थमूलक, असामाजिक तत्वों का विकास होगा और राष्ट्र पतित हो जायेगा।'' (अथर्ववेद 11–5–16)। जब शिक्षा आत्मोत्थान और समाज के गुणात्मक विकास से जुड़ी रहती है तब भावात्मक और क्रियात्मक प्रवृत्तियाँ पतनोन्मुखी नहीं, सदा ऊर्ध्वमुखी बनी रहती हैं। मात्र जीविका की इच्छा से विद्या का अर्जन करना आर्ष–साहित्य में हेय माना गया है। महाभारत के शांतिपर्व में वेदव्यासजी कहते हैं– ''नृप जो जीविका की इच्छा से विद्या का उपार्जन करते हैं, सम्पूर्ण दिशाओं में उसी विद्या के बल से यश और मनोवांछित पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं वे सभी पापात्मा और धर्मद्रोही हैं।''

लॉर्ड मैकॉले ने दिनांक 2 फरवरी 1835 को ब्रिटेन की संसद में कहा था– ''मैने पूरे भारत का भ्रमण किया। वहां एक भी भिखारी या चोर नहीं मिला। इतनी सम्पत्ति उस राष्ट्र में देखी, उत्तम नैतिक मूल्यों के अनुपालन करने वाले, उच्च बुद्धिजीवियों को देखा। मैं नहीं समझता कि उस राष्ट्र को हम कभी जीत पायेंगे, जब तक उस राष्ट्र की रीढ़ को नहीं तोड़ेंगे और वह है उस राष्ट्र की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक परम्परा। अतः मैं यह प्रस्ताव रखता हूँ कि हमें उस राष्ट्र यानी भारत की प्राचीन शिक्षा

प्रणाली को परिवर्तित करना है।'' मैकाले की सिफारिश पर भारतीय शिक्षा व्यवस्था बदल दी गई।

'कल्याण' पत्रिका के ''जीवनचर्या अंक'', जनवरी 2010 में अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरी पीठाधीश्वर **स्वामी श्री निश्चलानन्द सरस्वती** जी महाराज लिखते हैं– ''पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और तदनुरूप जीविकोपार्जन की विद्या से संयुक्त – परिवार का पाश्चात्य जगत् के तुल्य उच्छेद सुनिश्चित है। संयुक्त परिवार के उच्छेद से सनातन कुलधर्म, जाति धर्म, कुलदेवी, कुलदेवता, कुलगुरु, कुलाचार, कुल संस्कृति का विलोप तथा वर्णसंकरता और कर्मसंकरता सुनिश्चित है। इस प्रकार सनातन धर्म की रक्षा के लिये पाश्चात्य शिक्षापद्धति और जीविकोपार्जन की विद्या का सनातन संस्कृति के अनुरूप उपयोग और विनियोग नितान्त अपेक्षित है। तदर्थ धर्मनियन्त्रित, पक्षपातविहीन, शोषण विनिर्मुक्त शासन तंत्र की स्थापना स्वस्थव्यूहरचनापूर्वक अथक और अमोघ प्रयास अत्यावश्यक हैं।''

onk dk iknHkko

वेदों के प्रादुर्भाव को लेकर कुछ पाश्चात्य विद्वानों और उनसे प्रभावित देश के भी कुछ विद्वानों ने वेदों का समय निर्धारण करने का असफल प्रयास किया है। हमारे ऋषि–मुनि एवं अनेक भारतीय विद्वानों ने वेद को सनातन, नित्य और अपौरुषेय माना है। उनकी यह मान्यता है कि वेद का प्रादुर्भाव ईश्वरीय ज्ञान के रुप में हुआ है। जिस प्रकार ईश्वर अनादि और अनन्त है उसी प्रकार वेद भी अनादि और अनन्त हैं। वेदों के महान् भाष्यकार सायणाचार्य जी ने अपने भाष्य में लिखा है कि वेद ईश्वर का निःश्वास है, अतः उन्हीं (ईश्वर) द्वारा निर्मित है।

उपनिषद् में यह बात आती है कि सृष्टि के आदि में परमात्मा ने ब्रह्मा को प्रकट किया तथा उन्हें समस्त वेदों का ज्ञान कराया।

;k ckge.k fon/kkfr io ;k o onk'p ifg.kkfr rLeA

(श्वेताश्वतर उप.)

वैदिक-साहित्य परिचय

– मेघराज पालीवाल
(जिला समिति सदस्य)

आज जो वैदिक साहित्य उपलब्ध है, उसमें साहित्यिक दृष्टि से चार प्रकार प्राप्त होते हैं। प्रत्येक प्रकार अन्य तीनों से भी सम्बन्धित है। प्रारम्भ में जो मूल साहित्य था वह 'वेद' कहलाता था। वेद का शाब्दिक अर्थ 'ज्ञान' है।

lafgrk& igyk izdkj

संहिता का अर्थ है संग्रह। 'वेद' के मूल साहित्य को चार खण्डों में संग्रहीत किया गया।

(1) **_Xosn lafgrk&** सामान्य बोलचाल की भाषा में इसे 'ऋग्वेद' कहते हैं। ऋग्वेद में 10 मण्डल हैं। मण्डलों में सूक्त होते हैं। प्रत्येक सूक्त का एक देवता, एक ऋषि और एक छन्द होता है। ऋग्वेद में 1028 सूक्त हैं। सूक्त में मन्त्र होते हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों को 'ऋचा' कहते हैं। ऋचा छन्दबद्ध, चरणबद्ध काव्य रचना होती है। ऋग्वेद में 10528 ऋचाएं हैं। ऋग्वेदपाठी को 'होता' कहते हैं। इस संहिता में देवताओं की स्तुतियों का संग्रह है।

(2) **यजुर्वेद संहिता–** इस संहिता में यज्ञ सम्बन्धी मन्त्र हैं। यज्ञों की विधियां और नियमों का संग्रह है। पद्य के साथ–साथ गद्यकाव्य भी मिलता है। यजुर्वेद के मन्त्रों को 'यजुष्' या 'याग' कहते हैं। यजुर्वेदपाठी को 'अध्वर्यु' कहते हैं। अध्वर्यु, यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञ देवता सम्बन्धी अन्य कार्य भी साथ ही साथ सम्पादित करता है। यजुर्वेद में 40 अध्याय हैं। यजुर्वेद का लगभग एक चौथाई भाग ऋग्वेद से ही लिया गया हैं अर्थात् अनेक मन्त्र ऐसे हैं जो ऋग्वेद में भी है और यजुर्वेद में भी हैं।

(3) **सामवेद संहिता–** सामवेद में गीतों का संग्रह है। इस संहिता में कुल 1603 मंत्र हैं जिनमें से 1504 तो ऋग्वेद से ही लिये गये हैं। सामवेद के मन्त्रों का गायक 'उद्गाता' कहलाता है। वह संगीत के विविध स्वरों का ज्ञाता होता है। प्रत्येक साममन्त्र के गायन के स्वर और लय पूर्वनिर्धारित हैं, निश्चित हैं, अपरिवर्तनीय हैं। विद्यार्थी अपने गुरु से सुनकर सीखता है।

(4) **अथर्ववेद संहिता–** इस संग्रह में अधिकांश मन्त्रों के दृष्टा ऋषि अथर्वण हैं। कुछ मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि 'अंगिरस' हैं। अथर्ववेद में 20 काण्ड हैं, 731 सूक्त हैं तथा कुल 5987 मन्त्र हैं जिसमें से 1200 मन्त्र ऋग्वेद से लिये गये हैं। अथर्ववेदपाठी 'ब्रह्मा' कहलाता है। अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त में मातृभूमि की वन्दना के 63 मन्त्र संग्रहीत हैं। "**माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथ्वियाः**" सूक्ति इसी सूक्त के मन्त्र का एक चरण है जिसका अर्थ है– 'यह भूमि मेरी माता है, मैं इस भूमिमाता का पुत्र हूँ।'

इन चार संग्रहों के कारण ही एक वेद के स्थान पर चार वेद सामान्य बोलचाल में कहे जाने लगे और इन चारों में भेद की परिकल्पना की जाने लगी। वास्तव में चारों संग्रह आपस में गुँथे हुए हैं। वेद के अनेक मन्त्र चारों या तीनों या दो संहिताओं में समान रूप से पाये जाते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थ–दूसरा प्रकार

चारों वैदिक संहिताओं के अपने–अपने ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य रचनाएं हैं। इसमें वैदिक अनुष्ठानों का क्रियात्मक रूप निहित है। ब्रह्म का एक अर्थ यज्ञ भी होता है। यज्ञों की प्रक्रिया–विधि का वर्णन होने से ये ब्राह्मण ग्रन्थ कहलाये। योग ऋषि पतञ्जलि के अनुसार कुल ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या 1130 थी। वर्तमान में केवल 9 ब्राह्मण ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं : ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण और कौषीतकि ब्राह्मण ; कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण ; शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण ; तथा सामवेद के चार ब्राह्मण ग्रन्थ – ताण्ड्य महाब्राह्मण, पंचविंश ब्राह्मण, सामविधान ब्राह्मण और जैमिनीय ब्राह्मण। अथर्ववेद का एक गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थ ही उपलब्ध है।

जिस प्रकार वेद मन्त्रों के दृष्टा 'ऋषि' हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों के दृष्टा 'आचार्य' कहलाते हैं। वेद के किस मन्त्र का प्रयोग किस उद्देश्य की सिद्धि के लिये किया जाता है इसकी युक्तियुक्त व्यवस्था ब्राह्मण ग्रन्थों में मंत्र–दृष्टा आचार्यों ने की है।

आरण्यक – तीसरा प्रकार

'अरण्य' का अर्थ वन या जंगल है। मनुष्य जीवन का तीसरा आश्रम वानप्रस्थ है। अरण्य में रहने वाले वानप्रस्थ आश्रम धर्म का निर्वहन करने वाले जनों के लिये आरण्यक ग्रन्थ हैं। आरण्यक ग्रन्थों का मुख्य विषय विविध यज्ञों के भीतर विद्यमान गूढ़, लाक्षणिक तथा आध्यात्मिक तत्वों

की मीमांसा करना है। आरण्यकों की ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट के रूप में मान्यता है। ऋग्वेद का ही दूसरा आरण्यक शांखायन आरण्यक है। शुक्ल यजुर्वेद का बृहदारण्यक, मैत्रायणीयारण्यक, माध्यन्दिन आरण्यक, काण्व बृहदारण्यक। कृष्णयजुर्वेद का तैत्तिरीयारण्यक। सामवेद का तलवकार आरण्यक। अथर्ववेद का कोई आरण्यक उपलब्ध नहीं है।

उपनिषद्–चौथा प्रकार

विद्यार्थियों अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम के लिये संहितायें हैं। गृहस्थाश्रम के लिये ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। वानप्रस्थियों के लिये आरण्यक हैं। चौथे आश्रम अर्थात् संन्यास के लिये उपनिषद् हैं। उप–निषद् का सामान्य अर्थ है– पास में बैठना।

जैसे प्रत्येक संहिता के अपने अपने ब्राह्मण और आरण्यक हैं उसी प्रकार उपनिषद् भी हैं। वैसे तो 108 उपनिषद् गिनाये जाते हैं, 60 उपनिषद् प्रकाशित भी हो चुके हैं लेकिन जगद्गुरु शंकराचार्य ने 10 उपनिषदों का ही उल्लेख किया है :

ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डुक्यतित्तिरिः।
ऐतरेयञ्च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश।।

तेरह उपनिषद् अधिक प्रचलित हैं।

ऋग्वेद के उपनिषद्– (1) **ऐतरेय उपनिषद्** में सृष्टि, जीव और ब्रह्म का विवेचन है। (2) **कौषीतकि उपनिषद्** में पितृयान और देवयान का वर्णन है। आगे ब्रह्मविद्या और प्राणतत्व का विवेचन है।

यजुर्वेदीय उपनिषद्– (3) **बृहदारण्यक उपनिषद्** – इस दार्शनिक रचना के सर्वस्व याज्ञवल्क्य हैं। अनेक आख्यानों द्वारा सृष्टि और सृष्टिकर्ता का विशद वर्णन है। पंचाग्नि विद्या की सूक्ष्म विवेचना है।

(4) **श्वेताश्वतर उपनिषद्–** सांख्यदर्शन, वेदान्त दर्शन, शैव मत, योग और गुरुभक्ति का वर्णन है।

(5) **मैत्रायणी उपनिषद्–** यह गद्यात्मक है। कहीं–कहीं पद्य भी है। सांख्य दर्शन के तत्वयोग और हठयोग का वर्णन है।

(6) **ईशोपनिषद्–** वास्तव में यह यजुर्वेद का ही अन्तिम अर्थात् 40वां अध्याय है। इसमें केवल 18 मन्त्र हैं। प्राचीनता की दृष्टि से यह प्रथम

उपनिषद् माना जाता है। त्याग, कर्म, विद्या, अविद्या, पुनर्जन्म, सर्वव्यापी परमेश्वर व यम का वर्णन है।

(7) **कठोपनिषद्–** उद्दालक मुनि का पुत्र नचिकेता यमराज के यहाँ जाकर अग्निविद्या सीखता है। मरने के बाद जीवात्मा की क्या गति होती है इस बारे में जानकारी प्राप्त करता है।

(8) **तैत्तिरीयोपनिषद्–** आश्रम में शिक्षा पूर्ण करने पर गुरु शिष्य को घर जाने का आदेश देने से पूर्व जो अन्तिम शिक्षा देते हैं उसका विशद् वर्णन। सत्यं वद। धर्मम् चर। मातृदेवो भव। पितृ देवो भव आदि।

सामवेदीय उपनिषद्– (9) **छान्दोग्य उपनिषद्–** इस उपनिषद् के दार्शनिक आरुणि हैं। सूर्योपासना और गायत्री मुख्य विषय है।

(10) **केनोपनिषद्–** सगुण ब्रह्म, निर्गुण ब्रह्म, ब्रह्म ही सर्वशक्तिमान है, आदि का वर्णन है।

अथर्ववेदीय उपनिषद्– (11) **प्रश्नोपनिषद्–** ब्रह्मविद्या जानने की जिज्ञासा से छः ऋषि महर्षि पिप्पलाद के पास जाकर अनेक प्रश्न करते हैं एवं जिज्ञासा शान्त करते हैं।

(12) **मुण्डकोपनिषद्–** स्वर्ग प्राप्त करने वालों को तो पुण्य क्षय होने पर पुनः पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ता है। ब्रह्मविद्या ही श्रेष्ठ है। ब्रह्मज्ञानी का पुनर्जन्म नहीं होता, इत्यादि का विशद् अध्ययन है।

(13) **माण्डूक्योपनिषद्–** ॐ की व्याख्या है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय अवस्थायें। आत्मा का शुद्ध रूप अन्तिम चैतन्य आदि का वर्णन है।

वेद के अन्तिम उदात्त ज्ञान का विवेचन करने के कारण उपनिषदों को दर्शन की दृष्टि से वेदान्त की संज्ञा दी गई है।

इस प्रकार वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्, इन सबको सम्मिलित रूप से वैदिक साहित्य कहा गया है। वैदिक साहित्य सुनकर सीखा जाता था अतः इसे 'श्रुति' भी कहते है। वेद शब्द का प्रयोग केवल उस साहित्य के लिये किया जाता है जो सृष्टिकर्ता ईश्वर ने स्वयं प्रकट किया है। मन्त्रद्रष्टा ऋषिगणों को तो ईश्वर ने निमित्त मात्र बनाया है।

अन्य साहित्य

जिन्हें वैदिक साहित्य तो नहीं कहा जाता लेकिन वैदिक साहित्य से जिनकी अत्यन्त निकटता है उनका संक्षिप्त नामोल्लेख आवश्यक है –

उपवेद– चार उपवेद कहलाते हैं –

1. आयुर्वेद– रोग, रोगों के लक्षण, रोगों की चिकित्सा आदि का वर्णन।
2. धनुर्वेद– शस्त्र निर्माण, शस्त्र संचालन, युद्धविद्या आदि का वर्णन।
3. गान्धर्ववेद– नाट्य, कला, संगीत, गीत आदि का वर्णन।
4. अर्थवेद– अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र व नीति शास्त्र का वर्णन।

वेदांग– छः वेदांग कहे गये हैं– ये वेदों के अध्ययन में सहायक हैं –

1. शिक्षा– वेद मन्त्रों के यथेष्ट उच्चारण और अर्थ की विवेचना।
2. कल्प–सूत्रग्रन्थ– यज्ञविधि, षोडश संस्कार, सामाजिक नियम और रेखागणित का वर्णन।
3. व्याकरण– शब्दरूप, धातुरूप, उपसर्ग, प्रत्यय, लिंग, वचन आदि।
4. निरुक्त–निघण्टु– वैदिक शब्दों का शब्दकोश, अनेकार्थक शब्द व पर्यायवाची शदों का वर्णन है।
5. छन्द– गायत्री, अनुष्टुप, त्रिष्टुप आदि छन्द, काव्य कला का उल्लेख है।
6. ज्योतिष– कालगणना, पञ्चांग, नक्षत्रों, ग्रहों की गति की गणना की जानकारी है।

उपांग– वेद के छः उपांग कहे गये हैं। इन्हें **षड्दर्शन** भी कहते हैं –

1. जैमिनिमुनि कृत– पूर्व मीमांसा
2. कणादमुनि कृत– वैशेषिक शास्त्र
3. गौतममुनि कृत– न्यायशास्त्र
4. पतञ्जलिमुनि कृत– योगशास्त्र
5. कपिलमुनिकृत– सांख्यशास्त्र
6. वेदांत– उपनिषदों पर आधारित।

v/;;u] euu o fufn/;klu

वेदों की जब करें पढ़ाई, अर्थ समझकर मनन करें।
सभी शास्त्र यूं पढें–विचारें, न कि केवल अध्ययन करें।
अर्थ न जानें पाठ पढ़ें जब, सारा श्रम होता बेकार,
जैसे लेकर हंसिया–छुरी, काटें सूखी भूसी–पुआल।

श्रीमद्भगवद्गीता का माहात्म्य एवं बहिरंग परिचय

सगराम काला
पूर्व सचिव, जिला समिति

श्रीमद्भगवद्गीता का महात्म्य – श्रीमद्भगवद्गीता का माहात्म्य वाणी द्वारा वर्णन करने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं हैं। इसमें सम्पूर्ण वेदों का सार संग्रह किया गया है। इसकी संस्कृत इतनी सुन्दर और सरल है कि थोड़ा अभ्यास करने से मनुष्य उसको सहज ही समझ सकता है, परन्तु उसका आशय इतना गम्भीर है कि आजीवन निरन्तर अभ्यास करते रहने पर भी उसका अन्त नहीं आता। प्रतिदिन नये-नये भाव उत्पन्न होते रहते हैं एवं एकाग्रचित होकर श्रद्धा भक्ति सहित विचार करने से इसके पद-पद में परम रहस्य भरा हुआ प्रत्यक्ष प्रतीत होता है।

श्री वेदव्यास जी ने महाभारत में गीता का वर्णन करने के उपरान्त कहा है-'गीता सुगीत करने योग्य है' अर्थात् श्री गीता जी को भली प्रकार अर्थ और भाव सहित अन्तःकरण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है, जो कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निकली हुई है तो फिर अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन? श्री भगवान् ने भी इसके माहात्म्य का वर्णन अध्याय -18 में श्लोक 68 से 71 तक में किया है।

गीता शास्त्र पर मनुष्य मात्र का अधिकार है, चाहे वह किसी भी वर्ण, आश्रम में स्थित हो परन्तु उसे श्रद्धालु और भक्तियुक्त अवश्य होना चाहिये। भगवान ने यह भी कहा है कि स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनि भी मेरे परायण होकर परम गति को प्राप्त होते हैं। अपने-अपने स्वाभाविक कर्मो द्वारा मेरी पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं। परमात्मा की प्राप्ति सभी का अधिकार है। परन्तु जिन्होंने श्री गीताजी का नाम मात्र ही सुना है, कह दिया करते हैं कि गीता तो केवल संन्यासियों के लिये है वे अपने बालकों को इसी भय से श्री गीताजी का अभ्यास नहीं कराते कि गीता ज्ञान से कदाचित् लड़का संन्यासी न हो जाये, किन्तु उनको विचार करना चाहिये कि मोहग्रस्त अर्जुन ने गीता के उपदेश से आजीवन गृहस्थ में रहकर अपने कर्तव्य का पालन किया था।

वर्तमान में दुनिया के बड़े-बड़े प्रबन्ध संस्थानों ने श्रीमद्भगवद्गीता को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया है। यह विश्व की अनुपम धरोहर है। दुनिया की सर्वाधिक भाषाओं में श्रीगीताजी का अनुवाद हुआ है।

श्रीमद्भगवद्गीता का बहिरंग परिचय

1. श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद् है तथा श्रीभगवान् द्वारा कुरुक्षेत्र के युद्ध के मैदान में गाई गई है।
2. श्रीगीताजी महाभारत के भीष्म पर्व के 25 से 42 अध्याय में है।
3. यह श्रीकृष्ण और अर्जुन का संवाद है जो संजय द्वारा हस्तिनापुर के राजा धृतराष्ट्र को सुनाया गया हैं।
4. श्री गीताजी में 18 अध्याय एवं 700 श्लोक हैं। सभी 18 अध्यायों के अलग-अलग नाम हैं।
5. श्रीमद्भगवद्गीता ब्रह्मविद्या का ग्रन्थ है। यह प्रस्थानत्रयी का एक भाग है यथा- उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र व गीता।
6. श्रीमद्भगवद्गीता योगशास्त्र है, समाधि में 'मैं ब्रह्म हूँ,' इसकी अनुभूति होना। इसमें योग की परिभाषा हैं – 'समत्वं योग उच्यते' और 'योगः कर्मसु कौशलम्'।
7. श्री गीता जी सिद्धान्त और व्यवहार दोनों का निरूपण करती है। निष्काम-कर्म श्रीगीता जी का केन्द्रवर्ती सूत्र है। अतः व्यवहार के सभी पहलुओं में श्रीमद्भगवद्गीता सन्दर्भ बिन्दु हो सकती है।
8. गीता में ज्ञान, भक्ति व कर्म का सुन्दर समन्वय है।

vfglk ijeks/keZ

महात्मा बुद्ध, महावीर अथवा गाँधी ने अहिंसा का जो संदेश दिया है वह हमारे आर्ष–साहित्य में पहले से उपलब्ध है। इन्होंने तो कर्ता बनकर अहिंसा के आदर्श को अपने जीवन में उतारा है तथा दुनिया को पाथेय प्रदान किया है। महाभारत में शिव–पार्वती संवाद में शिवजी पार्वती को उपदेश देते हैं –

vfglk ijeks/keZ vfglk ije lq[keA
vfglk /keZ'kkL=s"kq lo"kq ije ineAA

'हे देवि! अहिंसा परम धर्म है। अहिंसा परम सुख है। सम्पूर्ण धर्म शास्त्रों में अहिंसा को परम पद बताया है।'

गीता में वर्णित मनुष्य की जातियाँ

– **केसरसिंह राठौड़**
(जिला समिति सदस्य)

हम मनुष्य इसलिए हैं कि हम सब मनु की सन्तानें हैं। मनुष्य का मन अन्य प्राणियों की तुलना में अधिक विकसित है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में मनुष्यों की दो ही जातियाँ होने का उल्लेख करते हैं :

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रृणु।। (गीता 16/6)

अर्थात् मनुष्य केवल दो प्रकार के हैं – देवता और असुर । जिसके हृदय में आसुरी सम्पत्ति बसी है वह असुर हैं और जिसके हृदय में दैवी सम्पत्ति कार्य करती है वे देवता हैं।

इस लोक के सभी मनुष्यों में दैवी और आसुरी सम्पदा विद्यमान है। जिसके हृदय में आसुरी सम्पदा सुप्तावस्था में और दैवी सम्पदा बाहुल्य से कार्यशील है वह देवता जाति का मनुष्य है, इसी प्रकार जिसके हृदय में दैवी सम्पदा सुप्तावस्था में और आसुरी सम्पदा बाहुल्य से कार्यशील है वह असुर जाति का मनुष्य है।

दैवी सम्पदा

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञान योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।। (गीता 16/1)

निर्भयता, अन्तःकरण की शुद्धि, तत्वज्ञान के लिये निरन्तर लगन, दान अर्थात् समर्पण, दम अर्थात् इन्द्रिय निग्रह, यज्ञमय जीवन, तप, स्वाध्याय और अन्तःकरण की सरलता ये दैवी सम्पदा कहलाती हैं।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।। (16/2)

अहिंसा, सत्य, क्रोध न करना, त्यागवृत्ति, शान्ति अर्थात् चित्त की चंचलता का अभाव, लक्ष्य के विपरीत निन्दित कर्म न करना, सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति दयाभाव, अलोलुपता अर्थात् इन्द्रियों का विषयों से संयोग होने पर भी उनमें आसक्ति का अभाव, कोमलता, गलत कार्य में लज्जा होना, व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव, ये ग्यारह भी दैवी सम्पदा हैं।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ।। (16/3)

तेजस्विता, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, शत्रुता न रखना, स्वयं की पूजा करवाने का सर्वथा अभाव, ये छः भी दैवी सम्पदा कहलाती हैं।

उपरोक्त तीनों श्लोकों में वर्णित कुल छब्बीस दैवी सम्पदाएँ बताई गई हैं जो मनुष्य के उत्कर्ष का कारण हैं।

आसुरी सम्पदा

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।। (16/4)

हे पार्थ! पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान ये छः आसुरी सम्पदा कहलाती हैं।

यद्यपि आसुरी सम्पदाओं की संख्या भगवान ने छः बताई है किन्तु इनके कारण अनेक विकार उत्पन्न होते हैं जो दैवी सम्पदा के विरुद्ध हैं। जैसे – कर्तव्य का पालन न करना, अशुद्धि, नास्तिकता, उपभोगवाद, क्रूरता, मिथ्या सिद्धान्त प्रस्तुत करना, संग्रही वृत्ति, चिन्ता, भ्रम, मोह, शास्त्र विधि से रहित अनुष्ठान, भ्रष्ट व्रत, स्वार्थी भाव, दिखावा करना।

सभी मनुष्यों में दोनों प्रकार की सम्पदाएँ रहते हुए भी जिसमें जो सम्पदा कार्यशील हैं, मनुष्य उसी जाति का होता है। यह सिद्धान्त देश काल निरपेक्ष होने से सारे संसार का अत्यन्त उपकार करने में सहायक है। जाति के नाम पर अनावश्यक विवाद और श्रेष्ठता के अपनी सुविधा के मापदण्डों से भिन्न, अत्यन्त सरल विधि से भगवान ने यहाँ समझाया है कि कौन श्रेष्ठ है?

भगवान् के अनुसार प्रत्येक मनुष्य में दोनों सम्पदाओं के रहने से, इसी जीवन में असुर भी अपनी दैवी सम्पदा को क्रियाशील करके देवता हो सकता है और ऐसा देखा भी जाता है कि अत्यन्त पापगामी भी बोध होने पर संसार में श्रेष्ठ कर्म करते हुए पाये जाते हैं। इसी प्रकार उच्चावस्था को प्राप्त दैवी सम्पदा के धनी भी पतित हो जाते है – असावधानी वश।

भगवान् ने पुनः समझाया है कि दैवी सम्पदा मोक्ष देने वाली और आसुरी सम्पदा बन्धन में डालने वाली है। दैवी सम्पदा से युक्त व्यक्ति उत्कर्ष को प्राप्त होता है। वह सुखी रहकर अन्यों को भी सुख देता है, जबकि आसुरी सम्पदा से युक्त व्यक्ति अधोगामी, पापकर्मी, पतित और स्वयं दुःखी रहकर अन्यों को भी दुःख देता है, ऐसा करके वह मुझ परमात्मा से ही द्वेष पालता है, इसलिये मैं उसे नरक में गिरा देता हूँ।

•••

सहकारिता दर्शन - भारतीय ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में

हरिराम खत्री

(प्रदेश कोषाध्यक्ष, सहकार भारती)

कोषाध्यक्ष जिला समिति

भारतवर्ष में सहकारिता की विचारधारा नई नहीं है। प्राचीन काल से ही हमारे देश में सहकारिता के मूल तत्व विद्यमान थे। सहकारिता एक मानवीय गुण है जिसके द्वारा हम एक दूसरे की सहायता कर एक ऐसी परम्परा को जन्म देते हैं, जिसमें प्रगति का पहिया सर्वजन हिताय –सर्वजन सुखाय निरंतर गतिमान रहता है। महात्मा गांधी ने कहा था– 'सहकारिता में सहयोग आधारित शोषण मुक्त समाज का चिन्तन है।'

जब हम आर्ष साहित्य का अध्ययन करते हैं तो अनेक स्थानों पर सहकारिता आधारित विचार मिलते हैं। हमारे ऋषियों ने कहा है –

त्यजदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलंत्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत्।।

अर्थात् परिवार के लिये स्वयं को, समाज के हित के लिये परिवार को और मानव मात्र के कल्याण के लिये सभी का त्याग करना चाहिये। इसका आशय है, हमारी परम्परा में व्यक्ति तथा परिवार तथा परिवार एवं समाज के बीच सहकार था, स्वार्थ एवं संघर्ष नहीं था। व्यक्ति जब परिवार से, परिवार समाज से तथा समाज जब प्राणी मात्र से प्रेम करता है तो संघर्ष, हिंसा तथा शोषण स्वतः ही समाप्त हो जाता है, चाहे वह सामाजिक हो अथवा आर्थिक। समर्पण व सहयोग का यह कर्तव्य बोध भारतीय दर्शन का आधार रहा है तथा 'सहकारिता' रूपी भवन इसी नींव पर खड़ा है। ऋग्वेद में ऋषि हमें आदेश देता है –'हे ज्ञानी लोगों! तुम गिरे हुओं को ऊपर उठाओ।' (**उत देवा अवहितं देवा उन्मयथा पुनः**) सहकारिता के द्वारा हम यही करते हैं। ज्ञानी लोगों अर्थात् अच्छे व संस्कारवान् लोगों द्वारा सहकारिता रूपी संगठन के माध्यम से हम कमजोर लोगों को ऊँचा उठाने का ही तो प्रयत्न करते हैं।

यजुर्वेद (3–50) के एक सूत्र में समानता एवं सहकार भावना का संदेश दिया गया है। सूक्त में कहा गया है कि –'हे मनुष्यों! तुम हमें वस्तु दो और मैं तुम्हें वस्तु देता हूँ।' इस सूक्त में 'एक सबके लिये तथा सब एक के लिये' की भावना ही दृष्टिगत होती है। यदि हम परस्पर सहयोग करेंगे तो शोषण मुक्त व समता

आधारित समाज का स्वत: ही निर्माण हो जायेगा। महर्षि दयानन्द ने कहा है – 'हमें सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिये।'

ऋग्वेद में हमारे ऋषिगण सलाह देते हैं –'प्रेमपूर्वक साथ-साथ चलो, तुम्हारी वाणी व मन समान विचार वाले हों, तुम संस्कारयुक्त मन के साथ संगठित होकर उपार्जन करो तथा उपार्जित सम्पत्ति को समानता के साथ प्राप्त करो।' इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि सहकार की भावना संस्कारों के साथ जुड़ी हुई है। धन का उपार्जन कैसे व्यक्तियों द्वारा हो ? श्रेष्ठ विचार के साथ धन का उपार्जन होगा तो व्यापार में शोषण करने की प्रवृत्ति नहीं रहेगी। साथ ही यह भी बताया गया है कि ऐसे धन का वितरण भी समानता के आधार पर होना चाहिये।

अथर्ववेद (3-24-5) में कहा गया है – 'हे मनुष्यों! तुम सौ हाथों के होकर धन संग्रह करो तथा हजार हाथों वाले होकर उस धन को बांट दो।' (**शत हस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर**) वर्तमान में सहकारी समितियां यही कार्य कर रही हैं। अन्तर इतना ही है कि उसमें जितना सेवा का भाव होना चाहिये वह दिखाई नहीं देता।

वस्तुत: सहकारिता एक संस्कार है, जो यदि जीवन में उतर जाये तो वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिलक्षित होता है, चाहे वह क्षेत्र आर्थिक हो अथवा सामाजिक। हमारे यहाँ सहकारिता अर्थ कभी एकांगी नहीं रहा। सहकारिता की एकांगी विचारधारा पाश्चात्य जगत की देन है। वहाँ मनुष्य को केवल आर्थिक पुरुष मानकर उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सहकारिता को एक आर्थिक मॉडल के रूप में विकसित किया गया है। परिणाम यह हुआ कि सहकारी समितियाँ स्वयं अपने सदस्यों का शोषण करने लगी हैं। कहीं ऋणों पर ब्याज की दर ऊँची रखी जाती है तो कहीं पॉकेट समितियाँ बनाकर परिवार विशेष को समृद्ध किया जाता है। अपने सदस्यों को समय पर पैसा न लौटाने की खबरें आये दिन पढ़ने को मिलती हैं। किन्तु जहाँ भारतीय दर्शन व चिन्तन के आधार पर सहकारी संस्थाएँ स्थापित हैं, वहाँ वास्तव में सदस्यों का पोषण और समाज की सेवा हो रही है। सहकार भारती इसी पवित्र उद्देश्य की ओर अग्रसर है।

thora e`r oUe;a nfgua /keZof tZre~A
erk /keZ.k la;Dra nh?kZ thoh u la'k;%AA

मैं धर्म रहित व्यक्ति को मरे हुए के समान समझता हूँ। धर्म–युक्त व्यक्ति मरने के बाद भी जीवित रहता है। उसकी कीर्ति अमर रहती है। ऐसे व्यक्ति का जीना ही वास्तव में जीना है।

वैदिक जीवन में आश्रम व्यवस्था

नरपतसिंह राजपुरोहित
प्रधानाचार्य
आदर्श विद्यामन्दिर प्राथमिक जैसलमेर

हमारा जीवन व्यष्टि (व्यक्ति) से समष्टि (समाज) भाव को प्राप्त करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है। हमारे ऋषि–मुनियों ने व्यष्टि से समष्टि की यात्रा के पड़ाव के रूप में इन आश्रमों का निरूपण किया है। भारतीय चिन्तन के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की हर चेष्टा चाहे वह व्यक्तिगत हो अथवा समष्टिगत, परिश्रम करने के साथ उस परम तत्व को प्राप्त करने की जिज्ञासा को जीवित रखते हुए आगे बढ़ने की होती है। आश्रम व्यवस्था उस परम तत्व की प्राप्ति के सुन्दर सोपान हैं। वैदिक जीवन परम्परा के अनुसार जीवन को 100 वर्ष मानते हुए उसे चार आश्रमों में विभक्त किया गया है –

1. ब्रह्मचर्य 2. गृहस्थ 3. वानप्रस्थ और 4. संन्यास ।

1. **ब्रह्मचर्य आश्रम** – इस शब्द का मूल अर्थ है ब्रह्म में विचरण करना। 'ब्रह्मे चरति इति ब्रह्मचारी'। अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति की विद्या में लगे रहना। दूसरे अर्थ में ब्रह्मचर्य आश्रम अपने उत्तमोत्तम तत्व का संरक्षण करते हुए लौकिक वासनाओं की ओर आकर्षित हुए बिना अध्ययन करने की आयु के कालखण्ड का नाम है। उपनयन संस्कार के बाद 25 वर्ष की आयु तक बालक गुरुकुल में रहकर अपने आचार्य के सान्निध्य में समस्त वैदिक वाङ्मय का अध्ययन करता था। 25 वर्ष बाद जब वह गुरुकुल से समावर्तन संस्कार के पश्चात् घर लौटता था तो न केवल वह ज्ञानवान् होता था बल्कि पूर्ण संस्कारवान् होता था। एक सद्नागरिक बनकर समाज में प्रवेश करता था।

2. **गृहस्थाश्रम** – ब्रह्मचर्य आश्रम में जो कुछ भी सीखा उसको अपने व्यवहार में उतारने का कार्य गृहस्थाश्रम में होता है। गृहस्थाश्रम भी एक प्रकार की साधना है। हमारे यहाँ गृहस्थाश्रम को भोग का साधन नहीं बताया गया है। गृहस्थ पर सम्पूर्ण समाज का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। विवाह इस आश्रम का मुख्य संस्कार है। गृहस्थाश्रम अन्य सभी आश्रमों का पोषक होता है।आश्रमों में रहने वाले छात्रों की व्यवस्था गृहस्थों के द्वारा होती थी। वानप्रस्थियों के लिये जो भी आवश्यकता होती है उसकी पूर्ति गृहस्थों द्वारा की जाती थी। इसी प्रकार संन्यासियों का भी दायित्व गृहस्थों ने सहर्ष उठाया है। इस तरह अन्य तीनों आश्रमों की आवश्यकताओं की पूर्ति गृहस्थाश्रम द्वारा की जाती थी।

इस आश्रम को 25 से 50 वर्ष के कालखण्ड तक माना गया है। इस आयु में व्यक्ति न केवल स्वयं को एक योग्य गृहस्थ के रूप में प्रस्तुत करता है बल्कि एक योग्य व संस्कारवान, चरित्रवान और श्रेष्ठ नागरिक के रूप में अपनी सेवायें समाज व राष्ट्र को देता है।

3. **वानप्रस्थाश्रम** – गृहस्थाश्रम में रहकर जो बात अनुभव की गई है, उसका मानसिक चिन्तन–मनन कर समाज के लिये उसे किस प्रकार लाभदायक बनाया जा सकता है, यह बात वानप्रस्थ आश्रम की विषय–वस्तु होती है। वानप्रस्थ का अर्थ है वन के समीप निवास करना। अर्थात् वन और नगर की सीमा में रहना। सीमा में रहना इसलिये क्योंकि अपने अनुभवों का जो सार है, जो निष्कर्ष है, उसे समाज को दिया जा सके। अपनी आने वाली पीढ़ी को उससे लाभान्वित किया जा सके।

अपनी आयु के 50 से 75 वर्ष के काल को इस आश्रम के अन्तर्गत माना गया है। इसमें व्यक्ति अपनी ममता व दायित्व का विस्तार पाता है। इससे पूर्व उसकी ममता की सीमा व दायित्व बोध उसका परिवार था। इस आश्रम में उसकी चिन्तनधारा व्यष्टि से समष्टि की ओर प्रवाहित होती है। अपने अनुभवों को समाज में बांटता है। गृहस्थ अपनी समस्याओं का समाधान वानप्रस्थियों से प्राप्त करते हैं। एक तरह से इस आश्रम में व्यक्ति गृहस्थों को मार्गदर्शन प्रदान करता है।

4. **संन्यासाश्रम** – संन्यास का अर्थ है सम्यक्रूपेणन्यासः। अपना सम्पूर्ण भार उस परमपुरुष परमात्मा को सौंपकर समाज को ही अपना आराध्य मानकर जीवन के अन्तिम 25 वर्ष समाज की सेवा में लगाना इस आश्रम का मुख्य हेतु है।

इस अवस्था में मनुष्य का दृष्टिकोण समष्टि से सृष्टि व सृष्टि से परमेष्ठी तक विस्तृत हो जाता है। सारी पृथ्वी उसका घर होती है और समस्त चराचर जगत् उसका परिवार होता है।

आज के युग में मनुष्य सौ वर्षों तक का जीवन प्राप्त करना चाहे तो यह अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है, लेकिन वैदिक युग में यह एक सामान्य बात थी। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के पुरुषार्थ चतुष्टय को आधार मानते हुए और श्रेष्ठ मूल्यों को आत्मसात करते हुए जब वह जीवन यापन करता था तो उस समय का व्यक्ति सौ वर्ष से भी अधिक आयु प्राप्त करता था।

●●●

पारिवारिक आदर्श

श्रीमती शशिबाला शर्मा
प्रधानाचार्य
आदर्श विद्यामन्दिर बालिका जैसलमेर

माता–पिता, भाई–बहिन, पति–पत्नी आदि के समुच्चय को परिवार या कुटुम्ब कहते हैं। उनके साथ परस्पर कैसा सम्बन्ध और व्यवहार होना चाहिये, उसके लिये वेद भगवान् उपदेश देते हैं :

स्वस्ति मातृ उत पित्रे नो अस्तु। (अथर्व. 01/31/04)

अर्थात् 'अपने माता–पिता के प्रति हमारा सद्‌भावपूर्ण आचरण होना चाहिये, जिससे देवस्वरूप माता–पिता सदैव प्रसन्न रहें तथा आशीर्वाद देते रहें।' अपने माता–पिता की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। उनके साथ कभी भी कष्टजनक एवं अशिष्ट व्यवहार नहीं करना चाहिये।

वैदिक संहिताओं में पारिवारिक आदर्श बनाये रखने के लिये, परिवार में सुख, समृद्धि व शान्ति के लिये अनेक सूत्र दिये गये हैं, यथा –

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन्।
एतन्तदग्ने अनृणो भवाम्यहतौ पितयै मया।। (शुक्ल. यजु. 19/11)

'जब मैं छोटा सा सर्वथा असमर्थ शिशु था, उस समय मैं माता की गोद में लेटकर अमृतमय स्तन का पान करता हुआ पैरों के आघात द्वारा उसे पीड़ित करता रहा। अब मैं उनके लालन–पालन से बड़ा हो गया हूँ और मेरे परमपूज्य जनक व जननी (माता–पिता) वृद्ध तथा अशक्त हो गये हैं। अतः मेरे द्वारा वे वन्दनीय माता–पिता कदापि व किसी प्रकार से पीड़ित न हों, बल्कि मेरी सेवा के द्वारा सदा ही सन्तुष्ट बने रहें।'

इसी प्रकार परिवारजनों को उषाकाल में उठकर दिनचर्या प्रारम्भ करने को कहते हैं :

पातारत्नम् प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्यानि निधते।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः।।
(ऋक्. 01/125/01)

नित्य प्रातःकाल उठने वाला, निद्रा त्यागने वाला, उत्तम पदार्थ, स्वास्थ्य, धन, बुद्धि आदि प्राप्त करता है। मनु ने कहा है, ''ब्रह्ममुहूर्त में उठकर धर्माचरण और धनोपार्जन के बारे में सोचना चाहिये।'' (मनु. 4/92)

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः। यदजः प्रथमं संबभूव।
सह तत्सवराज्यमियाय यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतम्।। (अथर्व. 10/7/31)

जो व्यक्ति उषाकाल से पहले व सूर्यास्त से पहले नमस्कार करने योग्य प्रभु को ओंकार आदि नामों से स्मरण करता है, वह महात्मा उस स्वराज्य को पाता है, जिससे श्रेष्ठ कोई पदार्थ नहीं है। अतः हम प्रातः जल्दी उठें व प्रातः सायं परमेश्वर की उपासना करें।

निम्न मंत्रों में गृहिणी के कर्तव्यों को बताया गया है :

सुमंगली प्रतरणी गृहाणां सुयेवा पत्ये श्वसुराय शं भूः।
स्योना श्र्वश्रै प्र गृहान् विशेमान्।। (अथर्व. 14/2/26)

हे वधू ! तू आभूषण आदि से अलंकृत, पति के परिवार के कष्टों को दूर करने वाली, पति की विशेष सेवा करने वाली, सास-ससुर के लिये कल्याणकारी और सुखकारी होते हुए इस घर में प्रवेश कर। पति-पत्नी के सम्बन्धों को मधुर व चिरायु बनाने के लिये निम्न सूत्र में समझाया गया है :

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभि मोदमानौ स्वे गृहे।। (ऋक्. 10/85/12)

'हे पति-पत्नी ! तुम दोनों इस घर में रहो और कभी भी अलग न हो। तुम दोनों पूर्ण आयु को प्राप्त करो। तुम दोनों पुत्रों और पौत्रों के साथ खेलते हुए अपने घर में सदा प्रसन्न रहो।'

भाई-बहिन के साथ कैसा व्यवहार हो :

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षं मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।। (अथर्व. 3/30/3)

'भाई-भाई से द्वेष न करे, और बहन-बहन से द्वेष न करे। पारस्परिक एक विचार से कर्म करने वाले होकर पूर्ण सामंजस्य के साथ हितकारी वाणी के साथ वार्तालाप करें।'

अपने रिश्तों को सम्मान दें :

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम्।जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुपह्वये।। (अथर्व. 9/5/30)

हम अपने पिता, दादा, पुत्र, पौत्र, धर्मपत्नी,माता, पुत्री, चाची, मौसी, ताई आदि और अपने प्रियजनों का सदैव सत्कार करें।

हम मधुर वचन बोलें :

जिव्हाया अग्रे मधु मे जिव्हामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावासो मम चितमुपायसि।। (अथर्व. 1/34/2)

मेरी जीभ से मधुर शब्द निकलें। भगवान् का भजन कीर्तन करते समय मूल में मधुरता बनी रहे। मधुरता मेरे काम में रहे। मेरे चित्त में मधुरता रहे।

योग्य सन्तानों के लिये प्रार्थना करें :

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्रप्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये।।
(ऋक्. 10/63/13)

हे आदित्य देव ! हम सभी मनुष्य अक्षय वृद्धि को प्राप्त हों और धर्माचरण के साथ सुसन्तानों से युक्त हों जिन्हें तुम कल्याण के लिये सन्मार्ग से आगे ले चलो। अर्थात् हमारी सन्तानें न केवल/अधिक हों बल्कि वे सत्कर्मी, सदाचारी, ऐश्वर्यवान, धर्मात्मा और प्रगतिशील हों।

mifu"kn~ fgUnw tkfr ds izk.k gSA

mपनिषद् हिन्दू जाति के प्राण हैं। यदि हिन्दू जाति जीवित रह सकती है तो वह उपनिषदों के द्वारा ही रह सकती है। जिस समय भारत की प्रत्येक संतान उपनिषदों की इस शिक्षा को कि – 'आत्मा अमर है, कभी मरती नहीं' याद रखता था और आत्मा की अमरता में विश्वास रखता था, उस समय वह धर्म, गौ, संस्कृति व राष्ट्र रक्षा के लिये उल्लास के साथ मृत्यु का आलिंगन करता था और प्राण देकर भी उन्हें बचाता था। यवन काल में हजारों–लाखों क्षत्रियों ने धर्म रक्षा के लिये अपने – अपने सिर दे दिये।

गुरु गोविन्दसिंह के लाल हंसते–हंसते दीवारों में चुने गये। मतीराम आरे से चीरे जाने पर भी हंसते रहे। बन्दा वीर का मांस नुचवाया, पर उसने उफ तक नहीं की। यह सब उपनिषदों की शिक्षा का चमत्कार था, जिसने आत्मा की अमरता में विश्वास कर भारतीयों को देश व धर्म के लिये मर मिटना सिखाया था। इस प्रकार हिन्दू जाति जिस समय उपनिषदों के बताये मार्ग पर चलती थी, उन्नति के शिखर पर थी। जिस दिन से इसने इनसे मुख मोड़ा, पतन हो गया। आज भी यदि हिन्दा जाति अपनी भूल को समझ ले और उपनिषदों के मार्ग पर चले तो इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यह पुनः उन्नति के शिखर पर पहुँच जाये।

& HkDr jke'kj.knkl

जीवेम शरदः शतम्

(सौ वर्ष तक जीने के सूत्र)

श्री भगवानाराम सैन

प्रधानाचार्य

आदर्श विद्यामन्दिर माध्यमिक देवीकोट

'जीवेम शरदः शतम्' अर्थात् सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा प्रत्येक मनुष्य की होती है। भारत में इसी उद्देश्य से ईश्वर उपासना का विधान वेदों में किया गया है। केवल जीना ही नहीं बल्कि अपना कर्तव्य कर्म करते हुए जीने की कामना हमारे वेदों में है। निष्काम भाव से कर्तव्य समझकर कर्म करने से ही प्रारब्ध का भोग होता है और संचित कर्मो की उत्पत्ति होती है।

प्राचीन ऋषिगण अपने इन्हीं कर्त्तव्यों का जीवन भर पालन करते थे जिससे उनकी इन्द्रियाँ आयुपर्यन्त शिथिल नहीं होती थीं तथा समाज की सेवा करते हुए वे सौ वर्ष तक जीवित रहते थे।

हमारे नेत्रों में सूर्य की ज्योति है। सूर्य ही प्रकाश के अधिष्ठाता है। अतः हमारे नेत्रों की ज्योति बनी रहे, ऐसी हम सूर्य से प्रार्थना करते हैं। शुक्ल यजुर्वेद (36/24) के इस मंत्र में ऐसी ही प्रार्थना है –

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत। पश्येम शरदः शतं। जीवेम शरदः शतं। शृणुयाम शरदः शतं। प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं। भूयश्च शरदः शतात्।

1. पश्येम शरदः शतम् – हम सौ वर्ष तक देखें, अर्थात् हमारे नेत्रों की ज्योति कभी कम न हो।

2. जीवेम शरदः शतम् – हम सौ वर्ष तक जीवित रहें, अर्थात् हम अपनी पूर्ण आयु को भोग कर कर्तव्य पालन करते हुए भगवान् को प्राप्त करें।

3. प्रब्रवाम शरदः शतम् – हम सौ वर्ष तक बोलें, अर्थात् हम शास्त्रों का अध्ययन–अध्यापन करें और भगवान का स्मरण करते हुए उसी में लीन हो जायें।

4. शृणुयाम शरदः शतम् – हम सौ वर्ष तक सुनें अर्थात् सौ वर्ष तक सत्संग करें, भगवान् के नाम व गुणों को सुनें, शुभवचन सुनें और अपने अन्तःकरण को पवित्र करें।

5. अदीनाः स्याम शरदः शतम् – जब तक हम जीवित रहें, दीन न हों, जिससे घर पर आये हुए अतिथियों की सेवा कर सकें। अर्थात् हमारे पास इतना धन रहे कि जिससे स्वयं भी भोजन कर सकें तथा अतिथियों को भी भोजन करा सकें।

इस तरह अपनी आयु और इन्द्रियों में शक्ति के लिये उपनिषदों में सर्वत्र प्रार्थना के मंत्र पाये जाते हैं।

प्रश्नोपनिषद् के शांति पाठ में भी ऐसी ही प्रार्थना हैं – 'हे देवगण! हम कानों से शुभ वचन सुनें। यज्ञ आदि अनुष्ठान करते हुए नेत्रों से मांगलिक वस्तुओं को देखें। हमारे अंग-प्रत्यंग दृढ़ रहें, जिससे हम लोग देवताओं का (समाज का) हित करते हुए अपनी पूर्ण आयु का उपभोग करें।' इस समय मनुष्य की अल्पायु को देखने से पता चलता है कि जितना हम अपने कर्तव्य से दूर हट रहे हैं, उतनी ही हमारी इन्द्रियाँ अल्पकाल में शिथिल हो जाती हैं अर्थात् काम करने के योग्य नहीं रहतीं।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि आध्यात्मिक विज्ञान के समक्ष यह भौतिक विज्ञान अत्यन्त क्षुद्र है। क्योंकि आध्यात्मिक विज्ञान से जिस वस्तु की प्राप्ति होती है, वह अक्षय होती है जबकि भौतिक विज्ञान से प्राप्त होने वाली वस्तु नश्वर (नष्ट होने वाली) होती है।

कर्त्तव्य कर्म (निष्काम कर्म) एवं दीर्घायु दोनों अन्योन्याश्रित हैं। जहाँ निष्काम कर्म से इन्द्रियाँ मजबूत बनती हैं एवं अन्तःकरण शुद्ध होता है, जिससे मनुष्य दीर्घायु को प्राप्त होता है, वहाँ दीर्घायु का अर्थ केवल लम्बी आयु तक जीवित रहना नहीं है, बल्कि जीवित रहते हुए अपने समाज के प्रति कर्तव्य कर्म करते हुए जीवित रहना है।

ikr%dky Hkfe oUnuk djs

सूर्योदय से चार घड़ी पूर्व ब्रह्ममूहूर्त में जाग जाना चाहिये, और अपने हाथों का दर्शन कर पृथ्वी पर पैर रखने से पूर्व पृथ्वी माता का अभिवादन करना चाहिये और उन पर पैर रखने की विवशता के लिये उनसे क्षमा मांगते हुए इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये –

lenolus nsfo iorLrue.MysA
fo".kqifRu ueLrqH;@iknLi'kZ {keLo esAA
¼fo'ok-l- 1@44&45½

अर्थात् समुद्ररूपी वस्त्रों को धारण करनेवाली, पर्वतरूपी स्तनमण्डल वाली, भगवान् विष्णु की पत्नी स्वरूप हे पृथ्वीदेवि! आप मेरे पादस्पर्श (पैर के धरती पर रखने को) को क्षमा करें।

सुसंगठित होने के लिये प्रार्थना

श्री राजेश व्यास
व्यवस्थापक
आदर्श विद्यामन्दिर जैसलमेर

ऋग्वेद के 10 वें मण्डल का 191वां सूक्त **सौमनस्य** सूक्त कहलाता है। इस सूक्त में आपसी मतभेदों को भुलाकर सुसंगठित होने के लिये अग्निदेव से प्रार्थना की गई है। संगठित रहने के लिये किन-किन बातों का होना आवश्यक है, यह इन मंत्रों में बताया गया है।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।। 2।।

हे विद्वानों! आप परस्पर एक होकर रहें, परस्पर मिलकर प्रेम से वार्तालाप करें। समान मन होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार श्रेष्ठजन एक होकर ज्ञानार्जन करते हुए ईश्वर की उपासना करते हैं, उसी प्रकार आप भी एक मत होकर विरोध त्याग करके अपना काम करें।

समानोमंत्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभिमंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।3।।

हम सबकी प्रार्थना एक समान हों, भेदभाव से रहित परस्पर मिलकर रहें, अन्तःकरण मन-चित्त-विचार समान हों। मैं सबके हित के लिये समान मंत्रों को अभिमंत्रित करके हवि प्रदान करता हूँ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।4।।

तुम सबके संकल्प समान हों, तुम्हारे हृदय एक समान हों और मन एक समान हों, जिससे तुम्हारा कार्य परस्पर पूर्ण रूप से संगठित हो।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः।। (अथर्व. 3/30/4)

जिस एक समान विचार होने से कार्य करने में विरोध नहीं होता और न कभी परस्पर द्वेष बढ़ता है, वह एकता बनाने वाला उत्तम ज्ञान तुम सब अपने-अपने घरों में बढ़ाओ।

सं जानीध्वं सं प्रच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाने उपासते।। (अथर्व. 6/64/01)

हे मनुष्यों ! तुम समान ज्ञान प्राप्त करो, समानता से एक दूसरे के साथ सम्बन्ध जोड़ो, समता भाव से मिल जाओ, तुम्हारे मन समान संस्कारों से युक्त हों।

कभी एक दूसरे के साथ हीनता का भाव मत रखो। जैसे ज्ञानी लोग अपना कर्त्तव्य पालन करते रहे हैं, वैसे तुम भी अपना कर्त्तव्य पूरा करो।

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोभ्म्येक श्नुष्टीन्त्सं वनेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु।। (अथर्व. 3/30/7)

हे मनुष्यों! तुम सब परस्पर सेवाभाव से सबके साथ मिलकर पुरुषार्थ करो। उत्तम ज्ञान प्राप्त करो। समान नेता की आज्ञा में कार्य करने वाले बनो। दृढ़ संकल्प से कार्य में दत्तचित हो तथा जिस प्रकार देव अमृत की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार तुम भी सायं - प्रातः अपने मन में शुभ संकल्पों की रक्षा करो।

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि।
अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नभयामसि।। (अथर्व.3/8/5)

हे मनुष्यों ! तुम अपने मन को एक करो। तुम्हारे कर्म एकता के लिये हों, तुम्हारे संकल्प एक हों, जिससे तुम संघशक्ति से युक्त हो जाओ। विरोध करने वालों को एक विचार से झुका दो।

जनं बिभ्रतो बहुधा विवाचसं नानाधर्माणां पृथिवीं यथौकसम्।
सहस्रंधारा द्रविणस्य मे दुग्धं ध्रुवेव धेनुरनुपस्फुरन्ती।। (अथर्व. 12/1/45)

भूमि पर विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले और विभिन्न धर्मो को मानने वाले लोग परस्पर भ्रातृत्व भाव से रहें क्योंकि भाषा व धर्म से राष्ट्र सदैव बड़ा होता है।

वेद का आदेश है कि ''**व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणः**'' (अथर्व 19/58/04)

'संघ बनाओ, संगठन करो, यह संगठन ही तुम्हारा रक्षक है।'' शास्त्रों का वचन है - ''**अनायका विनश्यन्ति, नश्यन्ति बहुनायकाः**'' यानि जिसका कोई नेता नहीं है, वे मतभेद के कारण नष्ट हो जाते हैं और जिनके अनेक नेतृत्वकर्ता होते हैं वे भी सही दिशा और समन्वय के अभाव में नष्ट हो जाते हैं। महाभारत के अनुसार राजा या नेता सुशील, दानी, विद्वान और प्रजा को अपने गुणों से जीतने वाला होना चाहिये। अर्थात् समाज सुसंगठित हो, उसका एक नेता हो तथा संगठन का नेता गुणवान व कुशल हो।

निम्न मंत्र में संगठन व उनके नेता का महत्व बताया है -

vkpk;kZ cãpkjh cgepkjh iztkifr%A
iztkifrfoZ jktfr fojkfMUnzks·Hkon o'khA

(अथर्व.11/7/16)

हमारे शिक्षक, हमारे नेता व हमारे अधिकारी ब्रह्मचारी हों। वे चरित्र भ्रष्ट न हों। अन्यथा अनर्थमूलक असामाजिक तत्वों का विकास होगा और राष्ट्र पतित हो जायेगा।

आर्थिक समृद्धि के लिये प्रार्थना

श्री अमृत भूतड़ा
कोषाध्यक्ष
आदर्श विद्यामन्दिर जैसलमेर

कुछ लोगों का सोचना है कि धर्मग्रन्थ व्यक्ति को केवल साधु-संन्यासी या वैरागी बनाने की शिक्षा देते हैं। किन्तु यह सत्य नहीं है। वैदिक धर्म मनुष्य को धन कमाकर ऐश्वर्यशाली बनने की भी प्रेरणा देते हैं। यदि यह कमाई सच्चाई, परिश्रम व ईमानदारी से प्राप्त की गई है तथा साथ ही कमाये गये धन का कुछ भाग समाज कल्याण के लिये लगाया गया है तो वह कमाई चिरंजीवी होती है। चाणक्य का कथन कि 'अपने बंधुओं के बीच धनहीन व्यक्ति का कोई जीवन नहीं होता', धन का महत्व बताता है –

न बन्धु मध्ये धनहीनं जीवनम्। (चा.नीति 10.12)

इस सम्बन्ध में वेदों की ऋचाएं निम्नानुसार हैं –

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चिर्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टिंत नूनां स्वद्मानं वाचः सुदिनत्वहनाम्।।
(ऋक्. 2/21/6)

अर्थात् हे ऐश्वर्य के स्वामी ! आप हमें उत्तम ऐश्वर्य दीजिये। आप हमें दक्षता की चेतना और सौभाग्य दीजिये। आप हमें धन की समृद्धि, शरीर की कुशलता, वाणी की मधुरता और दिन की कुशलता (समय का सदुपयोग) दीजिये।

भग एव भगवां अस्तु देवाः तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह।।
(अथर्व. 3/16/5; ऋक्. 7/14/15; यजु. 34/38)

हे देव ! ऐश्वर्य का स्वामी ही हमारे लिये समस्त ऐश्वर्यो का दाता है। उनके द्वारा प्रदत्त धन से ही हम धनवान हैं। हे समृद्धि के देव! तुम्हें सभी लोग पुकारते हैं। तुम हमारे लिये भी मार्गदर्शक बनो।

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्।। (अथर्व.12/01/63)

हे मातृभूमि! तुम मुझे शुभलक्ष्मी से प्रतिष्ठित करो। हे माता पृथ्वी! हमें यश, कीर्ति व ऐश्वर्य से सम्पन्न करो।

पुण्यमयी लक्ष्मी के लिये प्रार्थना

अनीतिपूर्वक कमाई गई लक्ष्मी पापिनी लक्ष्मी मानी जाती है। ऐसी दोषपूर्ण लक्ष्मी समाज में दोष पैदा करती है। जो लक्ष्मी धर्म, नीति व परिश्रम से उपार्जित की गई हैं, वह पुण्यमयी भद्रा लक्ष्मी है। वह मनुष्य को यश प्रदान करती है एवं सद्गति देती है। अथर्व संहिता में ऐसी प्रार्थना की गई है –

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः।।

(अथर्व. 7/115/2)

अर्थात् जो लक्ष्मी मानव को धर्म व नीति से भ्रष्ट कर देती है तथा शिष्ट व भद्र पुरूष जिसका सेवन नहीं करते, वस्तुतः ऐसी लक्ष्मी अलक्ष्मी होती है। जिस प्रकार वन्दना नाम की लता (अमरबेल) हरे भरे वृक्ष का शोषण करती है, उसी प्रकार वह मेरा भी शोषण करती है। इसलिये हे सवित् देव ! उस दोषपूर्ण लक्ष्मी को मेरे समीप मत आने देना। हे सवित् देव ! मुझे धर्म, नीति व श्रम द्वारा प्राप्त होने वाला धन देकर मुझ पर अनुग्रह करो।

एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः।
तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ।।

(अथर्व. 7.115.3)

अर्थात् मनुष्य के शरीर के साथ जन्म से ही एक सौ लक्ष्मियाँ या विभूतियाँ उत्पन्न होती है। हे परमेश्वर! उन में से निकृष्ट वृत्तियों को दूर कर, हमें शुभ वृत्तियाँ दीजिये ताकि हम श्रेष्ठ विभूतियों से उन्नति कर ऐश्वर्य पा सकें।

अकृत्वा परसन्तापमगत्वा खलनम्रताम्।
अनुत्सृज्यसताम्मार्गं यत्स्वल्पमपि तद् बहुः।।

अर्थात् 'किसी को कष्ट न देकर, दुर्जनों के सामने न झुककर और सन्मार्ग को न छोड़कर जो थोड़ा भी कमाया जाता है, वही बहुत है। क्योंकि कितना ही कमा लो फिर भी मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः (कठ. 1/27)

इसलिये शास्त्र कहते हैं, बेईमानी व अन्याय से आया हुआ धन जुगनू की तरह चमकता है, जो थोड़ी देर प्रकाश कर पुनः अंधेरा कर देता है। मनु कहते हैं, 'सम्पूर्ण पवित्रताओं में धन की पवित्रता सबसे उत्तम है।'

यजुर्वेद (3.50) की एक सूक्त में आर्थिक समानता एवं सहकार भावना का सन्देश दिया गया है –

हे मनुष्यों ! तुम हमें दो, मैं तुम्हें देता हूँ। तुम मेरे लिये पदार्थ रखो, मैं तेरे लिये रखता हूँ। तुम मुझे वस्तु दो, मैं तुम्हें वस्तु देता हूँ। अर्थात् व्यक्ति यदि सहकार की भावना रखें (एक सबके लिये व सब एक के लिये) तो समाज में आर्थिक अभाव, आर्थिक शोषण व आर्थिक असन्तुलन स्वतः ही समाप्त हो जायेगा। महर्षि दयानन्द कहते हैं – ''प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये। सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।''

●●●

jk"Va dk xkSjo

nkrkjks uksfHko)Urka onk% lUrfrjso pA
J)k p ek uks O;xen cgqns;a p uksLrqAA

(याज्ञ.आचाराध्याय, 246, अग्नि पुराण 163/19)

vUuz p uks cgq Hkosr vfrFkha'p yHkefgA
;kfprkj'p u% lUrq ek p ;kfp"e dzpuAA

– अर्थात् हमारे राष्ट्र में दान देने वाले दाताओं की वृद्धि हो, हमारे राष्ट्र में वेद आदि सत्–शास्त्रों का स्वाध्याय करने वाली सुसन्ततियाँ उत्पन्न होती रहें, हमारे राष्ट्रीय जनमानस से सत्कर्मों के अनुष्ठान से और सत्पुरुषों के मार्ग से सम्बन्ध रखने वाली श्रद्धा कभी पलायित न हो, हमारे राष्ट्रीय कोष में देने के लिये प्रभूत सम्पत्तियाँ सुरक्षित रहें, हमारे राष्ट्र में प्रचुर मात्रा में अन्न–सम्पत्ति सदैव सुरक्षित रहे, हमारा राष्ट्र सदैव सम्माननीय अतिथियों का सत्कार करता रहे और हमारे राष्ट्र से सभी अन्य राष्ट्र माँगते रहें, परन्तु हमारा राष्ट्र कभी भी और किसी से भी कोई याचना न करे।

lo}s HkoUrq lqf[ku% lo}s lUrq fujke;k%A
lo}s Hknzkf.k i';Urq ek df'pn~ n%[k HkkXHkosr~AA

'kkfUr ! 'kkfUr !! 'kkfUr !!!

आचार्य की गरिमा

श्री उदयसिंह, आचार्य
आदर्श विद्यामन्दिर, फलसूण्ड

वैदिक साहित्य में आचार्यो की गरिमा व उसके कर्तव्यों के बारे में व्याख्या की गई है। अथर्ववेद (11.5.17) में कहा गया है -

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छति।।

अर्थात्-ब्रह्मचर्य रूपी तप से, संयम व अनुशासन से ही राजा प्रजा की रक्षा करता है। आचार्य भी स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ ही ब्रह्मचारी को पाने का अधिकारी होता है। अत: जब आचार्य स्वयं कठोर अनुशासन का पालन करते हैं तभी विद्यार्थियों के सामने एक आदर्श स्थापित होता है। निरुक्त(1.4) के अनुसार आचार्य वही है, जो सदाचारी होता है।

यजुर्वेद (6.14) में गुरु शिष्य को कहता है - हे शिष्य ! मैं तेरी वाणी को सद्- कर्मानुकूल करता हूँ, तेरे नेत्रों को पवित्र करता हूँ, तेरे कानों को शुद्ध करता हूँ, मैं तेरे समस्त व्यवहार व चरित्र को पवित्र करता हूँ। अर्थात् गुरु शिष्य को इस प्रकार की शिक्षा दें कि शिष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ सदैव पवित्र व्यवहार करें। शिष्य का चरित्र सदैव उच्च व पवित्र बना रहे। इस प्रकार यजुर्वेद के इस सूक्त में एक आदर्श गुरु के दायित्वों के बारे में व्याख्या की गई है। तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली में आचार्य प्रार्थना करता है 'हे परमेश्वर ! मैं यशस्वी बनूँ, जगत् में मेरा यश सर्वत्र फैल जाए और मुझसे ऐसा कोई कार्य या आचरण न बने जो मेरे यश में धब्बा लगाने वाला हो। हे भगवान् ! आपके दिव्य स्वरूप में मैं प्रविष्ट हो जाऊँ और आपका दिव्य स्वरूप मुझमें प्रविष्ट हो जाए, मेरे मन में बस जाए। हे विधाता ! मेरे पास सब ओर से ब्रह्मचारी आयें और मैं उनको विद्याभ्यास कराकर तथा कल्याण मार्ग का उपदेश देकर अपना कर्तव्य और आपकी आज्ञा का पालन करता रहूँ।' तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली के नवम् अनुवाक् में यह बात समझाई गई है कि अध्ययन और अध्यापन करने वालों अर्थात् आचार्यों को अध्यापन के साथ-साथ शास्त्रों में बताये मार्ग पर स्वयं भी चलना चाहिये अर्थात् आचार्य को सदाचार का पालन, सत्यभाषण, स्वधर्म पालन, इन्द्रियों व मन को वश में रखना, अतिथि की सेवा करना आदि वे सब कार्य करने चाहिये, जिसका वह उपदेश देता है। आचार्य के लिये तो इन सब कर्तव्यों का पालन इसलिये भी जरूरी है क्योंकि उनका आदर्श व आचरण उनके छात्र ग्रहण करते हैं। कितने ही विघ्न क्यों न उपस्थित हों, आचार्य को अपने कर्तव्य पालन में सदैव दृढ़ रहना चाहिये तथा सत्यभाषण पर अडिग रहना चाहिये। वेदों में वर्णित आचार्यो के कर्तव्यों को आचार्यो की वर्तमान पीढ़ी अपने जीवन में उतार ले तो न केवल अपने शिष्यों का अपितु समग्र राष्ट्र का हित होगा।

प्राचीन भारत में युद्ध एवं सैन्य विज्ञान

डॉ. लक्ष्मीनारायण नागौरी
विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान
राज. महिला महाविद्यालय जैसलमेर

भारतीय चिन्तन परम्परा के प्रति दुराग्रही दृष्टिकोण एवं कल्पनाओं की वजह से पश्चिमी विचारकों एवं सिद्धान्तों को विशेष महत्व दिया जाता है। केवल पश्चिमी विचारक ही नहीं अनेक यूरेण्ड पंथी (यूरेण्ड पंथी से तात्पर्य ऐसे भारतीय लोगों से है जिनका जन्म तो भारत में हुआ है किन्तु मानसिकता, विचार एवं आदर्श पाश्चात्य जगत के हैं) विद्वान आज भी भारतीय योगदान को अस्वीकार करते हैं, उपेक्षा करते हैं, यही नहीं उसका उपहास भी करते हैं। मार्क्स के मानसपुत्रों तथा यूरेण्डपंथी बुद्धिजीवियों को दरकिनार करते हुए भारतीय चिन्तन का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में योगदान के सन्दर्भ में पूर्वाग्रहमुक्त दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। जब समस्त दुनिया और विशेषकर यूरोप के लोग अविकसित जीवन व्यतीत कर रहे थे उस समय भारत में वेद ऋचाओं का स्मरण किया जा रहा था। अतः पूर्वाग्रह मुक्त दृष्टिकोण से भारतीय साहित्य के अनुशीलन से भारतीय चिन्तन के शाश्वत योगदान की पुष्टि होती है।

प्राचीन भारतीय चिन्तन में राजा एवं राज्य के हितों में आपसी विरोध नहीं है जबकि यूरोपीय चिन्तन में राजा और राज्य (प्रजा) के हितों में भेद को मान्यता दी गई है। शासक के हित पहले और दायित्व बाद में आते हैं। शासक के लिए दोहरे मापदण्ड यूरोप में मान्य थे। भारत के शासक को कठोर व्रतों का पालन करना होता था, ये व्रत शासक को उसके दायित्व का बोध करवाते थे। भारत में शासक की उत्पत्ति ही जनकल्याण के प्रयोजन से हुई थी।

प्राचीन भारतीय चिन्तन ने युद्ध को एक राजनीतिक यथार्थ के रूप में मान्यता प्रदान की है किन्तु युद्ध को जल्दबाजी में अंगीकार करने पर मर्यादाएँ आरोपित की हैं। अत्यन्त अपरिहार्य कारण और परिस्थिति का निर्माण होने पर ही युद्ध 'विकल्पहीन परिस्थितियों का विकल्प' माना गया है तथा युद्ध से पूर्व भी शान्ति एवं युद्ध के पश्चात् भी शान्ति स्थापित करने के उपक्रम करने का परामर्श दिया गया है। यही कारण है कि चार उपायों में 'साम' तथा सद्गुण नीति में 'सन्धि' को प्रथम वरीयता प्रदान की गई है, क्योंकि युद्ध के परिणाम अनिश्चित तथा भयंकर अनर्थकारी होते हैं। सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाएँ चरमरा जाती हैं। भारी जन–धन की हानि होती है। राजवंश लगभग निर्मूल हो जाया करता था। युद्धों

से यदा–कदा सर्वनाश की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। युद्ध के प्रभाव एवं हानियों का भारतीय मनीषियों को अभिज्ञान था। राम–रावण संघर्ष के पश्चात् रावण का वंश लगभग निर्मूल हो गया। ऐसी ही परिस्थितियों का निर्माण महाभारत युद्ध के पश्चात् हुआ। दुर्योधन के दम्भ ने स्वजाति एवं स्वदेश का विनाश ही नहीं किया, अपितु आने वाली अनेक शताब्दियों तक भारत नेतृत्वहीन रहा और भारत में कोई चक्रवर्ती सम्राट नहीं बन पाया। भारत की राजनैतिक एकता विखंडित हो गई। पाण्डव और कौरव दोनों पक्षों की अपूरणीय क्षति हुई। मात्र पांच पाण्डव ही शेष बच पाए और वे भी युद्ध की भयंकरता के प्रभावों व परिणामों से विचलित हो पलायनवादी नीति का अनुसरण कर हिमालय प्रस्थान कर गये। अगर यह कहा जाये कि भारत के राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक पतन का मूल कारण महाभारत युद्ध था तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

युद्ध से अनावश्यक हिंसा, रक्तपात एवं विनाश को टालने के प्रयोजन से द्वन्द्व युद्ध का आश्रय भी लिया जाता था। बाल रामायण में उल्लेख आता है कि राम–रावण युद्ध से पूर्व राम के पक्ष से अंगद तथा रावण के पक्ष से नरांतक के मध्य द्वन्द्व युद्ध हुआ था, किन्तु नरांतक के मारे जाने पर रावण ने द्वन्द्व युद्ध के परिणाम को अस्वीकार कर दिया था। महाभारत में उल्लेख आता है कि जरासंध के वध के लिये भी सेना का प्रयोग नहीं किया गया था।

युद्ध के प्रति जन–आस्था – युद्ध को अनिवार्य एवं विकल्पहीन परिस्थितियों में ही अपनाने का परामर्श दिया गया किन्तु युद्ध को घृणित नहीं माना गया अपितु इहलोक एवं परलोक में भी श्रेष्ठ फलों की प्राप्ति का आधार मानते हुए महिमा मण्डित किया गया है। सेना का मनोबल बनाये रखने के लिये ऐसा करना यथार्थवादी नीति का संकेत करता है।

युद्ध संहिता – हिन्दुओं की युद्ध संहिता बहुत ही वीरोचित एवं मानवीय थी। हिन्दू शासक शौर्य और मानवीयता की आचार संहिता का उल्लंघन करने पर कभी भी सहमत नहीं होते थे। प्राचीन भारतीय चिन्तन में रणक्षेत्र में वीर गति प्राप्त करने को महिमा मंडित किया गया है। रणभूमि से पलायन अथवा पीठ दिखाना निन्दनीय माना गया। शान्तिकाल में क्षत्रिय वर्ण के लोग कृषि एवं पशुपालन का कार्य करते थे। राष्ट्र के सम्मुख संकट उपस्थित होने पर वही सामान्य कृषक और पशुपालक हथियार उठा लेता था। धर्म युद्ध के नियमों का निर्धारण वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय विधि से भी श्रेष्ठ स्तर का था।

सैन्य विज्ञान – एक सुदृढ़, दक्ष एवं सबल सेना की आवश्यकता को प्राचीन भारतीय चिन्तन में प्रतिपादित किया गया, क्योंकि (अ) राज्य रक्षार्थ (आ) चक्रवर्ती साम्राज्य का निर्माण तथा (इ) आन्तरिक विप्लवों से रक्षार्थ, सेना की उपयोगिता असंदिग्ध है। प्राचीन भारतीय साहित्य का अनुशीलन करने से स्पष्ट होता है कि भारत में युद्ध विज्ञान का विकास चरमोत्कर्ष पर था। विभिन्न प्रकार के आयुधों के आविष्कार एवं निर्माण में भारतीय दक्ष थे। यहाँ तक कि बारूदी आयुधों के निर्माण की प्रक्रियाएँ एवं पद्धति व प्रभावों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। प्राचीन भारतीयों का सीमित एवं अपरिसीमित संहारक क्षमता के हथियारों के निर्माण एवं प्रयोग से परिचय था। समतुल्य एवं समकक्ष शत्रु पर उसका उपयोग किए जाने के संकेत प्राप्त होते हैं। विषैली गैसों का निर्माण एवं जैविक हथियारों के निर्माण एवं उपयोग का परामर्श कतिपय आचार्यो ने दिया है। आक्रामक के साथ–साथ रक्षात्मक उपकरणों के निर्माण एवं उपयोग का विवरण भी प्राप्त होता है। जैसे – ढाल, कवच, करकट, शिरस्त्राण और पटु का उपयोग करने पर बल दिया गया है। यही नहीं, युद्ध में विजय सुनिश्चित करने के लिए सुव्यवस्थित सैन्य संगठन, उसकी भर्ती, प्रशिक्षण, परीक्षा एवं निष्ठा की जानकारी जैसे आवश्यक आयाम ध्यान में लाए गए हैं। साथ ही सैनिकों का पदसोपानीय वर्गीकरण एवं सेना का विभिन्न शाखाओं में वर्गीकरण जैसे पदाति, अश्वसेना, रथसेना, गजसेना भी किया गया है, जिससे प्रमाणित होता है कि भारतीय सैन्य विज्ञान अत्यन्त उन्नत था। यही नहीं भारतीय आचार्यो ने रणक्षेत्र में अपने शासक की विजय सुनिश्चित करने हेतु सेना द्वारा अनेक प्रकार की सैन्य व्यूह रचना का भी प्रतिपादन किया है।

प्राचीन भारतीय सभ्यता ने बहुआयामी प्रगति की थी तथा विकास के सर्वोच्च मानदण्ड एवं अकल्पनीय उपलब्धियां प्राप्त की थीं। हिन्दुओं की परम्पराओं में युद्ध एवं धर्म दोनों का ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

प्राचीन काल के हिन्दू युद्ध विज्ञान में उतने ही दक्ष थे जितने साहित्य, कला, अध्यात्म अथवा अन्य सृजनात्मक कार्यों में प्रवीण थे। प्राचीन भारतीय योद्धा और सेनापति कुशल नाविक भी थे और समुद्री कला में निपुण थे। प्राचीन भारत व्यापार एवं सभ्यता का बड़ा केन्द्र था, सुदूर देशों तक वाणिज्य गतिविधियों का संचालन समुद्री मार्गो से होता था।

वर्षों तक भारत विदेशों का गुलाम रहा और आक्रमणकारियों ने भारतीय साहित्य को नष्ट किया। सैनिक विज्ञान का प्रामाणिक ग्रन्थ धनुर्वेद माना जाता है, जो अप्राप्य है। फिर भी महाभारत, रामायण, अग्निपुराण जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों से

उस समय की सैनिक पद्धति, युद्धकला, रणनीति, हथियार, व्यूह रचना, सैनिक वर्गीकरण, सैन्य सामग्री आपूर्ति आदि के बारे में विवरण प्राप्त होते हैं। प्राचीन काल में प्रत्येक प्रकार की सैनिक गतिविधियों हेतु निश्चित, स्पष्ट और व्यावहारिक मार्गदर्शक निर्देशों की व्यवस्था है।

प्राचीन भारत में राजपुरुषों, महिलाओं, क्षत्रियवंश के लोगों, राजकुमारों एवं शासकवर्ग के लोगों को युद्ध कला एवं अस्त्र-शस्त्र संचालन की दक्षता प्राप्त करने हेतु प्रशिक्षण की व्यवस्था, तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था का महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य आयाम माना जाता था। यद्यपि सेनापति का औपचारिक पद पर्याप्त महत्वपूर्ण होता था, किन्तु बहुधा युद्ध का नेतृत्व शासक स्वयं ही किया करता था। ऋषि बृहस्पति की गणना सैनिक विज्ञान के महान् गुरु के रूप में होती है तथा शुक्राचार्य को असुरों का प्रमुख मार्गदर्शक माना जाता था।

सेना को विभिन्न व्यूहों में विभाजित किया जाता था। युद्ध काल में सेना के व्यूह किसी विशिष्ट लक्ष्य के लिए प्रयत्नशील रहते थे। सेना के विभिन्न आवश्यक एवं महत्वपूर्ण अंगों में (अ) गज सेना (आ) अश्वारोही सेना (इ) रथ सेना (ई) पद सेना होती थी। अग्नि पुराण में प्रतिपादित किया गया है कि भारतीयों के लिए युद्ध का सबसे महत्वपूर्ण चरण गोलन्दाजी होता था। भारतीय योद्धाओं ने इस युद्ध कला में प्रवीणता की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया था। वे अपनी गोलाबारी से शत्रु को भयंकर क्षति पहुँचाते थे। गज सेना भारतीय सेना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली अवयव था। यद्यपि प्रतिकूल मौसम और कुशलता से संचालन नहीं होने पर जब कभी गज सेना के गज बिगड़ते थे तो लौटते समय अपनी सेना को भी हानि होने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता किन्तु कुशल सेनानायक इस गज सेना का उपयोग अत्यन्त प्रभावी तरीके से करते और शत्रु पर निर्णायक प्रहार करते थे। हिन्दू सेनापति युद्ध में गज सेना का उपयोग अत्यन्त प्रभावशाली शस्त्र के रूप में करते थे। सिकन्दर के उत्तराधिकारियों ने इस युद्ध कौशल से प्रभावित होकर स्वयं युद्धों में गज सेना का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने गजों का प्रशिक्षण एवं संचालन का दायित्व प्रशिक्षित भारतीय महावतों को सौंप दिया था।

वीरता, त्याग एवं बलिदान की भावना भारतीय सैनिकों की आत्मा में बसी होती थी। वे भारतीय राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं मान सम्मान को अपने जीवन से भी ज्यादा महत्व देते थे और स्वदेश रक्षा हेतु आत्म बलिदान के लिए तत्पर रहते थे। हिन्दू सैनिकों की वीरता का मुकाबला किसी भी देश के सैनिक नहीं कर

सकते थे। हिन्दू सैनिक अपने सम्मान एवं धर्म की रक्षा करने के लिए हँसते–हँसते अपने प्राणों पर खेल जाते थे। भारतीय सैनिकों ने युद्ध में प्रयुक्त होने वाले शस्त्रास्त्रों के विकास, निर्माण एवं प्रयोग में अकल्पनीय दक्षता प्राप्त कर ली थी। भारतीय ज्ञान–विज्ञान के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ विदेशी हमलावरों के आक्रमण एवं क्रूरता के कारण नष्ट हो गए, किन्तु फिर भी अनेक ग्रन्थों में आए उल्लेखों से इस बात का संज्ञान होता है कि भारतीय सैन्य एवं शस्त्रास्त्र विज्ञान अपने चरमोत्कर्ष पर था। आज का यूरोपीय एवं विकसित वैज्ञानिक ज्ञान भी उसकी तुलना में बौना सिद्ध होता है।

धनुर्विद्या में भारतीयों की प्रवीणता स्वयंसिद्ध है। अर्जुन द्वारा द्रौपदी के स्वयंवर में, तत्पश्चात् भीष्म पितामह के लिए शरशैया का निर्माण, महारथी कर्ण एवं एकलव्य की धनुर्विद्या के क्षेत्र में दक्षता का प्रामाणिक उल्लेख ग्रन्थों से ज्ञात होता है। भारतीय सैनिक विशेषज्ञों ने आग्नेय शस्त्रों का उपयोग यूरोपीय युद्ध विशारदों से पूर्व ही कर लिया था। भारतीयों को बारूद और उसके तत्वों गन्धक, चारकोल और शोरे के तेजाब की पूरी जानकारी थी। सिकन्दर ने अरस्तू को एक पत्र द्वारा समाचार सम्प्रेषित किया था, 'भारत में मेरी सेना पर भयंकर लपटों की बौछार हुई।'

प्राचीन यूनानियों ने भारतीयों द्वारा आग्नेय शस्त्रों के प्रयोग का विवरण प्रस्तुत किया है। थेमिस्टियन ने लिखा है कि ब्राह्मण योद्धा दूर स्थित होकर दामिनी और गर्जने वाले शस्त्रों से लड़ रहे थे। रामायण से प्राप्त विवरण के अनुसार विश्वामित्र ने राम को अनेक प्रकार के अस्त्र–शस्त्र प्रदान किए थे। उनमें आग्नेय और शिखर भी शामिल थे। शिखर एक ज्वलनशील शस्त्र था। महाभारत में हमें युद्ध में बिजली की कड़क की तरह गर्जन करने वाले अग्नि के गोलों का उपयोग होने का उल्लेख प्राप्त होता है। सम्भवतया यह तोपखाने के अस्तित्व को प्रमाणित करता है। हरिवंश पुराण में आग्नेय अस्त्रों का उल्लेख प्राप्त होता है।

समस्त प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रन्थों में 'ब्रह्मास्त्र' का प्रयोग बार–बार होता है। यह एक ऐसा अस्त्र रहा होगा जो लक्ष्य भेदने में अचूक एवं भारी विनाशकारी क्षमता रखता था। अयोध्या नगर के विवरण में नगरकोट पर कई स्थानों पर यंत्रों की तैनाती का उल्लेख प्राप्त होता है। 'शतघ्नी' का उल्लेख रामायण से प्राप्त होता है। संस्कृत शब्दकोष में 'शतघ्नी' से तात्पर्य ऐसे यंत्र से बताया गया है जो एक बार में लोहे के सैकड़ों पिण्ड प्रक्षिप्त कर अनेक सैनिकों को हताहत कर सकता था। अन्य नाम 'वृश्चिकाली' भी दिया गया है। क्या यह तोप का वर्णन नहीं ?

‘जमेरा’ एक और यांत्रिक अस्त्र था जिसका उपयोग शिलाखण्डों से प्रहार करने के लिये किया जाता था। रावण के पास ‘नूल्हर’ यंत्र का उल्लेख प्राप्त होता है जिसे ‘तोप’ और ‘बन्दूक’ की श्रेणी का शस्त्र माना जा सकता है।

प्राचीन काल में ऐसे यन्त्रों का निर्माण एवं आविष्कार हो चुका था जिनके माध्यम से लौहपिण्ड, शिलाखण्ड एवं प्रक्षेपास्त्र प्रक्षेपित किये जाते थे। इसके अलावा आस्ट्रेलियन हथियार ‘बूमरैंग’ की श्रेणी के धनुषों एवं तीरों का निर्माण कर लिया गया था जो लक्ष्य भेदकर वापस अपने तरकश में लौट आता था। इस प्रकार अक्षय तरकश एवं तीरों का निर्माण करने में भारतीय दक्ष थे।

भारतीयों ने जल अग्नि जिसे ‘बड़वाग्नि’ के नाम से जाना जाता है, का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। हिन्दुओं द्वारा निर्मित एक ऐसे तेल का उल्लेख प्राप्त होता है जिसका उपयोग युद्ध में दीवारों और परकोटों को नष्ट करने के लिए किया जाता था, कोई भी अस्त्र-शस्त्र इसको काट नहीं सकता था और न ही इसके द्वारा प्रज्ज्वलित अग्नि को बुझाया जा सकता था। यह युद्धरत सैनिकों को जलाकर भस्म कर देता था।

कार्तिकेय माहात्म्य के अनुसार जालंधर पर उसके पिता शिव ने आक्रमण किया तो उसके द्वारा ‘असुर विद्या’ का प्रयोग किया गया था। युद्ध विद्या में असुर विद्या का उपयोग सिद्ध करता है कि युद्ध विज्ञान के क्षेत्र में भी प्राचीन हिन्दू आधुनिक योरोप से कहीं आगे थे क्योंकि आधुनिक विज्ञान यांत्रिक युद्ध में तो दक्ष है किन्तु ‘असुर विद्या’ से अनभिज्ञ है। प्राचीन भारतीय साहित्य में उल्लेख प्राप्त होता है कि उस समय वायुमण्डल में युद्ध करने में भी भारतीय दक्ष थे। ‘पुष्पक विमान’ का उल्लेख प्राप्त होता ही है। विमान विद्या वायु विद्या का ही अंग है जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में हुआ है। संजय द्वारा धृतराष्ट्र को महाभारत युद्ध का आँखों देखा हाल सुनाने का उल्लेख महाभारत में प्राप्त होता है, जो व्यासजी द्वारा संजय को प्रदत्त दूरवीक्षण यंत्र द्वारा ही सम्भव हो सका था। इस उल्लेख को कतिपय दुराग्रही विश्लेषक कल्पना की उड़ान मात्र मानते हैं किन्तु जैसे वर्तमान बेतार का यंत्र, दूरदर्शन, दूरसंचार व संचार तकनीक, विमान एवं प्रक्षेपास्त्र प्रौद्योगिकी, आणविक हथियारों एवं विषैली गैसों एवं जीवाणु युद्ध के नये आयाम वैज्ञानिक विकास में प्राप्त होते जा रहे हैं, वैसे ही इन समस्त तत्वों की प्रामाणिकता पुष्ट हो रही है कि प्राचीन भारतीय मनीषियों, सेनानायकों एवं वैज्ञानिकों ने आज से भी ज्यादा प्रभावी एवं उन्नत प्रौद्योगिकी का विकास कर लिया था। कालान्तर में होने वाले विदेशी आक्रमणों में समस्त साहित्य एवं ज्ञान आक्रमणकारियों की विनाशकारी

प्रवृत्ति ने नष्ट कर दिया जिससे न केवल साहित्य ही नष्ट हुआ, अपितु भारत और विशेषतया सम्पूर्ण मानव सभ्यता के ज्ञान विज्ञान को अपूरणीय क्षति हुई। सम्भवतया आने वाली अनेक सदियों तक हम उस स्तर को ही प्राप्त नहीं कर पाएं, जो ज्ञान एवं विज्ञान का स्तर प्राचीन भारतीयों ने प्राप्त कर लिया था। अतः यह कहा जाए कि विश्व की सभी सभ्यताओं ने प्राचीन भारतीय सभ्यता से सैन्य विज्ञान के क्षेत्र में बहुत कुछ सीखा है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सन्दर्भ

1. वोहलोन – दास एल्टे इन्डेन पृष्ठ 6
2. कैप्टन ट्रायर – 'एशियाटिक जर्नल' उद्धृत वेदप्रकाशसिंह, प्राचीन हिन्दू राष्ट्र पृष्ठ 137
3. विल्सन कृत – थियेटर ऑफ हिन्दूज, खण्ड – 01 पृष्ठ 14
4. एलफिन्स्टन – हिन्दू ऑफ इण्डिया पृष्ठ 48
5. पूर्वोक्त पृष्ठ 54
6. पूर्वोक्त पृष्ठ 289
7. वेदप्रकाशसिंह – प्राचीन हिन्दू राष्ट्र पृष्ठ 256

;r fi.M rr cãk.M

वैज्ञानिकों का कहना है कि परमाणु का स्वरूप एक लघु सूर्यमण्डल के समान है। जिस प्रकार अनेक ग्रह एवं उपग्रह अपने केन्द्र (सूर्य) की परिक्रमा एक नियत कक्षा में किया करते हैं, उसी प्रकार सूक्ष्म जगत् में परमाणु के विभिन्न कण (इलेक्ट्रान, प्रोटोन, न्यूट्रान) आकर्षण–विकर्षण के नियमानुसार अपनी नियत कक्षा में नाभिक के चारों ओर चक्कर लगाया करते हैं, अर्थात् परमाणु के उदर में सौर परिवार का सूक्ष्म स्वरूप रहता है। इस वैज्ञानिक चित्रण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति के दोनों रूप (सूक्ष्म व स्थूल) समान हैं, जो एक ही नियम द्वारा संचालित होते हैं। इसलिये महर्षि कपिल का सांख्य दर्शन कहता है –'जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है।'

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दानमहिमा अंक कल्याण– गीताप्रेस, गोरखपुर
2. वेदकथांक – कल्याण–गीताप्रेस, गोरखपुर
3. धर्मशास्त्र अंक – कल्याण – गीताप्रेस, गोरखपुर
4. उपनिषदों का सन्देश – डॉ. राधाकृष्णन्
5. 108 उपनिषद् –ज्ञानखण्ड – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य–शान्तिकुंज, हरिद्वार
6. हिन्दू पंच – बलिदान अंक – नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया
7. आर्ष साहित्य में मूलभूत विज्ञान – विष्णुदत्त शर्मा
8. भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा – सुरेश सोनी
9. संस्कृत में विज्ञान – डॉ. विद्याधर शर्मा 'गुलेरी'
10. भारत के प्रमुख गणिताचार्य – विद्याभारती संस्कृति शिक्षा संस्थान
11. भारत के प्रमुख विज्ञानाचार्य – विद्याभारती संस्कृति शिक्षा संस्थान
12. शीर्ष वैज्ञानिक – वि. वनराज – साहित्य संगम बैंगलूरु
13. वेदों की श्रेष्ठ कहानियां – प्रेमाचार्य शास्त्री
14. उपनिषदों की कहानियां – रामप्रसाद त्रिपाठी
15. उपनिषदों की कहानियां – भगवानसिंह
16. चारों वेद – डॉ. उमेशपुरी 'ज्ञानेश्वर'
17. वाल्मीकि के ऐतिहासिक राम – विश्वनाथ लिमये
18. उपनिषदों की मनोहारिता शक्ति – स्वामी विवेकानन्द
19. व्यावहारिक जीवन में वेदान्त – स्वामी विवेकानन्द
20. उपनिषद् अंक – कल्याण–गीता प्रेस, गोरखपुर
21. वेदान्त – स्वामी विवेकानन्द
22. वेदों द्वारा सफल जीवन – डॉ. कृष्णवल्लभ
23. चाणक्य नीति
24. उपनिषद् – विनोबा भावे

❑❑❑❑

अध्याय–13 : बालक के लालन पालन के लिए शास्त्र विधान

अध्याय–14 : अष्टावक्र गीता

कोरोना काल के कारण उपरोक्त दोनों अध्यायों से सत्र 2020–21 में कोई भी प्रश्न नहीं पूछा जाएगा। अतः इन्हें हटा दिया गया है।

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान

सा विद्या या विमुक्तये

प्रकाशक

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान

संस्कृति भवन, सलारपुर रोड, कुरुक्षेत्र-136118 (हरियाणा)

01744-251903-4-5, FAX : 270515 sgp@samskritisansthan.org

ISBN 978-93-85256-17-2

9 789385 256172

₹ 60.00

www.samskritisansthan.com vidyabhartikurukshetra vidyabhartisss YouTube vbsss kkr